मुद्रकः—

शेठ देवचंद दामजी

आनंद प्रीन्टींग प्रेस

भावनगर.

आ ग्रंथनो अभ्यास कर्या पछी वर्तमानमां लोकोपयोगी अने उपकारक आना जेवो अन्य ग्रंथ क्वचित ज हशे एवी खास मारी मान्यता थई. आ मान्यताने में अमुक विद्वान् समक्ष रजु करी एटले तेओए अने अन्य बीजाओए मजबूत प्रेरणा करी के आ ग्रंथनुं जो तमो विवेचन करशो तो वधु उपयोगी अवश्य थशे. मने पण आ वात रुची अने साथे साथे आ ग्रंथनुं विवेचन करवाने मन ललचायुं. परिणामे मारी अल्पमतिथी तेनुं विवेचन कर्युं. ग्रंथ एटलो गहन छे के तेमां मारा जेवानी बुद्धिनो प्रवेश थवो पण अशक्य हतो, छतां साधनोनी अनुकूलताए में यथासाध्य प्रयत्न कर्यो छे. आ ग्रंथनी प्रस्तावना, उपोद्‌घात विगेरे अमो ग्रंथना बीजा भागमां आपवा धारेल छे, कारण के ग्रंथना मुद्रण आदिमां मदद आपनार महाशयोने ग्रंथ प्रगट थइ प्राप्त करवानी लागेली तालावेलीने लीधे आ ग्रंथने तुरतमां ज प्रथम भाग रूपे प्रकाशित करवानी प्रकाशकने आव-

श्यकता उभी थइ. तेम ज ग्रंथनुं प्रमाण अमारा धारवा करता लगभग दोढुं थइ गयुं. आथी पण बे भागमां ग्रंथने वहेंची नांखवो वधु उचित जणायुं. अतएव आ ग्रंथ परत्वे हमारे जे कांइ निवेदन करवानुं छे ते अमे बीजा भागमां जाहेर करीशुं. प्रांते आ ग्रंथमां सलाह-रूपे अने मुद्रित करवामां अमने जेओए कींमती मदद करी छे तेओनो हुं खास ऋणी छुं. आशा छे के-पाठको आ ग्रंथने अमारी स्खलना सुधारी वांचवा ध्यान राखशे. सज्जनो हमेशां गुणग्राही ज होय छे. अलं अधिकेन.

प्रार्थी-लेखक.



॥ नमः श्रीमहर्षिपूज्यगंभीरविजयेभ्यो ॥

षोडशकग्रंथ-विवरणं ।



अमृतमिवामृतमनघं,
जगाद् जगते हिताय यो वीरः ।
तस्मै मोहमहाविष-
विघातिने स्तान्नमः सततं ॥ १ ॥

यस्याः संस्मृतिमात्राद्
भवन्ति मतयः सुदृष्टपरमार्थाः ।
वाचश्च बोधविमलाः सा
जयतु सरस्वती देवी ॥ २ ॥

मंगल

जेम अमृत आत्माने अजरअमर बनावे छे, तेम जे प्रभुए आ अमृत तुल्य एवुं द्वादशांगीरूप वचनामृत जगतना कल्याण माटे प्रकाश्युं, तथा मोहरूप महाकालकूट झेरनो जेओए आमूलतः नाश कर्यो छे, एवा वीरप्रभुने नित्य नमस्कार हो।

जेना स्मरणमात्रथी ज परमार्थभूत पदार्थोने जणावनार बुद्धि उत्पन्न थाय अने ज्ञाननिर्मल-अर्थात् सुबुद्ध एवी वाचा प्राप्त थाय छे, ते सरस्वती नामनी देवी विजयवती हो।

टीकाकार भगवान आ रीते शिष्टाचारनुं पालन करवा, निर्विघ्ने टीका समाप्त करवा स्वेष्टदेवने नमस्कार करी प्रकृत ग्रंथनी टीकानी प्रस्तावना आ प्रमाणे कहे छे—

प्रस्तावना

एक सामान्य वस्तुनी परीक्षा कर्या पछी तेने स्वीकारवाथी ग्राहकने असंतोष के खेद थतो नथी. निदान के-कोइ पण चीज परीक्षा कर्या पछी ज स्वीकारवी ए न्याय गणाय, तो पछी संसारमां डुबता अने पोताना उद्धारनी अपेक्षा राखनारे, तेमज पोतानुं हित साधवामां निपुणे, दरेक कार्योमां दोष तथा गुण संबंधी गुरु-लाघवतानो विचार करनारे, परमार्थ के लाभालाभनो ख्याल करनारे एवं प्रश्नोत्तरो संबंधी परमार्थ विचारनार विद्वाने तो अवश्यतया उत्तम धर्मनी परीक्षा करवी जोइए. धर्मनी परीक्षा तो परीक्षक विना न ज

थाय कारण के परीक्षा परीक्षक विना रही शकती नथी. न्यायनी भाषामां परीक्षा अने परीक्षकनो परस्पर व्याप्ति संबंध कह्यो छे, माटे ज उत्तम धर्मनी परीक्षा कोण करी शके विगेरे भावोने समजाववा चौदसो चुंमालीश ग्रंथकर्ता आचार्य हरिभद्रसूरिजी आ षोडशकनामा प्रकरणनुं कथन करे छे. आ प्रकरणमां आर्या छंदवडे निबद्ध सोल अधिकारो छे. प्रत्येक अधिकारने सोल–सोल श्लोकथी प्रतिपादन कर्या छे, माटे ज आ प्रस्तुत प्रकरणनुं सान्वय एवुं षोडशक नाम ग्रंथकर्ताए राख्युं छे।

आ तो उपर जणाव्या प्रमाणे प्रस्तुत ग्रंथकर्ताए प्रस्तुत ग्रंथनो संबंध दर्शाववा एक सामान्य प्रस्तावना कही. हवे प्रस्तुत ग्रंथने शरु कर्ता ग्रंथनी आदिमां मंगल, अभिधेय, संबंध अने प्रयोजनने दर्शावनार आदिनो आर्या श्लोक हरिभद्रसूरिजी कथन करे छे—

" प्रणिपत्य जिनं वीरं,
सद्धर्मपरीक्षकादिभावानाम् ।
लिंगादिभेदतः खलु
वक्ष्ये किंचित्समासेन " ॥ १ ॥

मूलार्थ—राग–द्वेषादि शत्रुवर्गने जीतनार एवा वीर परमात्माने नमीने उत्तम धर्मनी परीक्षा करनार वर्गो–लोको विगेरे पदार्थोनुं स्वरूप, तेना चिन्हो तथा भेदो प्रकाशवावडे करीने कांइक संक्षेपथी हुं (हरिभद्रसूरि) कथन करीश.

स्पष्टीकरण—" शिष्टाः शिष्टत्वमायान्ति शिष्टमार्गानुवर्त्तनात् " शिष्टो उत्तमपुरुषोना पंथनुं अनुकरण करवाथी उत्तमजनो उत्तमताने मेलवे छे " आ एक सर्व साधारण नियम छे. आचार्य हरिभद्रसूरिजी पण एक उत्तम शिष्ट कोटिना अग्रगण्य शिष्टपुरुष छे. शिष्टोनो एवो आचार छे के—

" शिष्ट-आचार "

ग्रंथना आरंभमां मंगळ, अभिधेय, प्रयोजन अने संबंध चार पदार्थो कह्या पछी ज अवशेष वक्तव्यनुं कथन करे छे. अतएव ग्रंथकर्ता पण आ चारे पदार्थनुं स्वरूप अने ग्रंथनो उद्देश एक ज आर्याद्वाराए देखाडे छे. शास्त्रनी आदिमां स्वेष्ट देवने नमस्काररूप मंगल करवुं आवश्यक गणाय, तेथी अने शास्त्रनी निर्विघ्ने समाप्ति थाय, श्रोता तथा पठन करनार सुखे शास्त्राभ्यास करी शके एवं आ ग्रंथ मंगलशून्य छे आ प्रकारनी शिष्योनी बुद्धिनो परिहार करवा माटे आचार्य— 'प्रणिपत्य जिनं वीरं' ए पदथी मंगलनुं प्रतिपादन करे छे, तथा अन्यान्य पदोवडे अभिधेयादिकनुं पण स्वरूप कहे छे.

" मंगलादि-कथन "

राग-द्वेषादि अनादिकालीन शत्रुवर्गनो विजय करवाथी जेओ जिनभगवंत बन्या छे, एवं प्रखर तपस्याथी जेओए निबिडतम कर्मोनो नाश करवा अद्भुत वीरपणुं दाखव्युं हतुं. एटले—" विदारयति यत्कर्म तपसा च विराजते ।

तपोवीर्येण युक्तश्च तस्माद्वीर इति स्मृतः " १ जेओ कर्मोने विदारे छे अने महान् तपस्याथी शोभे छे, अत एव तप अने वीर्यवडे युक्त होवाथी वीर ए नामथी जेमनुं स्मरण कराय छे, एवा अने अखंड वार्षिक दानद्वारा जगतना दारिद्र्यनो जेओए नाश कर्यो छे, सगम जेवा पिशाचाधम देवे छ मास पर्यंत भयंकर प्राणहर उपसर्गो करवा छतां जेओए अतुल क्षमा धारण करी हती, अने द्वादश वर्ष पर्यंत घोर तपस्या जेओए करी हती एवा दानवीर, शूरवीर अने तपवीर वीर भगवानने त्रिकोणयोगनी शुद्धिपूर्वक नमस्कार हो. परमार्थ ए के उपरोक्त गुणोथी रंजित थइ इंद्रादि देवोए जेओनुं महावीर ए सगुण नाम स्थापन कर्युं छे तेमने नमीने, आ रीते ग्रंथकर्ता श्लोकना प्रथम चरणवडे स्वेष्टदेवने नमनरूप मंगलनो बोध करी, बीजा चरणथी उत्तम धर्मनी परीक्षा करनारा विगेरे पदार्थोनुं स्वरूप कथन करवानुं जणावे छे. निदान के-प्रस्तुत ग्रंथमां धर्मना परीक्षको बाल, मध्यम, बुध पैकी ए त्रण वर्ग छे तेनुं स्वरूप एवं धर्मनुं स्वरूप, तेना लक्षणो, धर्मीनुं स्वरूप अने तेना लक्षणो विगेरे अनेक पदार्थनो परिस्फोट ग्रंथकार करशे ते पण विविध चिन्होवडे तेमज अनेक भेदोवडे संक्षेपथी ज किन्तु विस्तारथी नहीं, कारण के-अध्येतृ वर्ग अथवा श्रोतावर्गने अधिक क्लेश न थाय माटे, आ रीते ग्रंथकारे प्रस्तुत ग्रंथरचनानुं प्रयोजन जणाव्युं. अन्यान्य ग्रंथोमां पूर्व महर्षिओए जो के बाल, मध्यम आदि धर्मपरीक्षकोनुं स्वरूप

दर्शाव्युं छे, तथापि प्राचीन ग्रंथोक्त ते स्वरूप टुंकमां अने अने सामान्य होवाथी प्राकृतलोकोने उपकारक न थाय तेम धारी प्रस्तुत ग्रंथकर्ता धर्मपरीक्षकोना भेदो, तेओना चिन्हो आदि अत्र विस्तृतपणे दर्शावशे, जेथी विशेषतया सर्वने उपकारी आ ग्रंथ थाय ए ज आ ग्रंथरचनानुं प्रयोजन छे. उपरोक्त प्रयोजन सिद्धि प्रकरण के ग्रंथस्थ वाक्योना बोधद्वाराए ज थाय, अन्यथा न ज थाय ए स्वाभाविक छे. अत एव अत्र बाल, मध्यम आदि धर्मपरीक्षक वर्गनुं ज्ञान प्राप्त थवुं ते उपेय-साध्य छे, अने तेनुं आ ग्रंथ उपाय-साधन होवाथी अहीं उपायोपेयसाध्यसाधनरूप संबंध जाणवो. अहीं आटलुं विशेष जाणवुं के जगतमां ज्ञानना अर्थी लोको बे प्रकारना छे-एक तो शास्त्रकथित पदार्थोने युक्ति अने प्रमाणद्वाराए सिद्ध कर्या पछी जेओ श्रद्धा करे-अंगीकार करे ते, अने बीजा लोको शास्त्रोक्त पदार्थो सत्य ज छे, तेमां शंका करवी निरर्थक मानी श्रद्धा करवावाला होय छे. एटले पहेला वर्गना लोको माटे अहीं उपायोपेयसाध्यसाधनरूप संबंध जाणवो अने बीजावर्ग माटे गुरुपूर्वक्रम नामनो संबंध जाणवो.

"शंका समाधान"

यद्यपि ग्रंथकर्ताए प्रथम आर्यामां जेम मंगल अने प्रयोजन ए पदार्थनो स्पष्ट निर्देश कर्यो तेम संबंधने दर्शाववा माटे स्पष्ट उल्लेख कर्यो नथी, तो पछी अहीं आटलुं वधुं नकामुं पेषण करवानुं शुं प्रयोजन छे ? ए शंकानुं समाधान अहीं आ प्रकारे जाणवुं—

" शास्त्रं प्रयोजनं चेति,
संबंधस्याश्रयावुभौ ।
तदुक्त्यांतर्गतस्तस्माद्,
भिन्नो नोक्तः प्रयोजनात् " ॥ १ ॥

"शास्त्र अने प्रयोजन ए बन्ने संबंधना आश्रयी होवाथी ज्यां शास्त्र तथा प्रयोजननुं कथन थयुं त्यां संबंधनुं पण कथन थइ गयुं जाणवुं. एटले संबंध जणाववा माटे अलग निर्देश करवानी जरूर नथी." ए रीते मंगल, प्रयोजन अने संबंध दर्शाव्या हवे रह्युं केवल अभिधेय. यद्यपि ग्रंथरचनानुं प्रयोजन दर्शाव्युं एटले अभिधेयनुं कथन आवी गयुं छे, तो पण आ ग्रंथमां धर्मना परीक्षक एवा बाल, मध्यम आदि वर्गनुं चिह्नो तथा भेदादिवडे विस्तारथी स्वरूप आचार्यश्री दर्शावशे, एटले ए ज अहीं स्पष्ट अभिधेय जाणवुं.

आ रीते ए चारे पदार्थनो टुंकमां ग्रंथनी आदिमां कर्ताए विचार कर्यो. यदि ए चारे पदार्थनो विचार न जणाव्यो होय तो प्रस्तुत ग्रंथनो अभ्यास अने श्रवण करवानो कोइ मनोरथ न करे, कारण—विद्वानो तेवा ग्रंथनो अनादर करे छे, अत एव अन्यत्र कह्युं छे—

" प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं
फलादित्रितयं स्फुटं ।

मंगलं चैव शास्त्रादौ
वाच्यमिष्टार्थसिद्धये" ॥ १ ॥

"पंडितोनी प्रवृत्ति माटे शास्त्रनी आदिमां ज प्रयोजन, संबंध अने अभिधेयनुं कथन करवुं तथा इष्टार्थनी सिद्धि माटे शास्त्रनी आदिमां मंगल पण जणाववुं" आ हेतुथी ग्रंथनी आदिमां चार पदार्थनो सयुक्तिक विचार विद्वानो माटे जणाव्यो, ए हवे फरीने जणाववानी आवश्यक्ता नथी.

कर्त्ताए प्रथम जणाव्युं हतुं के-"सत्य धर्मना परीक्षक एवा बाल, मध्यम आदि वर्गनुं स्वरूप कहीशुं." ए कथनानुसारे तेनुं स्वरूप ग्रंथकर्त्ता अहीं बीजी आर्याथी शरु करे छे-

"प्रकरणारंभ"

"बालः पश्यति लिंगं
मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् ।
आगमतत्त्वं तु बुधः
परीक्षते सर्वयत्नेन" ॥ २ ॥

मूलार्थ—"बालजनो-मंदबुद्धिवानो मात्र बाह्यवेश देखीने, मध्यमबुद्धिक केवल आचार-वर्तन देखीने, अने तत्त्वज्ञ-जनो सर्वथा प्रकारे आगमतत्त्वनी ज परीक्षा करे छे."

"जनतानी प्रकृति"

स्पष्टीकरण—वहोळा जनसमूहमां अमुक ज लोको धर्ममति रुचिवाला अनुभववामां आवे छे, कारण के जनतानो म्होटो भाग तो केवल एशआराम अने पुद्गलसुखविलासी ज देखाय छे. हवे जे लोको धर्मानुरागी जणाय छे तेमां पण केटलोक भाग तो वंशपरंपरागत कौटुंबिक प्रेरणाथी अथवा तो व्यवहार-मां पोतानी निंदा न थाय एटला माटे अगर वहुमानार्थे ज धर्म उपासना करे छे. जे लोको धर्म उपासक छे ते सर्वे कांइ सत्य धर्मनी परीक्षा कर्या पछी ज धर्म सेवे छे एवुं कांइ छे नहीं. कारण—परंपरागत अथवा व्यवहार रक्षणार्थे के वहुमानार्थे कराता धर्ममां सत्यपणानी परीक्षा क्यांथी संभवे? न ज संभवे. निदान के—बाह्य परीक्षा कर्या पछी पण सत्य धर्मनी सेवा कर-नार वर्गना त्रण विभाग पाडी शकाय. जेओ केवल अबुद्ध होय अर्थात् उपरनो बाह्य आडंवर देखी प्रसन्न थाय ते १, जेओ मात्र क्रिया—आचार विगेरे जाणी खुशी थाय ते २, अने जेओ शास्त्र—आगम अनुसारे वर्तन चेष्टा जाणया पछी, तपास्या पछी प्रसन्न थाय ते ३, एटले जेओ सत्य धर्मनी परीक्षा करनार होय ते सर्वेनो आ त्रण विभागमां ज समावेश थइ जाय छे. आथी अतिरिक्त कोइ पण लोको नथी.

"बालवर्ग"

परमार्थ ए के—जेओ अबुद्ध होय छे, विशिष्ट प्रकारनी सारासार समजवानी अने वस्तुतत्त्व समजवानी जेओमां बुद्धिनी खामी होय छे, ते लोको केवल बाह्य वेश अथवा

वेशनो आडंबर देखीने खुशी थाय छे ने तेमां ज आ लोको धर्म माने छे. एटले ज्यां साधुपणानो बाह्य आडंबर देखवामां आव्यो, अगर ज्यां धर्माडंबरनी बाह्य रचना नजरे पडी के ते लोको गांडाघेला थइ जाय छे, नाचवा–कूदवा मांडे छे, अहोभाग्य मानी लांबा लांबा नमस्कारो करवा दोडी जाय छे. आथी आ लोकोने विद्वानो बालक कहे छे, कारण के–आ सर्व चेष्टा बालयोग्य–बालक जेवी देखाय छे. जेम कोइ छोकराने तेना मावापे कर्युं के–देवपूजानो वेश, सामायक–प्रतिक्रमणनो वेश जेणे पहेर्यो होय. एवं रजोहरण, मुहपत्ति, धोळा कपडां जेणे पहेर्यां होय ते धर्मी कहेवाय. ने साधु कहेवाय. बस आटली शिखामणना अंते ज्यां उपरोक्त स्थिति बाळकना देखवामां आवी के मावापनी शिक्षा याद करी ते प्रमाणे मानवा दोडी जाय छे. आ ज स्थिति उपरोक्त वर्गना लोकोमां तदाकारपणे देखाय छे, माटे ज ग्रंथकर्ता एक ज पदथी जणावे छे—" बालः पश्यति लिंगं "

" मध्यम वर्ग "

बीजो वर्ग मध्यमबुद्धिनो जणाव्यो छे. आ लोको प्रथम वर्गनी अपेक्षाए अधिक चडता छे एटले बुद्धिमां आगल वधता होवाथी कांइक विचारशील होय छे. एटले तेओ उपरनी खास टापटीप, बाह्य वेश के आडंबर देखी मुग्ध नथी बनता, किन्तु विचार करे छे के–केवल वेश तो दांभिको पण पेट भरवा स्वीकारे छे, माटे वेश साथे आचार, नियम अने क्रिया पण

होय तो ज ते वंदनीय–नमस्करणीय कहेवाय. निदान के–वेश साथे आगल जणावाशे तेवा आचारो देखी–तपासी पछी ज आ लोको तेमां धर्म माने छे; माटे आ लोकोने वालकवर्गथी भिन्न मध्यम वर्ग नामे बीजी पंक्तिमां विद्वानो गणावे छे. आ वर्ग पैकीना लोकोमां एटली अवश्य विशिष्टता होय छे के–तेओ मुनिवेष के श्रावकनो धर्मीवेष देख्या पछी जो के नम्र, कोमलपरिणामी वने छे खरा तो पण साथे साथे पोतानी बुद्धिथी एटलुं तो जरुर विचारे छे के–अहीं आचार–नियम विगेरे केवा छे? ते जो होय तो नमस्कारादि करे अने न होय तो लोकरंजननो आडंबर छे एम माने छे. अत एव ग्रंथकारे कहुं के–" मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् " मध्यमबुद्धिजनो आचारनो विचार करे छे.

" बुधवर्ग "

ज्यारे तत्त्वज्ञजनो उपरोक्त बन्ने वर्गथी भिन्न होय छे एटले आ लोको वेशमात्रथी राजी थता नथी तेमज उपरना आचारादि मात्र देखवाथी खुशी थता नथी, अर्थात् जेओमां विशिष्ट तत्त्वज्ञान होय, परमार्थ जेओ अच्छी रीते देखी शके छे, कार्यना परिणामदर्शी जेओ होय छे, जेओने आगमोक्त तत्त्वनो सुंदर बोध होय तेनुं नाम अहीं बुद्धवर्ग छे. एटले आ लोको पोतानी बुद्धि अनुसारे जेमां वेश तेमज आगमानुसारी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्री वर्तन, नियम, आचारादि होय तेमां ज धर्म माने छे, अने तेनो ज आदर करे छे. सिवाय खाली

वेश के बाह्य आचारादिमां धर्म मानता नथी, कारण के प्रवचनाज्ञा प्रधान जे वर्त्तन अने तेवा वर्तनथी अलंकृत मुनिवेश आदि मार्ग ज आत्मकल्याण साधी शके छे. जेम प्रवचन-आज्ञानो लोप थतो होय, प्रवचनने बाधा उपजती होय तेवुं एकान्त सुंदर पण चारित्र गर्हणीय कहुं छे. निदान के-प्रवचन आज्ञानुं बराबर पालन थवुं जोइये-" धर्माधर्म-व्यवस्थायाः शास्त्रमेव नियामकं । तदुक्तासेवनाद्धर्मस्त्वधर्मस्तद्विपर्ययात् " ॥ १ ॥ " धर्म, अधर्मनी व्यवस्था करवामां शास्त्र पोते ज नियामक छे, माटे शास्त्राज्ञाना पालनमां धर्म अने तेथी विपरित चालवाथी अधर्म छे. " निष्कर्ष ए के- बुधजनो तत्त्वदर्शी होवाथी आगमाज्ञानुसारी वर्तन देखे छे अने आगमतत्त्वनी ज परीक्षा करे छे; वेश आदिनी परीक्षा करता नथी, ए ज वात ग्रंथकर्त्ता जणावे छे- " आगमतत्त्वं तु बुधः परीक्षते " मूलमां " सर्वयत्नेन " ए पद ग्रंथकर्त्ताए एटला माटे आप्युं छे के-बालजीवो अने मध्यमजनो धर्मनी परीक्षा केवल सामान्यपणे ज करे छे परंतु खास दृढताथी करता नथी, ज्यारे बुधजनो सर्व प्रकारे पोतानी बनती कोशीशे अने कसोटीपूर्वक आगमतत्त्वनी परीक्षा करे छे.

अथवा जेम बालजीवो केवल वेशमां अने मध्यमजनो केवल आचारमां धर्म माने छे तेम बुधजनो मानता नथी, किन्तु वेश अने आचार जणावनार शास्त्रमां तत्त्व परमार्थ शुं

छे ? तेमां अविसंवादिपणुं केवुं छे ? सर्वज्ञकथित छे के नहीं ? विगेरे तपासे छे अने त्यारपछी तथाप्रकारना वेश के आचारादिने धर्मतया-सत्यतया स्वीकारे छे. बस आ रीते भिन्न भिन्न बुद्धिना कारणथी उपरोक्त त्रण भेदो धर्मपरीक्षकोना अहीं ग्रंथकर्त्ताए जणाव्या.

आटलुं सामान्य कथन कर्या पछी हवे बाल, मध्यम आदिनी विशिष्ट ओळखाण कराववी आवश्यक गणाय माटे आचार्यश्री ते प्रत्येकना लक्षणो प्रथमथी दर्शावे छे—

बालो ह्यसदारंभो
मध्यमबुद्धिस्तु मध्यमाचारः ।
ज्ञेय इह तत्त्वमार्गे,
बुधस्तु मार्गानुसारी यः ॥ ३ ॥

मूलार्थः—असद् आरंभमां प्रवृत्ति करे ते बाल, मध्यम आचार सेवे ते मध्यम, अने तत्त्वमार्ग-परमार्थनी प्रवृत्ति करनार मार्गानुसारी जे होय ते बुधपुरुष जाणवो.

"बाल-लक्षण"

स्पष्टीकरण—अहीं ग्रंथकर्त्ता बाल, मध्यम अने बुधना लक्षणो दर्शावे छे. प्रत्येक पदार्थनुं ज्ञान तेना लक्षणनु भान थवाथी ज थाय छे. पहेला श्लोकमां धर्मपरीक्षक वर्गना त्रण भेदो दर्शाव्या एटले तेओनुं विशिष्टज्ञान करवा लक्षणो दर्शाववा ज जोइये. अतएव "बालो ह्यसदारंभो" असद्-

खोटा–दुष्ट एवा आरंभो–पापो जे करे–सेवे ते बाल जाणवो. एटले जे पापोनो शास्त्रमां अनेकधा निषेध कर्यो होय, जे पापो सेववाथी उभय लोकनुं अकल्याण थाय, जे कार्योमां शास्त्रे बहु पाप मान्युं होय, लोकोमां वारंवार निंदा थाय, जेवा के–चोरी, महाजूठ, व्यभिचार आदि, धर्मी अने महापुरुषोनी निंदा, ज्ञानी तथा धर्माचार्यनी गर्हा विगेरे विगेरे अनेक पापीय कार्योमां जेओनुं चित्त रम्या करे, नित्यशः तेवा कार्यो करता जेओ पोतानी स्थिति मर्यादा, लोकनिंदा, दुर्गतिनो डर अने प्रभु आज्ञानो भय गणे नहीं ते सर्व अहीं बालवर्गमां जाणवा. प्रथम कह्या प्रमाणे आ वर्गमां विशेष बुद्धि न होवाथी ते लोको आगल–पाछल कांइ पण विचारता नथी, तेथी ज आ लोकोनी आवी कढंगी स्थिति होय छे.

"मध्यम–लक्षण"

"मध्यमबुद्धिस्तु मध्यमाचारः" मध्यम प्रकारना जे आचारो सेवे ते मध्यमबुद्धि. आ वर्गमां पहेला वर्गनी अपेक्षाए विशिष्ट मति होवाथी ते लोको विशेष विचार करे छे, जनापवाद अने आत्मनिंदानो भय राखे छे. एवं विशेष पापने समजता होवाथी अधिक पापमय कार्यो करता डरे छे. जे कार्योमां शास्त्रे विशेष पाप दर्शाव्युं होय अने जनतानो वहोळो भाग विशेष पाप मानतो होय तेवा पापाचारो जे न सेवे, जेवा के पूर्वे जे बालजीवो पापो करे छे ते सर्व पापो आ लोको सेवता नथी, तो पण शास्त्रनो बोध न होवाथी

जेमां विशेष आत्मकल्याण थाय तेवा कार्यो करवा चित्त करता नथी; माटे ज अत्रे मध्यम आचार सेवे तेने मध्यमबुद्धि जन देखाड्यो. निष्कर्ष ए ज के—बीजी कोटीमां जणावेल सर्व लक्षणो मध्यमबुद्धिना जाणवा.

" बुद्ध-लक्षण "

त्रीजो वर्ग ' बुधजन " नो जणाव्यो छे. आ वर्ग बन्ने वर्गथी सर्वथा भिन्न छे. आ वर्गना समूहमां एवी तो कुशाग्र बुद्धि होय छे के जेथी आ लोको परापूर्वनो विचार कर्या पछी ज प्रत्येक कार्यो हाथ धरे छे. अर्थात्—जेमां उभय-लोकनुं कल्याण समायेलुं होय, बुद्धिमान् जनता विशेष प्रशंसा करे अने महात्माओ पण जेनापर पक्षपात धरावे, एवा जनप्रशंसनीय अने उभयलोकहितकारी आचारो जेओ सेवे. परमार्थ के—जे लोको उपरनी टापटीप अथवा बाह्यक्रियाना खोखोथी प्रसन्न थता नथी, किन्तु शास्त्रानुसारी तत्त्वमार्ग अहीं केटलो छे अने ते सप्रमाण सयुक्तिक बरावर सत्य छे के नहीं, आटलुं तपास्या पछी ज दरेक कार्यो करे. एवं जे कार्योथी शासनशोभा वधे, धर्मवृद्धि थाय अने अन्य आत्माओ पण धर्मी बने तेवा ज कार्यो जेओ करे. निष्कर्ष एज के—वीतरागदर्शित मार्गनुं ज जे लोको बरावर आराधन करे, ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपी रत्नत्रयीनी सेवना करे, माटे ज अहीं ग्रंथकर्त्ताए "बुधस्तु मार्गानुसारीयः" बुध ते ज जाणवो के जेनी मार्गानुसारी प्रवृत्ति होय.

उपर आपशो तपासी गया के-" बाह्यवर्ग ते ज जाणवो के जेओ बाह्यवेश मात्र देखी खुशी थाय, नमस्कार करे अने तेमां धर्म माने " आथी ज बालवर्ग खरो धर्म पामी शकतो नथी, कारण के बाह्यवेश धर्मप्रति कांइ प्रधान. कारण नथी, किन्तु अप्रधान कारण मान्यो छे. आथी शुं बाह्यवेश ए त्याग नथी जेथी तेमां धर्मनो निषेध कर्यो ? आ शंका उपजे खरी. अतः आ शंकाना उद्धार अर्थे ग्रन्थकार हवे समा-धान बतावे छे.

बाह्यं लिंगमसारं
तत्प्रतिबद्धा न धर्मनिष्पत्तिः।
धारयति कार्यवशतो
यस्माच्च विडंबकोप्येतत् ॥ ४ ॥

मूलार्थ—बाह्यवेश-उपरनो आडंबर असार-तुच्छ छे. हेतु ए के-बाह्यवेशना साथे कांइ धर्मसिद्धि प्रतिबद्ध नथी, कारण के अमुक कार्य परत्वे-कांइक स्वार्थनी सिद्धि माटे विडंबक लोको अने नाटकियाओ पण आ बाह्यवेश धारण करे छे.

" बाह्यवेशनी तुच्छताना कारणो "

स्पष्टीकरण—बाह्यवेश ए शुं त्याग नथी ? बाह्यवेश धर्ममां अप्रधान कारण शा माटे ? आ शंकाओनो उद्धार आ प्रमाणे जाणवो-बाह्य एटले जेने जनता पोतानी दृष्टिये

देखी शके, तुरतज जाणी शके एवो जे वेश–कपडानो आडंबर-उपरनी टापटीप. जेमके जैन मुनियोनो पोतवस्त्र, रजोहरण, मुहपत्ति आदि; यतियोनो श्वेतवस्त्र, रजोहरण आदि; संन्यासी-ओनो गेरु कपडा, चाखडी, दंड, कमंडल आदि; बावाओनो भभूत, लंगोट, टिलाटपका, चिपियो आदि; फकीरनी कफनि, माला आदि; आ सर्व ते ते लोकोनो बाह्यवेश जाणवो कारण के आथी सामान्य जनता पण विना पूछये जाणी शके छे के–आ कोइ साधु या फकिर छे. पण अहीं तत्त्वदृष्टिए तेमां खास धर्म होय एवो नियम नथी, कारण के धर्म साथे बाह्यवेश ऐकान्तिक संबंध धरावतो नथी. परमार्थ के–ज्यां बाह्यवेश होय त्यां धर्म होय, अने बाह्यवेश न होय त्यां धर्म न होय, एवो बाह्यवेश तथा धर्मनो एकान्तव्याप्ति संबंध नथी. निदान के–भ्रष्टाचारियो, पासत्थाओ, वेशविडंबको अने नाटकीयाओ तथा यतियो पण आ बाह्यवेष धारण करे छे तदपि त्यां धर्म देखातो नथी. फरी केटलाक महानुभावो उच्च आदर्शपुरुषो बाह्यवेष विना पण धर्मिष्ट देखाय छे, अतएव अत्रे ग्रंथकर्त्ताए "बाह्य–लिंगमसारं" बाह्यलिंग–वेशने असार–तुच्छ कह्यो. परमार्थ के–बाह्यवेश ए खास धर्मप्राप्तिमां हेतुभूत ज छे एवो अखंडच नियम नथी, तेम वेषविडंबको पण तेनो दुरुपयोग करता नजरे देखाय छे. आ बे कारणोथी अहीं वेशने आचार्यश्रीये तुच्छ गण्यो, परंतु ए तो निश्चित छे के–बाह्यवेश धर्मसंस्थापक, मर्या–दाबंधक, लज्जावर्धक तो अवश्य छे ज, एटले परंपराए बाह्यवेश

धर्मप्रापक जणाय छे खरो, छतां अहीं जे निषेध जणाव्यो छे तेनो भावार्थ एटलो ज के धर्मप्रति खास एकान्त, अबाध्य, अनंतर कारण बाह्यवेश नथी, तेमज परंपराए पण कारणभूत शिथिल आत्माओने ज थाय छे; अन्यने नही ज. आ परथी बाह्यवेश उपेक्षणीय छे एवुं निश्चित समजवानुं नथी, कारण के– शास्त्रमां मुख्यतः ते सिवाय मुक्तिनो पण निषेध कर्यो छे, तथा वेशरहित भावचारित्री पण अवंदनीय दर्शाव्यो छे. अतः व्यवहारथी ते सर्वथा स्वीकार्य छे, परंतु अत्रे तो तत्त्वदृष्टिनो ज विचार कर्यो होवाथी दर्शाव्यो छे, अतः बाह्यवेशने असार–तुच्छ कह्यो, परमार्थमां तो एकान्त अखंडय सत्य होय तेनुं जे प्रतिपादन करवुं तेज न्याय गणाय. ॥

व्यवहारमां बाह्यवेश धर्मप्राप्ति प्रति प्रधान कारण मनाय छे, जे बाह्यवेश त्यागनुं भान करावे छे, जेथी आ कोई साधुपुरुष छे, एवी लोकोने प्रतीति अने ते द्वारा धर्मप्राप्ति लोकोने थाय छे. आटलुं छतां अहीं वेशने अप्रधान तुच्छ शा माटे आचार्ये कह्यो ? आ सचोट दलीलनुं समाधान ग्रंथकार आ रीते करे छे.–

बाह्यग्रंथत्यागान्न चारु,
न त्वत्र तादितरस्यापि ॥
कंचुकमात्र त्यागान्न हि,
भुजगो निर्विषो भवति ॥ ५ ॥

मूलार्थ—बाह्य परिग्रहनो त्याग करवाथी कांइ मनोहर त्याग कहेवाय नहीं, कारण के आवो त्याग तो जानवरोने अथवा वेशधारीओने पण होय छे, पण त्यां धर्म देखातो नथी, सांप कांचळी मात्रने छोडी देवाथी कांइ निर्विष बनतो नथी॥

बाह्य त्याग ते अत्याग सांपनुं दृष्टांत

स्पष्टीकरण—ग्रंथ एटले परिग्रह. आ परिग्रह बाह्य अने आभ्यंतर एम बे प्रकारनो कहेवाय छे धन, धान्य, कुटुंब, घर विगेरे बाह्य, तथा लोभ, मोह, प्रेम, आसक्ति, तृष्णा विगेरे आभ्यंतर परिग्रह जाणवो. आचार्यश्री कहे छे के–आ धन, कुटुंब, घर आदिनो बाह्य परिग्रह केवल छोडवाथी–त्यागवाथी कांइ धर्मीपणुं आत्माने प्राप्त थतुं नथी, कारण के आ रीते बाह्य त्याग करवा छतां आभ्यंतर त्याग तो न ज होय, किन्तु दुष्ट अनेक वासनाओ, पुद्गलभावनो अद्भूत मोह, मान, पूजा, प्रतिष्ठा अने कीर्तिनो लोभ, अनिष्ट तथा अप्रीतिवर्द्धक पदार्थनो द्वेष, विषयोनी आसक्ति एवं तृष्णा यथावत् बनी रही होय तो ते त्याग ज न कहेवाय; परंतु ते मोह ज छे–उपरनो आडंबर ज कहेवाय–लोकरंजन बाह्याचार ज कहेवाय. आथी ज अहीं धर्मीपणानी गंधमात्रा पण नथी होती, किन्तु आवो त्याग तो केवल पापप्रकृतिना उदयनुं फल जाणवुं. जन्मांतरमां भ्रमण करावनार कर्मबंधक आ त्याग जाणवो, एवं आवा त्यागथी जो त्यागीपणुं–सत्य साधुपणुं सुलभ होय, धर्मीपणुं आत्माने मलतुं होय, तो श्वान आदि अने धूर्त मनुष्यो पण

आवो त्याग धारे अगर त्यागे छे; छतां तेमां धर्मनो गंध साक्षात देखातो नथी, एटले नितान्त बाह्यत्याग ए मनोहर त्याग न ज कहेवाय. आचार्यश्री ए ज वातने उत्तरार्द्धथी सचोट दृष्टान्त आपी सिद्ध करे छे. व्यवहारमां आ वात प्रसिद्ध छे के—सर्प पोताना उपरनी कांचली उतारी नांखे छे, परंतु एतावन् मात्रथी साप लेश पण विषरहित बनतो नथी किन्तु विषधारीज रहे छे. एवं आभ्यंतर त्याग विना बाह्यत्यागी साचो त्यागी, सत्य साधु कहेवाय नहीं—धर्मी कहेवाय नहीं. निदान ए के—लोकोने जे त्यागनुं भान, आ त्यागी पुरुष छे एवी बुद्धि बाह्यवेशथी उपजे छे, ते केवल लोकोनो त्याग प्रतिनो अद्‌भूत प्रेम, साधुओ प्रति पोतानो साचो पक्षपात, अने साधुओ त्यागी छे एवी पोतानी दृढ मान्यताने लीधे ज अथवा लोकोनी भद्र-प्रकृति, कारण के—लोको धर्म पण तुरत ज पामे छे, अने बाह्य-त्यागीमा ज्यारे गोटाळो देखे छे त्यारे अधर्म पण तेथी अधिक पामे छे, आथी बालवर्गने जे बाह्यवेशथी धर्म प्राप्त थाय एटला मात्रथी ते धर्म्य छे, प्रधान छे, एम न कही शकाय. निष्कर्ष ए के—आभ्यंतर त्यागपूर्वक बाह्य वेश ज धर्मप्राप्तिमां मुख्य कारण बने छे एम जाणवुं। केवळ बाह्य वेश तो अप्रधान ज कह्यो छे.

फरी एज वातने आचार्यश्री अन्य मतना प्रमाणथी पुष्ट करी अधिक सिद्ध करे छे—

मिथ्याचारफलमिदं
ह्यपरैरपि गीतमशुभभावस्य ।

सूत्रेऽप्यविकलमेतत्प्रोक्त-
ममेध्योत्करस्यापि ॥ ६ ॥

मूलार्थ—अपर-अन्यदर्शनीयोए पण निश्चयपूर्वक अशुभभाव विशिष्ट एवा बाह्यत्यागनुं फल मिथ्याचार-कपट-फल कह्युं छे, अने जैन सिद्धांतमां पण आवा त्यागने अवि-कलपणे विष्टाना उकरडा जेवो कह्यो छे.

बाह्यत्यागनुं फल

स्पष्टीकरण—अपर-जैन सिवायना दर्शनवालाओ अर्थात् पांतजल विगेरे आभ्यंतरत्याग विनाना बाह्यत्यागने अशुभ-भाव कहे छे. अर्थात्-केवल बाह्यत्याग ते ज कहेवाय के जेना अंतरमां अनेक मलीन वासनाओ, दुष्ट संकल्पो, विषयोनी तृष्णा आदि भर्या होय, अतएव आ त्यागने अशुभ, अपवित्र त्याग अहीं कह्यो, अने आवा त्यागनुं फल ते लोको स्पष्टतया-निश्च-येन मिथ्याचार-कपटीत्याग दांभिक फल दर्शावे छे, जेम कोइ नट लोकोने रंजन करवा, मोह उत्पन्न करवा अल्पकाल माटे मुनिवेश धारण करे छे, पण नाटकना अंते ए वेश उतारी नांखे छे; परंतु अंतरमां तत्संबंधी लेश पण भाव के त्याग होतो नथी, जेथी आ त्याग नाटकियो-त्याग दांभिकत्याग कहे-वाय छे. एवं अत्रे पण उपरोक्त त्यागने नाटकीयो त्याग कह्यो छे. आ त्यागनुं फल मिथ्याचाररूपी फल सिवाय अन्य फल मलतुं नथी वधुमां शास्त्रकर्ताओए आवा त्यागने तो केवल महापापना उदय तरिके जणाव्युं छे.

" मिथ्याचार "

मिथ्याचारनुं स्वरूप आ प्रमाणे छे-" बाह्येंद्रियाणि संयम्य, य आस्ते मनसा स्मरन्। इंद्रियार्थे विमूढात्मा, मिथ्याचार स उच्यते" ॥१॥ "बाह्य इंद्रियोनो संयम करी जे मूढात्मा इन्द्रियोना विषयोनुं मनथी ध्यान करतो संयममां-त्यागमां रहे ते मिथ्याचार कहेवाय. " टुंकमां जेओ साधुपणुं बाह्यथी धारण करी भ्रष्टाचारो सेवे, लोकोने ठगे, लोक रंजनार्थे अनेक कष्टो वेठे, विषयवासनाओने पुष्ट करे, शरीरादिकनी पुष्टि माटे अनेक उपचारो करे, ए सर्वनो त्याग दांभिकत्याग, तिरस्करणीय धिक्कारवा योग्य त्याग जाणवो. आवा त्यागमां रहेवा करता ते त्याग छोडी उत्तम ग्रहस्थधर्म स्वीकारी व्यापारादि कर्मोथी आजीविका करवी ते हितावह कहेवाय. अत्रे टीकाकार भार दइ आवा वेश माटे सखत फटको मारे छे. रोग तथा उपभोग रहित पुरुषे पंडितोमां निंदाकारी तथा क्लिष्ट एवी आजीविका केवळ पेट भरवा खातर ज अथवा मानपूजाना लोलुपीपणाथी आभ्यंतरत्याग विना खाली बाह्यवेश धारण करवो ते पूर्व जन्मनां उपार्जित अशुभकर्मनुं विपाक फल-कटुकफल जाणवुं. निदान के-पूर्वना पापकर्मना उदयथी आवो त्याग उदयमां आवे, धारण कराय, वर्तमान समयमां आ वात बहु विचारवा जेवी छे. ग्रंथकर्त्ता आटलुं कही जणावे छे के अन्यदर्शनमां ज नहीं, किन्तु जैन सिद्धान्तमां पण आवा त्याग माटे बहु बहु कडक रीते कह्युं छे. अणंतसो दव्वलिंगाइं.

" उकरडो अने त्याग "

विगेरे गाथाओवडे गुणशून्य त्याग मलमूत्र नांखवाना उकरडा जेवो जाणवो. जेम उकरडो मळमूत्रथी व्याप्त होवाथी लोको तेना प्रति तिरस्कारभावथी देखे छे, एवं उपरोक्त त्याग पण गुणशून्य नहीं, किन्तु अनेक मलिन वासना, विषयतृष्णा-मान, पूजा प्रतिष्ठा, लोभरूप, मळमूत्र भरेल होवाथी उकरडो छे. उकरडामां दुर्गंध ज होय तेम अहीं पण दुर्गुणरूप दुर्गन्धनी मात्राओज देखाय छे. वधुमां सज्जनो उकरडा तरफ तिरस्कार भावथी नथी देखता पण तेने अमुक अंशे सादरभावथी पण देखे छे. ज्यारे आ त्यागरूप उकरडा तरफ तो सज्जनो शुं पण महात्माओ पण तिरस्कार्य नजरथी देखे छे तेनो छांया लेवानो पण निषेध करे छे, एटले विष्टाना उकरडा करतां आ त्याग तो सर्वांशे उपेक्षणीय छे, दूरथी सो सो गजना नमस्कार करवा योग्य छे. परमार्थ के—आवो त्याग देखी तेना पर पूज्यभाव धारण करवो ते पण महापापकारी समजवुं. ज्यारे बालवर्ग आवा त्यागने पण धर्मबुद्धिए निहाळे छे, वंदन, पूजन, नमस्कार करे छे; माटे ज अहीं आ वर्गने कनिष्ठकोटि-नो विद्वानो माने छे. ॥

प्रथम कह्युं हतुं के—"बालवर्ग" करता मध्यमबुद्धि वर्ग चडतो छे, कारण के आ लोको खाली वेशथी ज खुशी नथी थता किन्तु वर्तन आदि तपासे छे. एटले हवे अहीं मुनियोनुं वर्तन कोने कहेवुं ? अने ते वर्तन केवुं होय ? ए वात

जाणवानी रही माटे ग्रंथकर्ता ए वातनो स्पष्ट खुलासो करे छे.—

> वृत्तं चारित्रं खल्वसदारं-
> भविनिवृत्तिमत्तच्च ॥
> सदनुष्ठानं प्रोक्तं
> कार्ये हेतूपचारेण ॥ ७ ॥

मूलार्थ—असद्–अशुभ पापकारी आरंभोना त्यागरूप-अभावरूप जे क्रिया ते चारित्र, आनुं नाम ज सद्वर्तन जाणवुं. आ वर्तनने कार्यमां कारणनो उपचार–आरोप करी शास्त्रमां सदनुष्ठान कह्युं छे. "

"सत्य चारित्र अने तेनी व्याख्या"

स्पष्टीकरण—वृत्तं–वर्तनं. वृत्त एटले वर्तन–वर्त्ताव, आचार, आनुं नाम चारित्र–सत्यत्याग. आ सर्व शब्दो एक ज भावने ध्वनित करे छे एटले एकार्थ प्रतिपादक शब्दो जाणवा. परमार्थ ए के–विधि अने प्रतिषेध बन्ने जेमां होय ते चारित्र. जेमके टीकाकार कहे छे–हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन, मूर्च्छा ए पांच कर्म आववाना द्वारो–आश्रवो छे. आ पांचेनो जेमां सर्वांशे निषेध होय तथा अहिंसा, जूठनिवृत्ति, अदत्तत्याग आदिनुं विधान जेमां एकान्ततः जणाव्युं होय, मूलमां 'खलु' ए वाक्य अवधारणार्थे–निश्चयार्थे आपेल होवाथी, आवा प्रकारना वर्तनने ज चारित्र दर्शाव्युं छे. निदान के–विधि तथा

प्रतिषेध विनानुं अथवा उभयकोटी पैकी एक ज विधि या प्रतिषेधकोटीवालुं चारित्र न कहेवाय, कारण के–निगोदवर्त्ती जीवो हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन विगेरे कांइ करता नथी एटले तेओ शुं चारित्री कहेवाय खरा ? नहीं ज. एवं पाषाण अगर लाकडामां अहिंसक, जूठरहित विगेरे भावो स्पष्टतया मालूम पडे छे, अथवा मूर्च्छित मनुष्यमां आ चिन्हो मालूम पडे छे तो शुं ते पदार्थो चारित्री कहेवाय ? नहीं ज. आ हेतुथी विधि–प्रतिषेधरूप ज चारित्र अत्रे अपेक्षित छे एम 'खलु' ए वाक्यथी जणाव्युं. आनो मथितार्थ मूलकर्त्ता जणावे छे के–'असदारंभविनिवृत्तिमत्तच' असद्–बूरा–खोटा एवा जे आरंभो के जेनाथी भवनो प्रपंच वधे, अनंतकर्मोनो बंध थाय, आत्मा जन्म–मरणना फेरामां भटके, छकायनो वध क्षणे क्षणे जेमां होय, तेनो त्याग–निषेध जे वर्तनमां होय ते अहीं चारित्र जाणवुं, आवा चारित्रने शास्त्रकर्त्ताओ सदनुष्ठान कहे छे.

" सदनुष्ठाननुं लक्षण "

शास्त्रमां आत्मीय विशिष्ट त्यागरूप परिणामनुं नाम चारित्र कह्युं छे. ने बाह्यक्रियारूप सद्वर्तननुं नाम सदनुष्ठान जणाव्युं छे. आ रीते चारित्र तथा सदनुष्ठाननो भेद खुल्लो दर्शाव्यो छे, छतां अहीं चारित्रने ज ग्रंथकर्त्ता सदनुष्ठान जणावे छे. तेनो खुलासो करवा श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी कहे छे के–" कार्ये हेतूपचारेण " प्रथम आत्मीय विशिष्ट परिणामरूप आभ्यंतर चारित्र–लोभ तृष्णा आदिनो त्याग करवारूप भाव

प्रकट थाय अने त्यारपछी तेना फलरूपे बाह्यक्रिया—सद्वर्तन विशिष्ट आचारोनो जन्म थाय छे. एटले चारित्र ते कारण अने सदनुष्ठान तेनुं फल कार्यरूप छे, माटे अहीं कार्यमां कारणनो उपचार आरोप करी चारित्रने ज—आभ्यंतरत्यागने ज सदनुष्ठान कह्युं. निदान के—सुंदर सदनुष्ठान आभ्यंतरत्यागपरिणति विना मली शके नही. आ रीते सुंदर सदनुष्ठान ते ज जाणवुं के—जे परमार्थ—चारित्र—सत्यचारित्र होय. अहीं वर्तन बाह्यक्रियारूपी चारित्रनी परीक्षा करवा मध्यमबुद्धिजनो प्रवृत्ति करे छे; माटे तेओने बालवर्ग करता चडती कोटीना कह्या आटलुं विशेष जाणवुं.

हवे उपरोक्त सदनुष्ठान तो शुद्ध तथा अशुद्ध एम बे प्रकारनुं छे. अतएव आ बन्ने प्रकारनुं सदनुष्ठान ग्रंथकर्ता जणावे छे.

> परिशुद्धमिदं नियमादांत-
>
> रपरिणामतः सुपरिशुद्धात् ॥
>
> अन्यदतोऽन्यस्मादपि
>
> बुधविज्ञेयं त्वचारुतया ॥ ८ ॥

मूलार्थ—सुविशुद्ध—अतिनिर्मल एवा आत्मीय परिणामपूर्वक जे सदनुष्ठान प्रगटे ते सर्वतो शुद्ध चारित्र जाणवुं, अने ए सिवाय अन्य कारणोथी जे बाह्य अनुष्ठान प्राप्त थाय

ते अशुद्धचारित्र. अहीं शुद्ध तथा अशुद्धपणानी परीक्षा पंडितजनो ज करी शके. ॥

"सदनुष्ठानना भेदो"

स्पष्टीकरण—अनुष्ठान एटले बाह्यवर्तन, आ वात उपर जणावी गया. आ अनुष्ठान बे प्रकारनुं कह्युं छे. चारित्रमोहनीयकर्मना क्षयथी अथवा उपशम थवाथी आत्मानी विशिष्ट त्याग तरफ जे अभिरुचि प्रगटे, आत्मा पौद्गलिक भावो प्रति वैषयिक सुखो तरफ अने संसारना मोहक पदार्थो प्रति, उदासीन भावथी, कर्मबंधकभावथी, हेयपणे समजी तेनी लालसा रहित बने, एवं शास्त्रनिर्दिष्ट आज्ञानुसार जे क्रियाओनुं सेवन, पालन करे, टुंकमां ज्ञानविशिष्ट वैराग्यवडे जे चारित्र प्राप्त थाय आने ज शास्त्रकर्ताओ सदनुष्ठान कहे छे. मूलमां 'नियमात्' ए पद छे, एटले निश्चयथी आ ज सदनुष्ठान शुद्ध कहेवाय. निदान के-जे चारित्रमां ज्ञानविशिष्ट वैराग्य होय ते चारित्र शुद्ध अने वंदनीय जाणवुं, सिवाय पूजावा मनावा खातर अथवा स्वर्गसुख, राज्यलोभ, धनलोभ, यशःकीर्ति माटे जे त्याग स्वीकाराय ते अशुद्ध अनुष्ठान कह्युं छे. यद्यपि बन्ने अनुष्ठानो बाह्यदृष्टिए तुल्य मालुम पडे छे तदपि एक त्याग शुद्ध आत्माभिमुख-मोक्षाभिमुख होवाथी अंतरंग पवित्र विचारोथी नितान्त बाह्याभ्यंतर बन्ने रीते शुद्ध छे अने बीजो त्याग मलीन वासनाओथी वासित होइ सर्वथा अशुद्ध छे. एटले पहेलो त्याग ज्ञानविशिष्ट वैराग्यनुं फलरूप छे; ज्यारे बीजो

त्याग दुःख या मोहगर्भित वैराग्यनुं फलरूप छे. एवं व्यवहार-
मां आ बन्ने त्याग सरिखा देखाय छे.

" बुधज्ञेयता. "

सामान्य मनुष्य आमां कांइ पण भेद देखतो नथी तो
पण बनावटी अने कुदरती हीरानी परीक्षा झवेरी तुरतज
करी ले छे, तेम बुधजनो आ बन्ने त्यागमांथी शुद्ध
त्याग तथा अशुद्ध त्यागनी परीक्षा त्यागीमां रहेला केटलाक
क्रियारुचि, क्रियाकुशलता, पापपरिहार, यतनाप्राधान्यता,
सत्यपरूपणाता, प्रशान्तभाव, अल्पमोह आदि विशिष्ट चिन्हो
द्वाराए शीघ्र करी शके छे; मांटे ज अहीं मूलमां कह्युं के-
' बुधविज्ञेयं ' अर्थात् बुध सिवाय आ परीक्षा मध्यमवर्ग के
बालवर्ग न करी शके. कारण के ते लोकोमां एटली विवेचक
शक्तिनो अभाव होय छे, ए वात पहेला ज ग्रंथकर्ताए
स्पष्ट करी छे. ॥ "

बुधजनो शुद्ध अशुद्ध त्यागनी परीक्षा कया लक्षणोथी
करे छे ए जाणवुं जोइये. आनो खुलासो भगवान् हरिभद्र-
सूरिजी अहीं आ रीते दर्शावे छे-

गुरुदोषारंभितया तेष्वकरण-
यत्नतो निपुणधीभिः ॥
सन्निदादेश्च तथा
ज्ञायते एतन्नियोगेन ॥९॥

मूलार्थ—चारित्रनो नाश थाय तेवा गुरुदोषो–म्होटा पापोनुं सेवन करे, आरंभ करे, अने न्हाना पापोनो बचाव करे तेनी यतना पाले, तथा उत्तम पुरुषो, सज्जनोनी निंदा करे विगेरे लक्षणोथी निपुणबुद्धि–बुधजनो शुद्ध अने अशुद्ध त्यागनी परिक्षा करी जाणे छे ॥

" दांभिक त्यागनी परीक्षाना साधनो "

स्पष्टीकरण–शुद्ध अशुद्ध त्यागनी परीक्षा त्यागीओना विशिष्ट वर्त्तनथी ज थइ शके ए वात उपर जणावी गया छे. फरी आ वातने ज हरिभद्रसूरिजी अहीं स्पष्ट करे छे. जेओ त्यागीपणानुं अभिमान अने तेनो वेशधारण करी त्यागीपणानो म्होटो ढोळ घाली लांबी लांबी वैराग्यनी वातो करी, हजारोने आत्मकल्याणनो उपदेश आपी, संसारनी असारता, लक्ष्मीनी चपलता, विषयोनी दुरंतता विगेरे जणावी, पोते ज शासनना उड्डाह थाय, अधर्मनी वृद्धि थाय एवा प्रकारना अने चारित्रनो जडमूलमांथी ज नाश थाय, चरणसित्तरि अने करणसित्तरिनो सर्वथा लोप थाय, महाव्रततनो गंध पण न रहे तेवा गुरुदोषो–म्होटा दोषोनुं सेवन करे जेवा के—स्त्रीसंग, छोकराओ आदि साथे दुनिया विरुद्धकर्म, हस्तकर्म विगेरे पापकर्मों, शिष्यादि वधारवा अनेकधा मायावादो, छळ, प्रपंचो खेलवा, पुस्तकादिना निमित्तथी गुप्तरीते हजारो रुपीयानो संग्रह अने बीजा हाथे व्याज विगेरे उपजाववुं, शरीरनी पुष्टि माटे रोगादिकनुं निमित्त निकाली

अनेक पौष्टिक दवाओ, पाको तथा रसवतीयो तैयार कराववी, यदि आ सर्व दोषो प्रगट थवानो समय आवे तो नितान्त जूठ अने बीजानी जींदगी माटी भेगी करवा दुनियाथी उतारी पाडवा अनेक खोटा प्रपंचो करवा चूके नहीं. भंडारोमांथी वांचवाना शोधवा लिष्ट करवाना व्हाने पुस्तकोनी चोरी करवी विगेरे अनेक म्होटा पापो सेवन करे, रात्रिविहार, वाहन आदि साथे राखी विहार करवो, स्वार्थनो उपदेश आपवो, विरुद्ध उपदेश आपवो, स्वाग्रहने पुष्ट करवानो प्रयत्न करवो, तथा लोक समूहमां प्रशंसा करावना न्हाना न्हाना दोषोनो बचाव करे, तेनुं प्रायश्चित्त ले, लोको समक्ष पश्चात्ताप, गर्हा, निंदा करे. जेवा के—रजोहरणनी आड, मुहपत्तिनी आड, स्त्रीसंघट्टो विगेरे एटले खाळे डुचा मारे अने दरवाजा खुल्ला राखे तेना जेवुं करे, टुंकमां लोकोमां महात्मापणुं केम जणावाय तेवो प्रयत्न करे.

एवं पोतानामां तेवा विशेष गुणोनो अभाव छतां गुणवान् त्यागी महात्माओ तपस्वीयो, उत्तमगुणी श्रावको अने सज्जनोनी वारंवार अन्य न जाणे तेम वाक्पाटवताथी निंदा करे, तेओने उतारी पाडवा तेओना एक सामान्य सरसव जेटला दोषने मेरु जेटलो बनावी लोको समक्ष अनेकधा टीकाओ करे, वारंवार तिरस्कार करे, पोताना दोष सामे तो देखे ज नहीं, टुंकमां आ लक्षणो गुप्त रीते जेमां होय के जे लक्षणो उपलक दृष्टिये अन्यने न देखाय

माटेज अहीं ग्रंथकर्त्ता जणावे छे के-अत्रे शुद्ध अशुद्ध त्यागनी परीक्षा " निपुणधिभिः " कुशाग्रबुद्धिवानो सत्यतत्त्वना परीक्षको ज करी शके. निदान के-त्यागनी परीक्षा करवा इच्छके उपर कथित सर्व वात ध्यानमां राखवी, अने तदनुसार परीक्षा करी उच्च त्याग प्रति पूज्यभाव धारण करवो, केवळ विद्वत्ता, व्याख्यानकौशलता के प्रसिद्धनामांकितता देखी अंपलाववुं ते भविष्यमां नितान्त स्वात्माने धर्मभ्रष्ट करवानो ज उपाय छे.

बस ए रीते बाळवर्ग तथा मध्यमबुद्धि जनो शेमां धर्म माने छे ? अने ते केटला अंशे अनुचित छे ? ए विषय पर विस्तारथी शंका अने प्रत्युत्तर करी विचार कर्यो. हवे बुधजनो आगमतत्त्वनी परीक्षा करी धर्म प्राप्त करे छे ए वात आचार्य श्री प्रथम कही गया हता, तो आगमतत्त्व कयुं ? अने तेनी परीक्षा शी रीते करवी ? तेनो विचार ग्रंथकर्त्ता जणावे छे. सर्वमां आ विषय सूक्ष्म होवाथी अने ते ज परिणामे स्वीकार्य तथा हितावह होवाथी, तेनो विचार ग्रंथकर्त्ता बहु उंडा उतरी जणावे छे.

आगमतत्त्वं ज्ञेयं,
तद्दृष्टेष्टाविरुद्धवाक्यतया ।
उत्सर्गादिसमन्वित-
मलमैदंपर्यशुद्धं च ॥ १० ॥

मूलार्थ—जे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोथी अने इष्ट एटले आगमना पोताना ज वचनोवडे अविरुद्ध होय, एवं उत्सर्ग तथा अपवाद युक्त होय, तथा ऐदंपर्य—परमार्थवडे शुद्ध होय ते ज खरुं आगमतत्त्व जाणवुं.

स्पष्टीकरण—आगमतत्त्वनी कसोटी करवा अहीं हरिभद्रसूरिजी खरो मार्ग दर्शावे छे. अत्रस्थ श्लोकमां हरिभद्रसूरिजी आगमतत्त्वनी परीक्षा माटे त्रण प्रकारो जणावी उत्तरना बे श्लोकथी तेनुं विवेचन करे छे. अहीं आगमतत्त्वनी परीक्षाना मुख्य त्रण विभागो कहे छे. आ त्रण विभागो आ रीते जाणवा—जे आगमतत्त्व दृष्ट अने इष्ट बन्ने रीते अविरुद्ध वाक्य होय १, उत्सर्ग अने अपवादयुक्त होय २, तथा ऐदंपर्यवडे परिशुद्ध होय ३.

दृष्ट, एटले प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणो, अने इष्ट एटले आगम आ बन्नेनी कसोटीमां जे आगमोक्त तत्त्व अविरुद्ध होय, एकवाक्य होय. परमार्थ ए के—आगममां आत्मा, कर्म, बंध, मोक्ष विगेरे पदार्थो कह्या छे. आ पदार्थोनी प्रथम प्रत्यक्षादि प्रमाणद्वारा परीक्षा करवी, यदि ते परीक्षामां जो ते ते पदार्थो बराबर सिद्ध थाय, अविरुद्ध मालुम पडे तो ज ते तत्त्व सयुक्तिक कहेवाय. आ वात समजवाने आपणे दाखला तरीके आत्मानो ज सामान्य विचार करीये. शास्त्रमां "अत्थि मे आया उववाइए" "एगे आया" मारो आत्मा उत्पत्ति धर्मवान् छे." इत्यादि कह्युं छे. आत्मा—एटले चैतन्य

जीवनामक पदार्थ अने ते शरीरथी भिन्न तथा उत्पत्ति—विनाश-रूप पर्याय—धर्मवान् छे. खाणमां रहेल माटी हंमेशा कायम ज छे, परंतु जेम कुंभार आदिना हाथमां आव्या पछी तेना विविध घट आदि आकारो—पर्यायो बने छे, अने जूना जूना पर्यायो—धर्मनो नाश थतो प्रत्यक्ष देखाय छे. परमार्थ के—माटी ज्यारे घटपणे परिणमे त्यारे घटाकाररूप पर्याय उत्पन्न थयो अने माटीरूप पर्याय ते समये न ओळखावाथी तेनो नाश थयो. एवं माटीरूप द्रव्य घटमां कायम ज छे. तथाप्रकारे आत्मा पण जानवर, मनुष्य, देवता, नारकीरूप गतियोमां प्रत्यक्ष देखाय छे, कारण के—आत्मा सिवाय जगतनो सर्वव्यवहार लुप्तप्रायः थइ जाय, धर्म या पापकर्म पण निष्फल मानवा पडे, अत एव ज्ञानादि गुणवान् विलक्षण शक्तिवालो कोइ आत्मा नामक पदार्थ छे एम मानवुं जोइये. आ आत्मा यद्यपि अछेद्य, अभेद्य, अदाह्य, अजर, अमर, अविनाशी, धर्मवान् छे, तो पण माटीनी माफक नवा नवा रूपपणे परिणमे अने पूरातनरूपपणे तेनो अभाव थतो अनुभवाय छे. जानवरपणुं छोडी मनुष्यपणुं, मनुष्यपणुं छोडी देवपणुं, देवपणुं छोडी जानवरपणुं एवं नारकी-पणुं आ रीते आत्मा नवा नवा पर्यायो—धर्मो अनुभवतो तथा जूना जूना धर्मोनो त्याग करतो प्रत्यक्ष अनुभवपथमां आवे छे, अने प्रत्येक अवस्थामां आत्मा पोते शाश्वत ज देखाय छे; कारण के पूर्वावस्थामां अनुभवेल, सेवेल, करेल, दरेक कार्यो उत्तर अवस्थामां स्मृतिपथमां आवता तथा भोगवाता मालूम पडे छे.

अन्यथा जेम देवदत्ते करेल कार्यो अने कर्मो यज्ञदत्तने स्मरण-
मां तथा भोगमां आवता नथी, तेम पूर्वावस्थामां करेल कार्यो-
नुं स्मरण तथा कर्मोनो भोग उत्तरावस्थामां आत्माने बाल
अवस्थामां करेल कार्योना स्मरणनी माफक संभवे ज नहीं.
अतएव आत्मा उत्पत्ति आदि विशिष्ट धर्मवान् छे ए शास्त्रोक्त
तत्त्व प्रमाणथी अविरुद्ध सिद्ध थाय छे. एवं आत्मा प्रत्येक
शरीरभेदे भिन्न भिन्न छे तो पण आत्मरूप स्वरूपनी अपेक्षाए
सर्व आत्माओ तुल्यरूप छे अर्थात् मनुष्य, देव आदिमां जेवुं
आत्मतत्त्व छे तेवुं ज आत्मतत्त्व एक कीडामां अने हाथीना
शरीरमां पण छे. हा मात्र मनुष्यमां केटलीक विशेष आत्म-
शक्तियो आविर्भूत छे, उत्तरोत्तर विकास थतो देखाय छे,
ज्यारे देवोमां एथी पण अधिक आत्मशक्तियो विकसित होय
छे अने कीडाओमां ए सर्व शक्तियो कर्मोना जोरे तिरोभावपणे
रहेल होय छे, निदान के–अगाध बुद्धिमान् सर्व विद्यासंपन्न
कोई मनुष्य वेदना या मदिराथी मूर्च्छित थया पछी तेनी सर्व
शक्तिओ विद्यमान छतां तिरोभावरूपे थइ गयेल आपणे अनु-
भवीये छीए, एवं कीडा जेवी अधम योनि प्रविष्ट आत्मानी
सर्व शक्तियो अधमयोनि तथा अपारकर्मोना कारणे दबायेल
ज छे एम मानवुं जोइये, नहीं के तेओमां आत्मा नथी अथवा
शक्तियोनो अभाव छे. निष्कर्ष ए के–आत्मत्वरूपेण सर्वात्मा-
ओ तुल्य स्वरूपवान् होवाथी सामान्यरूपे एक ज छे, ने विशेष
रूपेण अनंत आत्माओ छे. निदान के–ए रीते आत्मा प्रत्यक्ष

आदि प्रमाणथी जेम अविरुद्ध स्वरूपवान् अनुभवाय छे, तेम इष्ट एटले आगमना पूर्वापरना वाक्योथी पण अविरुद्ध स्वरूपवान् ज सिद्ध करेल छे, परंतु आगमना एक देशमां आत्मा माटे अन्यथा प्ररूप्युं होय, अने अन्य स्थलमां तेथी विरुद्ध कह्युं होय तेम न होय. हा जैनदर्शनमां निश्चय अने व्यवहार, बाह्य अने आभ्यंतर, द्रव्य अने भाव, पर्याय अने गुण विगेरे स्वरूप प्ररूपणा करती वखते भिन्न भिन्न स्वरूप दर्शाव्युं छे खरुं, परंतु ए सर्व स्वरूप कथनमूल आत्मस्वरूपनो बाधकर्त्ता न होवाथी किन्तु पुष्टिकारक ज होवाथी तेनुं नाम विरुद्धकथन न कहेवाय, उलटुं ए तो सत्य तत्त्वकथन, सर्वज्ञकथित तत्त्वपणानी ज सिद्धि करे छे. अहीं आगम-परीक्षामां विद्वानोए एटलुं ज तपासवानुं छे के-एक ज वस्तुतत्त्वनुं कथन एक स्थलमां भिन्न होय. अने अन्यत्र ते ज वस्तु भिन्नरूपे कही होय आनुं नाम विद्वानो विरुद्ध वाक्यता कहे छे. दृष्टांत तरीके एक स्थानमां " अस्ति आत्मा " एवुं कह्युं, अने फरी अन्यत्र " नास्ति आत्मा " एम कह्युं होय आमां सत्य शुं समजवुं? अथवा जेम वेदमां कह्युं छे के-" मा हिंस्यात् सर्वभूतानि " " सर्व जीवोनी हिंसा न करवी " आम कह्या पछी फरी ते लोको कहे छे के-" षट् शतानि नियुंजीत, पशुनां मध्यमेहनि " मध्यमेह नामना यज्ञमां छ सो पशुओनो होम करवो " जे हिंसा पापकारी-बंधकारी मानी तेनो सर्वांशे निषेध कर्यो, ते ज हिंसाने पुनः धर्म्य मानी, स्वर्गदात्री मानी विधेय मानवी ए शुं विरुद्ध न कहेवाय ?

फरी जे आगमतत्त्व उत्सर्ग तथा अपवाद युक्त होय एटले दरेक वस्तुतत्त्व प्राधान्य पणे विधेय अने परिहार्य दर्शावी पुनः विशिष्ट कार्यनी अपेक्षाए विधेयतया दर्शावी होय, निदान के-विशेषवादना स्थल पर विशेषवादनी अने सामान्यवाद स्थलमां सामान्य कथन बराबर कह्युं होय, किन्तु विशेष स्थानमां सामान्य कथन अने सामान्य स्थलमां विशेष कथन कह्युं न होय. परमार्थ के-आने जैन शास्त्रो उत्सर्ग तथा अपवादवाद कहे छे. ए रीते जे आगमोक्त तत्त्व कथन कर्युं होय ते ज आगमतत्त्व नितान्त ग्राह्य जाणवुं. जेम के-जैनशास्त्रो हिंसामां पाप कहे छे, जलना जीवोनो आरंभ करवाथी विनाश थाय अने तेथी पापबंध थाय एवुं कहे छे; छतां मुनियो एक स्थलथी अन्यत्र गमन करता होय अने मार्गमां नदी आवे तो यतनापूर्वक उतरी सामे कांठे जाय एवी जिनाज्ञा छे. आ स्थलमां जलना जीवोनो वध थाय छे तो पण तेओने पापबंध तुच्छ कह्यो छे, कारण के-वध करता आरंभमय प्रवृत्ति करे अने जीवोनो बचाव करवानी अपेक्षा राखे नहीं तेमज कल्याणनी इच्छा विनानो होय, टुंकमां सोपयोग वर्तन न राखतो होय एवो ज वधक अवश्य पुष्ट पापबंध करे एवुं शास्त्रो कहे छे. अर्थात् उत्सर्गथी जीववधनो निषेध करी, तेमां पाप प्रतिपादन करी फरी अपवादथी नदी उतरवानी आज्ञा आपी तेमां थयेल जीववधथी अल्पबंध जणाव्यो, कारण के मुनि नदी उतर्या सिवाय सामे कांठे जइ शके नहीं अने जलना जीवोनो तेमां

उतरवाथी अवश्य वध थाय ज एटले ए वध अपरिहार्यरूप होवाथी आप्तोए नदी उतरवानी मुनियोने अपवादथी आज्ञा आपेल छे. कोइ साध्वी नदीमां डूबती होय, अन्य कोइ उतारु न होय अने मुनि त्यां हाजर होय तो मुनि पण तेमां पडी साध्वीनो बचाव करी ले. कार्य पडे ग्रहस्थ मुनिने दोषयुक्त आहार आपे–आ सर्व आज्ञाओ प्रभुए अपवादथी आपी छे ने तेमां दोषना बदले लाभ ज दर्शाव्यो छे. परमार्थ ए के–ज्यां उत्सर्ग, सामान्य आज्ञाथी वर्तन करवा जता विशेष आत्महानि, अकल्याण थतुं होय त्यां विशिष्ट आत्मलाभ, कल्याण माटे विशेष कथन करी अन्यथा प्रवृत्ति करवानी छुट आपी होय ते ज आज्ञाओ निर्दोष सयुक्त अने सर्वज्ञवाक्यरूप कहेवाय. मथितार्थ एटलो ज के उत्सर्ग वाक्य कल्याणने माटे होय अने अपवाद वाक्यो पण नितान्त उत्सर्गनी पुष्टि करता होय परंतु उत्सर्ग वाक्यना विध्वंसकरूप अपवाद वाक्यो न बने आ प्रमाणे विवेक जे आगमतत्त्वमां बराबर सचवायो होय, ते ज सत्य आगमतत्त्व जाणवुं. अहीं जेओ यज्ञमां थती हिंसाने धर्म्य तथा विधेय माने छे तेओ पण आ हिंसा सापवाद छे एम कहे छे; कारण के स्वर्गार्थी यज्ञक्रिया अवश्य करे अने यज्ञमां जे पशुओ बलिरूप बने तेओ पण यज्ञ तथा वेदमंत्रना प्रभावथी स्वर्ग प्राप्त करे छे. एटले आ हिंसा पण अहिंसा ज जाणवी. आना टुंक उत्तरमां कहेवुं जोइए के–याज्ञिकोनी आ दलील अनुभव, युक्तियो अने प्रमाणोना प्रहारोने लेश पण सहन करवाने अ-

शक्त छे. प्रथम तो यज्ञ धर्म्य छे के नहीं ए मुख्य विषय विवादग्रस्त छे, तथा यज्ञ सिवाय दानादि क्रियाथी स्वर्ग न मलतुं होय अने यज्ञथी ज स्वर्ग मलतुं होय तो स्वर्गार्थी माटे, अशक्यतया यज्ञ विधेय मनाय खरुं. आम छतां आटलुं तो चोकस जाणवुं के यज्ञ ए आरंभक्रिया होवाथी स्वर्ग तो दूर रह्युं, किन्तु मनुष्यपणुं पण तेनाथी प्राप्त थवुं असंभवनीय छे. एवं तेमां जे हिंसा थाय ते पण क्लिष्ट परिणामशून्य तो नथी ज. याज्ञिको तेमां जे पशुओनो होम करवा बेसे छे ते कांइ तेओनो कोइ पण प्रकारे बचाव ज करवो, तेओने दुःख न थाय तेम वर्त्तवुं, दयाबुद्धि राखी यज्ञ करवो विगेरे कांइ विचार राखता होय ए संबंधमां अनुभव अने युक्तियो सर्वथा ना कहे छे. अरे! जे पशुओ लांबा बराडा पाडता होय, अग्निथी त्रास पामी मृत्युना भयथी दूर भागता होय तेने बांधी, जबरजस्तिथी जकडी, निर्दयतापूर्वक चांडालनी माफक टुकडा करी तेनो होम थाय, तेनी शेषाओ सानंदपणे खवाय ते हिंसामां यदि पुण्य होय, अनुकंपाभाव होय अने तेथी स्वर्ग प्राप्त थाय तो माता—पितानो यज्ञ शा माटे न करवो? परमार्थ के—ए हिंसा क्लिष्ट परिणाममय अने दयाबुद्धि रहित होवाथी अधर्म्य अने एकान्त त्याज्य ज छे,—एटले ते सापवाद केम कहेवाय? सापवाद प्रवृत्ति तो ते ज कहेवाय के जेनाथी आत्मकल्याणना मार्गमां स्खलना न थाय अने उत्सर्गमार्गनी एकान्ततः पुष्टि ज करे, अतएव याज्ञिक हिंसा तो उत्सर्गपथनो ध्वंस करी आत्माने दुर्गतिमां घसडी जाय छे,

निर्दोष जाणवुं. अतः अहीं ग्रंथकार "इष्टेष्टाविरुद्धवाक्यतया" प्रथम कथीत श्लोकना आ पदनी विस्तृत समीक्षा करवानो प्रकार दर्शावे छे—

आत्मास्ति स परिणामी,
बद्धः सत्कर्मणा विचित्रेण ॥
मुक्तश्च तद्वियोगाद्धिं-
साहिंसादि तद्धेतुः ॥ ११ ॥

मूलार्थ—आत्मा जीव छे, ते परिणामन स्वभावयुक्त तथा विचित्र एवा सद्भूत कर्मोथी बद्ध छे ने कर्मोथी मुक्त छे. अहीं हिंसा विगेरे आत्माने कर्मबंधमां अने अहिंसा विगेरे कर्मोथी छूटवामां कारणो जाणवा ॥

स्पष्टीकरण—अहीं आगमोक्त तत्त्वनी परीक्षा करवा अर्थे आचार्यश्री उपायो दर्शावंता वदे छे के—ज्यां आत्माजीवनी सत्ता प्रतिपादन करी होय, निदान के—पुण्य, पाप, मोक्ष, परलोक, दानादि सत्कर्मो विगेरे तत्त्वोनो मूलस्थंभ आत्मा ज छे. यदि आत्मा ज न होय तो उपदेष्टा, श्रोता अने उपदेश विगेरे कोना माटे ? तपश्चर्या तथा इंद्रियादि दमननुं फल शुं ? त्याग अने दान विगेरे शाना माटे ? अतएव ए सर्वनो मूल आधारभूत आत्मा छे ने ते आत्मानुं कथन ज्यां कर्युं होय ते ज सत्य आगम.

टीकाकार महाराज कहे छे के—नास्तिको आत्मसत्ता मानता नथी. तेओ कहे छे के—प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोद्वारा आत्मा घटी शकतो नथी. जे वस्तु होय ते चक्षु आदि इन्द्रियो- वडे जरूर देखाय. आत्मा चक्षु इंद्रियथी देखातो नथी. पर- माणुओ जो के साक्षात् देखाता नथी तो पण तेनुं कार्य घट पट विगेरे देखाय छे माटे ते छे एम मानवा जोइये; ज्यारे आत्मानुं बनावेल कोइ पण कार्य देखातुं नथी माटे आत्मा नथी. अनुमानथी पण आत्मा घटतो नथी. अनुमान प्रमाणमां लिंगज्ञान मुख्य साधनभूत छे. एटले जेम अमुक स्थानमां धूम दर्शन थतां त्यां अग्निनुं ज्ञान थयुं अने त्यारपछी कोइ स्थले दूरथी धूमदर्शन थवाथी अहीं अग्नि अवश्य होवो जोइये; कारण के ज्यां ज्यां धूम होय त्यां त्यां अग्नि निश्चयतया होय. रसोडामां तथाप्रकारना अनुभव प्रत्यक्ष देखाय छे. एटले अहीं पण अग्नि छे एवो निश्चय अनुमानथी थाय छे. एवं आत्माने अथवा तेना लिंगने कोइ स्थळे प्रत्यक्ष जोयेल नथी के जे परथी आत्मा छे एवुं अनुमान करी शकाय. ज्यां सुधी आत्माना कोइपण लिंगनुं प्रत्यक्ष दर्शन न थाय त्यां सुधी आत्माने सिद्ध करवा अनुमान प्रमाणनी गति थइ शके नहीं. एवं आत्मा जेवो अन्य पदार्थ अन्यत्र स्थानमां देखातो पण नथी, जेथी आ आत्मा छे तेना सरिखो आ पण पदार्थ छे माटे ते आत्मा कहेवाय, ए रीते उपमानप्रमाणथी पण आत्मानी प्रतिष्ठा थइ शकती नथी. फरी आगमवचनो अन्या-

न्य पुरुषो प्रतिपादित दोषाथी अनेक स्थळमां परस्पर विरोधी-पणे भिन्न भिन्न रीते पदार्थनुं प्रतिपादन करे छे. एटले आ-गमो ज अविश्वसनीय होइ तेनाथी आत्मा छे ए मान्यता संभवे ज क्यांथी ? अतएव आत्मा नथी ए सत्य छे. तथा जेम मदिरा मादक पदार्थना संयोगथी पेदा थाय छे तेम पांचभूतना संयो-गथी आत्मा पण आविर्भूत थइ जलना बुद्बुदो जेम जलथी प्रगटी तेमां तेनो विलय थाय छे एवं आत्मानो पण पांच-भूतोमां ज विलय–नाश थाय छे. अतएव परिणामे आत्मा चैतन्य नामक कोइ पदार्थ स्वतंत्र नथी ज.

आ वादने निर्मूल करवा हरिभद्रसूरिजी उपरोक्त श्लोकना प्रथम चरणथी प्रतिपादक शैलीए वदे छे. " आत्मास्ति " आत्मा–चैतन्य एक स्वतंत्र पदार्थ छे, नहीं के अमुक पदार्थना संयोगजन्य आ आत्मानी अस्तिता केवल शास्त्रो ज कथन नथी करता, किन्तु प्रत्यक्ष आदि प्रमाणो पण तेनी अस्तिता सिद्ध करे छे ते आ प्रमाणे—

आत्मा शरीरथी एक भिन्न पदार्थ रूपे छे ज, ते न होय तो ' आत्मा छे के नहीं ? ' एवो संशय थाय नहीं. संशय ए ज्ञानरूप छे, अने ज्ञान आत्मानो गुण छे, केवल शरीरमां अथवा खाली इन्द्रियोमां ते गुण देखातो नथी. निदान के-शरीरजन्य जो गुण होय तो मृतकलेवरमां ते गुणनुं दर्शन थवुं जोइये अने इन्द्रियोनो ते गुण होय तो अमुक इंद्रियना विध्वंस

पछी ते गुण न देखावो जोइये. दाखला तरीके अमुक माणसे नेत्रद्वाराए अमुक अमुक चीजोनुं यथावत् भान कर्युं अने त्यारबाद ते अंध थयो छतां चक्षुना नाशथी तेने थयेल ज्ञाननो कांइ नाश थतो नथी; किन्तु ज्यारे ज्यारे पूछवामां आवे त्यारे त्यारे ते चीजोनी ओळखाण बराबर करावी आपे छे. एटले ए गुण चक्षुनो तो नज कहेवाय, कारण के–चक्षुनो तो पहेला ज नाश थयो छे आथी ज अज्ञानगुणने भिन्न मानवो जोइए. आ रीते आ ज्ञानगुण प्रत्यक्ष भिन्नरूपे अनुभवमां आववाथी गुणी आत्मा प्रत्यक्ष छे एम मानवुं ज जोइये. निदान के–आत्मा शिवाय आ गुण अन्यत्र अनुभवातो नथी. " अस्त्येव चात्मा प्रत्यक्षो, जीवो ह्यात्मानमात्मना । अहम-स्मीति संवेत्ति, रूपादीनि यथेन्द्रियैः ॥ १ ॥ " फरी छद्मस्थने इंद्रिय प्रत्यक्ष होवाथी सूक्ष्म पदार्थनुं प्रत्यक्ष ज्ञान अमुक अंशे ज थाय छे, ज्यारे पूर्ण आत्म प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञोने ज होय छे. एटले जे आत्मा पूर्णरीत्या सर्वज्ञोने प्रत्यक्ष छे, ते आत्माने आपणे ज्ञानना अभावथी पूर्णतया प्रत्यक्ष न करी शकीये एतावन मात्रथी आत्मा नथी कहेवानुं साहस करवुं ते मूढताज गणाय.

एवं अहीं " आत्मा छे के नहीं " ए संशय उद्भ-ववाथी आत्मा पदार्थ जरूर कोइ पण जग्याए होवो जोइये, कारण के कोइ पण वस्तु संबंधी ज्यारे ज्यारे संशय थाय छे त्यारे त्यारे ते वस्तु कोइ पण स्थानमां होय छे ज. अन्यथा ते

वस्तु संबंधी संशय उद्भवतो नथी, "नास्त्यात्मा" ए वाक्य पण आत्मानो एकान्त निषेध करतुं नथी, किन्तु "नास्ति अत्र घटः" "आ स्थानमां घट नथी" ए वाक्य जेम–एतत् भूमि विशिष्ट घटनो अभाव दर्शावे छे परंतु सर्वत्र घटनो अभाव दर्शावतुं नथी. अर्थात् ए वाक्यथी अन्यत्र घटनी सत्ता सिद्ध थाय छे. एवं उपरोक्त वाक्य पण अमुक शरीर अथवा इंद्रियोमां आत्मा नथी ए ज भाव दर्शावे छे, परंतु सर्वत्र आत्माभाव दर्शावतुं नथी. निदान के–एक स्थानमां संशय थवाथी त्यां संशयी आत्मा जेम सिद्ध थाय छे तद्वत् अन्यत्र पण ज्यां ज्यां तदाकार संशय उद्भवे त्यां त्यां आत्मा छे एवुं अनुमान चोकसपणे प्रवर्ते छे.

प्रत्यक्ष अने अनुमान प्रमाणथी आत्मानी सिद्धि थवाथी उपमान अने आगम प्रमाणथी आत्मा सिद्ध ज छे एटले तेने समजाववानी कांइ विशेष जरूर रहेती नथी; कारण के–उपमान प्रमाण तेना पाछल ज गमन करे छे अने आगम प्रमाण तो 'अत्थि मे आया उववाइये' इत्यादि वचनोथी आत्मसत्ता पोकारी पोकारी वारंवार कहे छे. आ रीते युक्ति तथा प्रमाणोद्वारा आत्मा बराबर सिद्ध होवाथी जे शास्त्रो नास्तिक मतनी भावना दूर करी आ आत्मतत्त्वनुं कथन करता होय ते ज आगमवाक्य ग्राह्य थाय. अतएव अहीं पण भगवान् हरिभद्रसूरिजी आगमतत्त्वनी परीक्षानो नियम दर्शावता वदे छे के–"आत्मास्ति" 'आत्मा छे' अर्थात् जैनदर्शनमां

आत्मा चोकस मान्य छे. आ आत्माने केटलाको नित्य कहे छे अने कोइ अनित्य पण कहे छे. नित्यपक्षमां " अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैक स्वभावो हि नित्यं " 'जेनो नाश न थाय, उत्पन्न न थाय अने सर्वदा स्थिर एक स्वभावमां रहे ते नित्य' आ लक्षण होवाथी आत्मा जो उत्पन्न न थाय, नाश न पामे अने स्थिर एक ज स्वभाववान् होय तो जन्म तथा मरण कोने ? क्षणमां सुखी, क्षणमां दुःखी, क्षणमां, रोगी क्षणमां निरोगी आ अवस्थाओ कोनी ? बाल, युवान अने वृद्ध अवस्था अनुभवनार कोण ? मनुष्य, नारकी, तिर्यंच, देवता आदि भावोमां रमनार कोण ? निदान के—उपरोक्त नियम प्रमाणे तो सर्वदा आत्मा एक ज रूपमां वर्तनशील मालुम पडवो जोइए. जे मनुष्य होय ते मनुष्य ज, जे देव होय ते देव ज, जे नारकी होय ते नारकी, जे बाल होय ते बाल ज, रोगी होय ते रोगी, दरिद्र होय ते दरिद्री ज, धनी होय ते धनवान् ज, मूढ होय ते मूढ ज, ए रीते एक ज अवस्था प्रत्येक आत्माए अनुभववी घटे, किन्तु अवस्थाओनुं परावर्त्तन थवुं न घटे.

अनित्यपक्षमां—आत्मा क्षणस्थायी होवाथी प्रथम क्षणोत्पन्न आत्मा द्वितीय क्षणमां नथी रहेतो अने द्वितीय क्षणोत्पन्न आत्मा ए रीते भिन्न क्षणमां नथी रहेतो. ए रीते प्रत्येक क्षणमां आत्मा उत्पन्न थाय अने विनाश पामे अर्थात्—अनित्यवादपक्षमां क्षणोनी केवळ परंपरा ज मान्य छे. आ रीते कबुल करवाथी प्रथम क्षणमां उत्पन्न आत्माए जे कांइ पुण्य या पापकर्म

कर्युं अने ते आत्मा मरी गयो. हवे बीजी क्षणमां उत्पन्न आत्माए-पूर्वात्माए कृतपुण्य-पापनुं फल अनुभव्युं. आथी जेणे पापकर्म कर्युं तेणे भोगव्युं नहीं अने जेणे ते कर्म उपार्ज्युं नथी तेणे अनुभव्युं. एटले करे कोइ अने अनुभवे कोइ. चोरी या बदमासी कोइ करे अने तेनी शिक्षा अन्य भोगवे ए शुं न्याय्य गणाय खरां ?

आ रीते उभयपक्षमां अनेक दोषो उद्भववाथी ग्रंथकर्त्ता कहे छे के-आ आत्मा "परिणामी" भावार्थ के-आत्मा भिन्न भिन्न अवस्थामां, भिन्न भिन्न भावोमां परिमनभाववालो छे. पांचे गतियोमां गमन स्वभाववान्, अलग अलग भवोमां पर्यटन करनार, बाल, युवा अने वृद्ध आदि अवस्था अनुभवनार, दारिद्रय, रोग, सुख, दुःख पर्यायोनो भोक्ता, चैतन्य स्वरूपी आत्मा छे. निदान के-द्रव्यनी अपेक्षाए आत्मा नित्य चैतन्य स्वरूपी छे, ने पर्यायनी अपेक्षाए अनित्य जन्म, मृत्यु, दारिद्रय, रोग, शोक, देव, मनुष्यादि विविध भावोनो अनुभविता कह्यो छे. परिणामनुं लक्षण टीकाकार उपर कथित भावने अनुकूल जणावे छे. "परिणामो ह्यर्थांतरगमनं न सर्वथा व्यवस्थानं । न च सर्वथा विनाशः परिणामस्तद्विदामिष्टः" ॥ १ ॥ " एक भाव-अवस्था मूकीने अन्य अवस्थामां गमन करवुं, सर्वथा एकज भावमां स्थित न रहेवुं, सर्वथा विनाश पण जेनो न थाय तेनुं नाम परिणामस्वरूपवेत्ताओ परिणाम माने छे " निष्कर्ष-आत्मानी जेम अस्तितता सिद्ध छे तेम ते परिणामी पण सिद्धज

छे. आ प्रमाणे भिन्न भिन्न अवस्थाओमां अनुगामी धर्मवान् आत्मा प्रमाण अने युक्तिओथी बराबर सुघटित छे, एम विना शंकाये कबूल करवुं जोइये.

परिणामनभावो-भिन्न भिन्न पर्यायोनो अनुभव पण आत्माने हेतु विना तो न ज संभवे, केमके अन्यथा सिद्धात्माने पण ते ते भावोनो अनुभव मानवो पडे. आ हेतुओ कर्मो सिवाय अन्य तो नहीं ज. कर्मोना संबंधथी ज आत्मा अनेक पर्यायोने अनुभवे छे अने सिद्धात्माने ते कर्मो न होवाथी ते ते भावोमां पर्यटन करवानी जरुर रहेती नथी. निदान के-संसारस्थ आत्मा "बद्धः सत्कर्मणा" मोहनीय आदि आठ कर्मोथी आवृत छे, बद्ध छे. आ कर्मो पण सद्रूप-विद्यमान छे, परंतु असद्-रूप कल्पनामात्र नथी. असद्रूप पदार्थ आत्माने सुखदुःख आदि पर्यायोमां हेतुभूत कदापि न बने. जे पदार्थ वंध्यापुत्रनी माफक असत्-अविद्यमान छे, कल्पनामात्र छे, ते पदार्थ यदि निमित्त बनतो होय, फल आपवा समर्थ थतो होय तो वंध्यापुत्र पण जरुर वंध्याने फल अर्पण करे; परंतु वंध्याने ते मलतुं नथी. आत्माने उत्पन्न थता सुख-दुःख विगेरे भावो सामान्य जन पण अनुभवे छे. एटले जगत्मां सद्रूप कर्मो छे अने आत्मा तेना संबंधथी संसारपर्यटन आदि भावो पामे छे, ए सिद्ध थयुं.

आ कर्मो अनेक प्रकारना छे. कर्मोना मुख्य आठ भेदो-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय, वेदनीय,

आर्युष्य, नाम, गोत्र–ए रीते शास्त्रोमां कह्या छे. तेना उत्तरभेदो १२० कह्या छे. तेमज आ कर्मोने शुभफल अर्पक अने अशुभ फलार्पक पुण्य तथा पापरूप बे प्रकारे जणावेल छे, माटे ग्रंथकर्ता कहे छे के–" विचित्रेण " विविध प्रकारना कर्मोथी आत्मा बद्ध छे, अतएव विविध फलोनो अनुभव पण आत्मा करे छे. एवं " मुक्तश्च तद्वियोगात् " दर्शित आठे कर्मोनो सर्वथा वियोग, विलय थवाथी आत्मा अने कर्मो सर्वथा भिन्न भिन्न थवाथी आत्मा शुद्ध, निर्दोष स्फाटिकरूप चैतन्य स्वरूप पामी मुक्त–सिद्ध थाय छे एटले आत्मा केवल सद्-चित् आत्मरूपने ज अनुभवे छे. निदान के–पछी सुख–दुःख, जन्म–मरण, रोग–शोक, मनुष्यादि भावोनुं पर्यटन छूटी जाय छे. टुंकमां ए रीते परिणमनभाववाळो विचित्र कर्मोथी बद्ध अने कर्मोथी छूटो थनार एवो आत्मा छे एम सिद्ध कर्युं.

अहीं प्रसंगवशात् जणाववुं जोइये के—कर्मो जड पुद्-गलस्वरूपी अतीन्द्रिय वस्तु छे, अने आत्मा चैतन्य ज्ञानादि स्वरूपवान् छे. निदान के–वस्तुतः आत्मा ज्ञानादि धर्मोने मूकी अन्य क्षणिक सुख–दुःख, रोग–शोक, जन्म–मरण, मनुष्यादि पर्यायरूप धर्मवान नथी किन्तु कुहाडो के तरवार जड छतां मनुष्यना हाथमां आव्या पछी मनुष्यना प्रयत्नथी काष्ठ आदिने कापी नांखे छे, पत्थर पण जड छतां ग्राहकना हाथमां आव्या पछी अन्यने मारवा समर्थ बने छे, एवं कर्मो पण आत्माना संयोगने पामी आत्मस्थ बनी आत्माने तत्तत्प्रकारना भावोमय

बनावे छे. एटले तरवार पकडनार निर्बळ छतां तरवारनी सहायता पामी स्वात्माने समर्थ माने छे, मारामां अन्यने मारवानी शक्ति छे. हुं बलवान् छुं एम मिथ्या अनुभव करे छे एक प्रकारनो विचित्र जुस्सो अनुभवे छे, एवं आत्मा पण जे जे भावो पोताना स्थायी नथी ते ते कर्मकृत भावोने कर्मना संबंधथी पोताना माने छे स्वपणे अनुभवे छे. तत्तत्भावनो अभिमानी बनी कर्मोथी भिन्न पोतानुं रूप विसरी जइ कर्मे बनावेल रूप ते ज पोतानुं स्वरूप छे एम समजे छे, श्रद्धे छे, आथीज अनेकधा आत्मा विविध भवोमां पर्यटन करे छे, अभिमानिक मान्यता आत्मा पोतामां रहेल अनादि रागद्वेषादि दोषोना कारणथी ज अनुभवे छे ने कर्मोने बांधे छे. तथा संसारपर्यटन करे छे, एवं कर्मो रागद्वेषादिमय आत्माने बनावे छे तथा रागद्वेषादिको कर्मरूप आत्माने बनावे छे. ए रीते अन्योन्याश्रयी अनादि संबंध आत्मा तथा कर्मोनो प्रवर्त्ते छे. फरी ए अभिमानिक मान्यताने खोटा रूपमां ज्यारे आत्मा देखे छे बराबर श्रद्धे छे. कर्म अने पोतानुं रूप भिन्नपणे माने छे त्यारे ते कर्मोने खसेडवा अने पोतानुं परमार्थ रूप पामवा प्रयत्न करे छे, परिणामे सर्व कर्मने अलग करी स्वस्वरूपी मुक्त–सिद्ध थाय छे.

अतएव अहीं उपरोक्त कर्म आववानुं तथा छूटवानुं कारण ग्रंथकार महर्षि एकज वाक्यमां बहु सुंदर रीते दर्शावे छे— " हिंसाहिंसादि तद्धेतुः " हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन,

परिग्रह ए पांच मुख्यतया कर्मबंधना कारणो कह्या छे तथा अहिंसा, जूठनिवृत्ति, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग ए पांच मुख्यतः कर्मनाशना कारणो कह्या छे.

मूलमां जे आदि शब्द आप्यो छे ते प्रत्येकनी साथे जोडवानो होवाथी "हिंसादि–अहिंसादि" ए रीते वाक्यप्रयोग करवो एटले–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग आदि शब्दप्राप्त ए पांच कारणो कर्मबंधना जाणवा. तत्त्वार्थमां उमास्वातिवाचक पण एज जणावे छे–मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः" (त० अ० ८–सू० १) 'अहिंसादि' अत्रस्थ आदि शब्दथी उपर कहेल हिंसादिथी विपरीत एवा अहिंसा विगेरे पांच साधनो कर्मवियोगना कारणो जाणवा. मथितार्थ एटलो ज के मिथ्यात्वादि कारणोथी आत्मा कर्मबंध करे छे, अने तेना त्यागथी अर्थात् सम्क्यत्व आदि कारणथी आत्मा कर्मविमुक्त बने छे, कारण के–मिथ्यात्व विगेरे भावो आत्माने असत् मति पेदा करी, दुष्ट मार्गमां दोरी जइ कर्मबंध करावे छे, ने सम्यक्त्व आदि भावो आत्माने सन्मति–सत् श्रद्धा उपजावी मोक्षपंथमां प्रेरी कर्मविमुक्त करे छे, ए भाव ग्रंथकारना वाक्यमां रह्यो छे. एवं प्रकारे आत्मा आदि पदार्थनुं स्वरूपदर्शन जे शास्त्रमां कह्युं होय, पछी ते शास्त्र गमे ते पुरुषकथित होय, तत्शास्त्रोक्त वाक्यो जरुर ग्रहण योग्य जाणवा. आवुं प्रवचन प्रथम प्रकारनी कसोटीथी शुद्ध जाणवुं- निदान के–ए रीते प्रमाण अने युक्तिथी अखंड्य जाणवुं.

अन्तमां आटलुं जाणवुं जरुरी छे के–'आगमतत्त्व' नी परीक्षानो प्रकार ग्रंथकर्ता दर्शावी रह्या छे, तेमां जे आगम-वाक्य प्रमाण तथा शास्त्रीय वचनथी अखंड्य होय, १ उत्सर्ग अने अपवादना विषयवालुं होय. २ ऐदंपर्य-परमार्थवडे संशुद्ध होय ३, ते ज वचन हितार्थे ने स्वात्महित अर्थे उपादेय गणाय. आ वात आपणे उपर जोइ गया, तेमां प्रमाण तथा शास्त्रीय वचनथी जे आगमवाक्य अखंड्य होय, ए रीतनो आगमतत्त्वनी परीक्षानो प्रथम प्रकार ग्रंथकारे दर्शाव्यो. निदान के–उपर कह्या प्रमाणे आत्मा आदि पदार्थनी अस्तिता जे शास्त्रमां कथन करी होय ते शास्त्रोक्त वाक्यो आदेय जाणवा. हवे रह्यो उत्सर्ग तथा अपवादे करी संशुद्ध ए बीजो प्रकार, एटले जे शास्त्रना वचनो उत्सर्ग वाक्यरूप तथा अपवादवाक्यरूप उभयथा शुद्ध होय, अहीं उत्सर्ग तथा अपवादनुं स्वरुप दशमां श्लोकना विवरणमां यत्किंचित् देखाडयुं छे, एटले अहीं तत्-संबंधमां विशेष जणाववानी जरुर रहेती नथी, तेमज प्रथम प्रकारनी 'परीक्षामां ते विषय आवी जतो होवाथी ग्रंथकारे भिन्नपणे जणाव्यो पण नथी. अतएव बीजा विषयने मूकी ऐदंपर्य परमार्थवडे संशुद्ध ए त्रीजो प्रकार समजाववा ग्रंथकार एक श्लोकथी कथन करे छे—

परलोकविधौ मानं वचनं तदतींद्रियार्थदृग्व्यक्तं ॥
सर्वमिदमनादि स्यादैदंपर्यस्य शुद्धिरिति ॥१२॥

मूलार्थ—अतींद्रिय अर्थ दृष्टा एवा सर्वज्ञ भगवंतोए स्पष्ट-पणे कहेल वचन ज परलोक संबंधी विधेय कार्योमां मान्य-प्रतिष्ठित गण्युं छे. फरी आ वचन सर्व क्षेत्रनी अपेक्षाए अना-दिकालीन छे, ए प्रकारे ऐदंपर्य परमार्थनी शुद्धि जाणवी ॥

स्पष्टीकरण—" अतींद्रियार्थदृग्व्यक्तं " जगतमां पदार्थो बे प्रकारना छे. एक तो इंद्रियदृश्य एटले आपणे सौ जेने देखी शकीये, अनुभवीये छीये ते अने बीजा जे इंद्रिय-दृश्य न होय किन्तु ज्ञानग्राह्य होय जेवा के—आत्मा, कर्म, पर-माणु, धर्म, अधर्मास्तिकाय आदि जेने आपणे देखी शकता नथी पण तेवा अनंतज्ञानी देखे छे ते, अर्थात् बीजा नंबरना पदार्थो तेओ ज देखी शके के जेओने कैवल्यज्ञान—अनंतज्ञान प्राप्त थयुं होय. शिवाय अन्यने ते पदार्थ देखवानी शक्ति न होय. निदान के—वीतराग भगवंतो ज सर्वज्ञ होय अने तेओ ज आ बीजा नंबरना सर्व पदार्थने बराबर जोइ शके छे. आ परथी जेने जे पदार्थनुं यथास्थित ज्ञान नथी तेओ ते पदार्थनुं यथा-स्थित स्वरूप क्यांथी कही शके ? ए वात बराबर समजाय तेवी छे. एटले कोइ अज्ञेय पदार्थनुं स्वरूप कथन करवानुं साहस करे तो ते पण अनवस्थित अने बाधित ज कथन करे, एम समजवुं जोइए. आथी तेना पर विश्वास स्थापन करवो ते आत्माने ठगावानुं कारण केम न थाय ? माटे अहीं हरिभद्रसूरिजी आगमवाक्यनी परीक्षामां त्रीजो प्रकार दर्शावता कहे छे के—" परलोकविधौ मानं वचनं " परलोक संबंधी विधेय

कार्योमां–स्वर्ग तथा मोक्ष आदि विधेयकार्योमां, आत्मिक शुभ विधानोमां अतींद्रियार्थदर्शी एवा सर्वज्ञ भगवंतोनुज वचन मान्य, प्रतिष्ठित, विश्वसनीय होय. हेतु एज के तेओनेज तत् पदार्थ संबंधी यथास्थित अबाध्य ज्ञान होय छे, एटले तेओना कथनमां लेश पण विरोध अथवा विसंवादिपणुं होतुं नथी. विरोध के विसंवादिपणुं तेओना ज कथनमां होय के जेओमां राग या द्वेष उद्भूत अनुद्भूतरूपे विद्यमान होय, अने तेथी ज तेओ स्वार्थना मोहमां खेंचाई अगर मानादिमां आवी जइ इच्छाथी, अनिच्छाथी असत्य सत्यासत्यपणे भरडी मारे. ज्यां असत्य के सत्यासत्य उत्पादक राग या द्वेषनुं मूल ज नथी–सर्वथा अभावज थइ गयो छे, तेओना कथनमां असत्य सत्यासत्यनो अंश क्यांथी संभवे ? न ज संभवे ए वात सामान्य बुद्धिए पण स्वीकारी शकाय एवी छे. कह्युं पण छे—

> रागाद्वा द्वेषाद्वा मोहाद्वा
>
> वाक्यमुच्यते ह्यनृतम् ।
>
> यस्य तु नैते दोषा
>
> तस्यानृतकारणं किं स्यात् ? ॥ १ ॥

अतएव अहीं ग्रंथकर्ता परलोक संबंधी विधेय बाबतोमां सर्वज्ञवचन ज प्रमाणिक होय एवुं जणावी प्रतिपादन करे छे के–जे शास्त्रो खास सर्वज्ञना कथन करेल होय एम प्रमाण अने अनुभव पण मान्य करे ते ज शास्त्रवचन शुद्ध जाणवुं–ग्राह्य जाणवुं. निदान के–सर्वज्ञवाक्य ते ज ऐदंपर्य–परमार्थ शुद्ध जाणवुं. ग्रंथकार आ वचननी विशेष परीक्षा माटे कहे छे के–

" सर्वमिदमनादि स्यात् " सर्वज्ञवचन आदि अने अनादि बे प्रकारे जाणवुं. अमुक अमुक सर्वज्ञनी अपेक्षाए आदि वचन, अने महाविदेह आदि क्षेत्रोनी अपेक्षाए अनादि वचन अथवा प्रवाहनी अपेक्षाए अनादि वचन जाणवुं. एटले भूतकाळमां आ सर्वज्ञवचन हतुं, वर्त्तमानमां छे अने भविष्यमां रहेवानुं. एवो कोइ काल नथी के जे काले आ सर्वज्ञप्रवचन न होय.

अहीं एक वात बराबर ध्यानमां राखवानी छे, अने ते ए के--सर्वज्ञपणुं कोइ पण व्यक्तिने अनादिनुं घटे नहीं किन्तु अल्पज्ञ ज कालक्रमे कर्मों नाश करी सर्वज्ञपणुं प्राप्त करे एम युक्ति अने प्रमाणथी सिद्ध थाय छे; अन्यथा अमुक व्यक्तिने सर्वज्ञपणुं अनादिनुं ज मान्य होय तो आपणे जीवोना जीवात्मा अने सर्वज्ञात्मा एम बे भेदो अनादिना नज मानवा जोइये.

आ परथी जेम सर्वज्ञात्मा ते सर्वज्ञ होवाथी कदापि जीवात्मपणामां आवता नथी, अगर आवे तो तेओने पण एक प्रकारनुं अरघट्टघटीयंत्रनी माफक पर्यटन ज रह्युं कहेवाय; अने तेम थवाथी सर्वज्ञ छतां तेओ असर्वज्ञनी बराबर ज कहेवाय, एवं जीवात्माए पण जीवात्मरूप स्वस्वभावनो त्याग करी सर्वज्ञपणुं कदापि प्राप्त न करवुं जोइये. करे तो अनादिनुं जीवात्मपणुं क्यांथी रहे ? नज रहे, किंतु जीवात्मा जीवस्वरूप छोडी सर्वज्ञपणुं तो अवश्य प्राप्त करे छेज. वधुमां उपरोक्त अनादिना बे भेदो पण कल्पितज मानवा जोइये. टुंकमां वस्तुगत्या स्थित अनादि भेदोनुं परिवर्त्तन कदापि संभवे ज नहीं, जेम अनादिथी

जड ते जड अने चैतन्य ते चैतन्य ए भेदनुं परिवर्त्तन थतुं नथी तेम अनादि उपरोक्त भेदोनुं पण परिवर्त्तन न ज संभवे. तथा जीवात्मा सर्वज्ञपणुं प्राप्त करवाने जे त्याग, तप, दान आदि करे ते अने तेम करवानो उपदेश अर्पनार शास्त्रो विफल ज मानवा जोइये. जे वस्तु मलवानी नथी तेना माटे जे परिश्रम करवो के उपदेश आपवो ते निष्फल ज गणाय—वंध्या जेवो जाणवो. अज्ञानावस्थामांथी अल्पज्ञपणुं अने तेनी उत्क्रान्ति थतां प्रखर-ज्ञानीपणुं आपणे अनुभवीये छीये, तो तेना क्रमिक उत्क्रान्ति-वादमां सर्वज्ञपणुं आत्मा प्राप्त करे ए मानसिक गूढ अनुभवने पण आपणे केम मिथ्या मानवो घटे ? निदान के—अंधकार पछी कंइक प्रकाश अने उषा त्यारबाद क्रमशः प्रकाश वधता धीरे धीरे अंधकार जगतमांथी दूर थाय छे ने पश्चात् सर्वथा सूर्यनो प्रकाश ज देखाय छे. एवं आत्मा पण अंतरना अंध-कारने दूर करी सर्वथा ज्ञानरूप प्रकाशने प्राप्त करे ए वात अनु-भवमां आवे तेवी छे. सर्व आत्माओने सर्वज्ञपणुं अनादिनुं आवि-र्भूत होय ए मान्यता संबंध वगरनी मालुम पडे छे.

तथा पृथ्वीनो जे भाग व्यवहारमां जणाय छे तेटली ज पृथ्वी नथी किन्तु पडदा पाछल आ सिवायनी वहोळी पृथ्वी अवश्य छे ए वात तो आजे जडवादीयो पण कबूल करे छे. जे देशो पहेलां व्यवहारमां न्होता जणाता ते देशो व्यवहारमां आवते साथ ज शीवायना देशोनी शोध करवानी पाश्चात्योने लालसा वधी. क्रमे क्रमे ज्यां ज्यां ते लोको पहोंची

शक्या तेथी तेओनो उत्साह अधिक उद्दीप्त थयो अने हजी पण अन्य विभाग माटे तलपापड थाय छे. एटले वर्त्तमानमां आपणी दृष्टिये जे विभागो न जणाय ते विभागो नथी एवुं कथन करवुं ते नितान्त आग्रहज गणाय. आथी सर्वज्ञ-प्ररूपित जैन शास्त्रो पहेलांथी ज पृथ्वीना अनेक विभागनुं वर्णन करे छे ने ते विभागो एवा छे के ज्यां विशिष्ट बल शिवाय सामान्य जनता जइ शके नहीं. आ विभागोमां केटलाक विभागो अहींनी बराबर स्थितिवाला छे अने केटलाक विभागो अहीं करतां पण अति उच्च स्थितिवाला छे, के ज्यां सर्वदा नितान्त सुख, वैभव, म्होटा बलवान् शरीरो अने अनंतज्ञानीओ वर्त्ती रह्या छे.

अतएव सर्वज्ञवचन आ सर्व क्षेत्रनी अपेक्षाए विचार करता सर्वदा विद्यमान होवाथी एटले महाविदेहादि क्षेत्रोमां सर्वज्ञो हम्मेशा विहरमान रहेवाथी तदपेक्षया अनादि शाश्वत वचन अहीं शास्त्रकर्त्ताए जणाव्युं. निदान के–उत्तम शास्त्रवाक्यनी परीक्षा करता शास्त्रवाक्यो उपर कह्या प्रमाणे सर्वज्ञकथित अने आदिअनादिभाव अलंकृत छे के नहीं ? ए वात जरूर तपासवी. आ परीक्षाने महर्षिओ ऐदंपर्य–परमार्थ शुद्ध परीक्षा निर्देशे छे. निष्कर्ष–आवुं वचन ज परलोक माटे आत्माने उपकारी थाय, शिवाय तो अन्यना वचनना आलंबनथी आत्मा संसारगर्तमांज गोथा खाय ॥

बस अहीं सुधी ग्रंथकर्ताए सत् धर्मना परीक्षक एवा बाल, .ध्यम, बुधवर्गनुं स्वरूप तथा परीक्षा अने परीक्षाना प्रकारो दर्शाव्या. हवे आ लोकोने धर्मोपदेश आचार्ये केवो आपवो जोइये जेथी आ लोकोने पण यथास्थित धर्मनो ख्याल आवे, आ हेतुथी ग्रंथकर्त्ता हवे उपदेश आपवानी रीति दर्शावे छे–

बालादिभावमेवं सम्यग्विज्ञाय
देहिनां गुरुणा ॥
सद्धर्मदेशनापि हि
कर्त्तव्या तदनुसारेण ॥ १२ ॥

मूलार्थ—ए रीते धर्मगुरुए मनुष्योना बाल, मध्यम, बुध विगेरे भावोनुं यथास्थित स्वरूप जाणी उत्तमधर्मनी देशना-उपदेश तेओने जेम सुदृढ रीते उपकारी थाय ते प्रमाणे ज आपवो ॥

स्पष्टीकरण—'एवं' आचार्य हरिभद्रसूरि कहे छे के–प्रथम कह्या प्रमाणे बाल, मध्यम आदि वर्गोनुं स्वरूप ध्यानमां राखी तेओने हितकारी ज उपदेश धर्मोपदेशके करवो. निदान के–श्रोतानुं दिल समज्या वगर उपदेशनो प्रवाह छोडवाथी श्रोताने तेनाथी लाभ थाय नहीं अने वक्ताने उलटो क्लेश पेदा थाय छे, बल्के घणीवार श्रोता विपरित परीणामी बनी सदाने माटे धर्मश्रवण करवानुं छोडी दे छे. एटले यत्किंचित् पहेलानो भाव होय तेमां पण हानि पहोंचे छे, एवं उपदेशकने तेटलो

समय व्यर्थ जवाथी पठन-पाठनादिमां पण व्याघात पहोंचे छे. अतएव आचारांगमां पर्षद् जनस्वभाव अने धर्मरुचि विगेरे श्रोता संबंधी भावो जाण्या शिवाय उपदेश करवानी खुल्ली मनाइ करी छे. निष्कर्ष-आचार्य-देश, काल, जनस्वभाव, लोकोनी अभिरुचि विगेरे वातो जाण्या वगर जे धर्मोपदेश करे ते शून्यरूप ज परिणामे-वधुमां अनर्थ करे; माटे अहीं ग्रंथकर्त्ता भार दइने जणावे छे के-" बालादिभावमेवं सम्यग्विज्ञाय " बराबर बाल विगेरेनुं प्रथम धर्मोपदेशके स्वरूप जाणवुं. ते जाण्या पछी ज धर्मोपदेश करवो. शिवायने शास्त्रोमां उंटवैद् जेवा गण्या छे. आ उपदेशको पण हलदर-नो टुकडो मलवाथी गांधी थइ बेसे तेवा तो न ज होवा जोइये. एटले एकाद ग्रंथ के चरित्र, अमुक लेख के भाषण, छुटक थोडाएक श्लोको मुखे याद करी लीधा अने पछी उपदेशकनो झंडो लइ लोकोने उपदेश आपवा दोडी जाय तेवा न जोइये; किन्तु आचार्य कहे छे के-" गुरुणा " गुरुपणाना यथा-स्थित गुण जेमां होय, जेमके-धर्मज्ञो धर्मकर्त्ता च, सदा धर्मपरायणः । सत्त्वेभ्यो धर्मशास्त्रार्थदेशको गुरुरुच्यते ॥ १ ॥ " धर्म जाणकार, धर्मकर्त्ता, नित्य धर्ममां ज तत्पर, तथा भव्यात्माओने धर्मशास्त्रनो उपदेश अर्पनार गुरु कहीये. " परमार्थ के-स्वशास्त्र अने परशास्त्रना ज्ञाता तथा नित्य धर्ममां ज दत्तचित्त एवा गीतार्थ महापुरुषो शिवाय अन्ये धर्मोपदेश आपवा बेसवुं ए केवल धर्म अने श्रोताने

उत्पथमां दोरी जवानुं ज कारण बने छे. निदान के—आजे आवा वक्ताओ शासनमां केवो गोटाळो पेदा करी रह्या छे ते नजरे ज घणी वखत आपणे अनुभवीये छीये. व्यसन, अभक्ष्य अने पौद्‌गलिक मोहमां राचीमाची रहेला उपदेशकोए कांइ शासननी ओछी खराबी नथी करी. अतएव—हितार्थीए आचार्यना उपरोक्त गंभीर कथन पर खास ध्यान आपवानी जरूर छे. वळी ग्रंथकर्त्ता जणावे छे के—बालादिभाव जाण्या पछी धर्मोपदेश करवो ते पण एवी रीते के—"तदनुसारेण" एटले बालादिकोने हितकारी थाय. परमार्थ—बाळ विगेरे धर्मोपदेश श्रवण करी पोतानो बालभाव समजी तेनो त्याग करी बुधपणुं प्राप्त करे. टीकाकार कहे छे के—"यस्य यथोपकाराय संपद्यते देशना तस्य तथा विधेया" "जेने जे प्रकारे धर्मदेशना करवाथी उपकार थाय तेने ते प्रकारे धर्मदेशना करवी" अर्थात् जीव आदि एक पण तत्त्वने जे समजता नथी तेवाओ सामे सूत्रोना गहन भावो कथन करवा बेसवुं अने गहन तत्त्वोना शोखीनो पासे राजा राणीनी कथाओ करवा बेसवुं, धर्मना खरा मर्मने नहीं जाणनार पासे लांबा लांबा तत्त्वोना व्याख्यानो करवा ए सर्व अनुचितपणुं पेदा करे छे: माटे, अने मूलमां 'हि' ए शब्द होवाथी हितकारी थाय तेवो ज उपदेश आपवो पण अन्यथा प्रकारनो उपदेश न आपवो ए खास उपदेशके ध्यान राखवुं जोइए. स्पष्ट मन्त्रोमां कहीये तो अहितकर उपदेश आपवा करता-

उपदेशके मौन धारवुं, उपदेशकपणानो मोह छोडी देवो ए वधारे उचित गणाय, बल्के लाभकारी ज थाय; अने तेम करवामां पोताने हानि थती होय तो अवश्य ग्रंथकारना कथन प्रमाणे प्रथम तेवुं उच्च ज्ञान प्राप्त करवा कम्मर कसवी अने पछी उपदेश करवो जेथी उपदेशकनो मनोरथ सफल गणाय.

उपर दर्शित विषयनी ज वधु पुष्टि माटे ग्रंथकर्त्ता आगळ वधीने अधिक खुलासो करे छे—

यद् भाषितं मुनींद्रैः पापं
खलु देशना परस्थाने ।
उन्मार्गनयनमेतद्
भवगहने दारुणविपाकं ॥ १४ ॥

मूलार्थ—परमज्ञानीयोए–अन्यने उपकारी धर्मदेशना अन्यने आपवामां निश्चयथी पापकारी कही छे, कारण के–अन्य योग्य देशना अन्यने आपवाथी उन्मार्गमां लइ जइ भवसमुद्रमां डूबावी भयंकर कटुकफल आपनारी बने छे.

स्पष्टीकरण—१३ मा श्लोकमां जे वात कही छे तेनुंज अहीं ग्रंथकार स्पष्टीकरण करे छे. अन्य योग्य देशना अन्यने आपवामां सर्वज्ञो पाप कहे छे, अर्थात्–बाल योग्य देशना मध्यमने, मध्यम योग्य बुधने, बुध योग्य बाल अथवा मध्यमने अने मध्यम योग्य बालने ए रीते धर्मदेशना करवामां

महापाप कह्युं छे. व्यवहारमां पण जेटली अने जेवी लायकात होय ते प्रमाणे ज अधिकारो अपाय छे, अन्यथा आपवामां देनारने नीचुं देखवुं पडे अने लेनार तेनो डायरशाही उपयोग करे ए वात कांइ छानी नथी. तद्वत् अहीं पण बुध विगेरे योग्य देशना–धर्मस्वरूप बाळ आदिने आपवाथी तथा बाल आदि योग्य धर्मस्वरूप बुध विगेरेनी पासे कथन करवाथी जे लाभ कल्याणना पंथे पहोंचवानो थवो जोइये ते न थता उलटो धर्मश्रद्धा खसेडवानुं बने छे. एटले नितान्त ते लोको पतित-परिणामी थइ धर्म पर अने उपदेशक आचार्योना प्रति अबहु-मानी थइ बोलवा मांडे छे–"शुं व्याख्यानमां जइने करीये ? त्यां तो झीणुं झीणुं कंताय छे, कांइ समजातुं नथी, समय नकामो जाय छे, केवल राजा राणीनी वातो वंचाय छे." विगेरे विगेरे. अतएव मूलकर्त्ता कहे छे के–आवी धर्मदेशना महापापकारी थाय. "खलु" निश्चयथी पाप पेदा करे छे, एटलुं ज नहीं, किन्तु "उन्मार्गनयनं" आवी धर्मदेशना श्रोताने उन्मार्ग तरफ खेंची जाय छे. दाखला तरीके जेम बुधजनो वेशने अप्रधान माने छे तेमां मुख्यतया धर्म मानता नथी, ज्यारे बालजीवो तेमां धर्म माने छे. प्रधा-नतया ते धर्म छे एम समजी वेशने नमस्कार करे छे, पूजे छे, बहुमानथी माने छे, हवे बालजीवो सामे वेशमां धर्म नथी, ते तो अप्रधान छे, कारण के पासत्याओ अने भांडो पण पोताना स्वार्थ माटे साधुवेश धारण करे छे; पण एतावन्मात्रथी

तेओ कांइ धर्मी कहेवाय नहीं किन्तु अधर्मने ज वधारे सेवे छे. आ रीते कथन करवाथी बालजीवो जे वेशना अनुरागथी यत्किंचित् धर्म साधता होय, क्रमशः अधिक धर्म पामता होय तेनो त्याग करी तेओ पण वेशने अबहुमानथी जोवा शीखे, निंदता शीखे छे, अने तेम थवाथी बिचारा बाळजीवो धर्मभ्रष्ट बनी अपरिणामी अथवा विपरीणामी बने ए स्वाभाविक छे. आ पाप केवल योग्यने योग्य धर्मदेशना न देवाथी थाय छे, यावत् ग्रंथकार कहे छे के–छेवटे "भवगहने दारुण-विपाकं" उपरोक्त प्रतिकूल धर्मदेशना ते ते लोकोने संसार-समुद्रमां डूबाडी भयंकर कटुक फल अर्पनार बने छे. परमार्थ के–श्रोता अने वक्ता बन्ने आ रीतनी धर्मदेशनाथी भवसमुद्रमां अथडाय छे. अरे ! वक्ता तो अधिकतया कटुक फल पण उपार्जन करे छे, कारण के–खरो विचार तो प्रथम वक्ता-नेज करवो जोइये. ज्ञान विना धर्मदेशना आपवानो साहस करवो तथा प्रभुज्ञाननो अनादर करवो ए वक्ता माटे महापाप-कारी केम न कहेवाय ? खरेखर व्यवहारमां पण कायदानो जाणकार थइ कायदानो अनादर करी गुन्हो करनार वकील बेरिष्टरने ओछी सजा भोगववी नथी पडती ॥

उपरना कथनथी अहीं आश्चर्य साथे बहु शंका पेदा थाय छे के–आचार्यो जे धर्मोपदेश आपे छे ते यदि सर्वज्ञकथितज होय तो ते गमे तेना सामे कथन करवामां आवे एथी ते अनर्थ उत्पन्न केम करी शके ? कारण उपदेश सर्वज्ञदर्शीत

होवाथी अमृततुल्यज गणाय छे, अर्थात्–अमृत गमे ते पुरुष आरोगे एटले आरोगनारने तो अंते लाभज थाय छे. हा, जो उपदेश सर्वज्ञकथित न होय अने ते उपदेश आचार्यो आपे तो उपर कहेल सर्व वातो बंधबेसती थाय खरी. अतः आ शंकाने निर्मूल करवा माटे हवे आचार्यश्री अहीं स्पष्ट खुलासो करे छे—

हितमपि वायोरौषधमहितं
तत् श्लेष्मणो यथात्यंतं ॥
सद्धर्मदेशनौषधमेवं !
बालाद्यपेक्षामिति ॥ १५ ॥

मूलार्थ—वातरोगीने जे औषध हितकारी–उपकारी थाय–होय तो पण तेज औषध कफरोगीने आपवाथी अत्यंत अहितकारी–नुकशान करनार थाय छे. एवं उत्तम धर्मदेशना-रूप औषध हितकर छतां अनधिकारी बाल आदि वर्गने आपवाथी अहितकर ज थाय छे.

स्पष्टीकरण—औषध मात्र उपकारी ज होय छे, छतां अधिकारि प्रमाणे एटले रोगनुं निदान कर्या पछी रोगीने औषध आपवामां आवे तोज ते औषध रोगीने उपकारी थाय छे. अन्यथा हितकर पण औषध अहितकारी थाय, ए आपणे सारी रीते जाणीये छीये. दाखला तरीके–जे औषध वात-

रोगीने हितकर होय तेज औषध कांइ कफरोगीने हितकर होय एम नहीं, अने कफरोगीने जे हितकर होय ते पीत्तरोगीने हितकर नज होय. घी तथा दुध पुष्टिकारक छतां कफरोगीने ते आपवामां आवे तो तुरतज तेने अत्यंत अहित पेदा करनार थाय छे, ने साकर पित्तरोगीने हानि करनार बने छे. अहीं आ औषध खोटुं छे अथवा वैद्यग्रंथो खोटा छे एम तो नज कहेवाय, किन्तु वैद्ये रोगनुं निदान कर्या विना अनधिकारिने आप्युं एटले वैद्य अने रोगी बन्नेने ते औषध नुकशान करे छे, एज वात आपणो सामान्य अनुभवथी स्वीकारी शकीये. एवं सर्वज्ञकथित शास्त्रो अने तदुक्त उपदेश बन्ने सत्य अविसंवादी महदुपकारि. छतां बाल आदि जीवोनी योग्यतानुं निदान कर्या विना तेओने आपवानुं साहस उपदेशक आचार्य करे तो तेमां शास्त्र अने उपदेशनो दोष छे, एवुं बुद्धिमानो तो न ज कही शके. परमार्थ के—एवुं कथन नितान्त असत्य ज गणाय. खरी वात तो ए छे के--उपदेशकनी गफलती या अज्ञानता ज कहेवी जोइये तेमज सर्वज्ञशास्त्रमां ए तो अवश्य प्रतिपादिन कर्युं छे के—" आ सर्व उपदेश अधिकारिनी योग्यता प्रमाणे आपवो " आम छतां तेनी बेदरकार करी अनधिकारीने तत् तत् प्रकारनो उपदेश आपवा साहस करवो ए शुं उचित गणाय खरो ? आवा उपदेशने आ सर्वज्ञनो उपदेश छे एवुं कयो बुद्धिमान् कही शके ? अर्थात् ए तो उपदेशकना मस्तकनो फांटोज कहेवाय, एटले

सर्वज्ञना उपदेश साथे उपदेशके पोतानुं विष मेळव्युं अने तेथी अनर्थ कर्यो ए ज परमार्थ तत्त्व गणी शकाय. निष्कर्ष के—आ परथी सर्वज्ञनो उपदेश अनर्थ केम पेदा करे ? आ शंकानुं बहु सुंदर रीते निर्मूलन थइ जाय छे. अमृत पण अमृतरूपे होय तो ज अधिकारीने उपकारी थाय छे, ए वात बराबर समजाय तेवी छे.

ए रीते अहीं सुधी आ प्रस्तुत प्रकरणमां बाल, मध्यम, बुधना प्रकारो, तेना लक्षणो, तथा तेओनुं स्वरूप, सद्धर्मनी परीक्षाना प्रकारो, सद्धर्मनी परीक्षा केम करवी, तेओने उपदेश आपवानो विधि, तेना पर रोगी तथा औषधनुं दृष्टांत विगेरे वातो जणावी, हवे ग्रंथकार प्रस्तुत अधिकारनो उपसंहार करी षोडशक नामक ग्रंथना प्रथम प्रकरणनी समाप्ति सूचवे छे.

एतद्विज्ञायैवं यथार्हं (थोचितं)।
शुद्धभावसंपन्नः ॥
विधिवदिह यः प्रयुंक्ते ।
करोत्यसौ नियमतो बोधिं ॥ १६ ॥

सूत्रार्थ—ए रीते वक्ता बाल आदिनुं यथास्थित स्वरूप जाणी जो शुद्धभावपूर्वक अने योग्यतानी परीक्षारूप विधि साथे श्रोताने उपदेश आपे तो ते वक्ता नितान्तेन सम्यक्त्व भाव पेदा करे छे.

५

स्पष्टीकरण—अत्र आचार्यश्री योग्यने योग्य उपदेश आपवाथी वक्ता-श्रोता उभयने शुं लाभ थाय ए वातनो खुलासो करे छे. जेम समय अने प्रकृतिज्ञ उत्तम वैद्य रोगीना रोगनुं बराबर निदान करी औषध आपी उभयने महान् लाभ करे छे. एवं अहीं पण उपदेशक धर्मगुरु आगल कह्या प्रमाणे बाल आदि वर्गनुं यथास्थित स्वरूप ध्यानमां राखी तेओनी प्रकृति अनुकूल अने ते पण केवल परोपकार बुद्धिए, के जेमां स्वार्थ-भावनो अंश न होय ते रीते यदि धर्मोपदेश करे तो अत्र ग्रंथकार कहे छे के " विधिवदिह" एटले विधिपूर्वक बाल-योग्य बालने, मध्यम योग्य मध्यमने अने बुध योग्य बुधने ए रीते उपदेश आपे तो वक्ता नितान्तेन श्रोताने धर्मपर श्रद्धा उपजावे छे. परमार्थ के—बाल विगेरे जीवो तथाप्रका-रनो योग्य उपदेश श्रवण करी स्वनिष्ठ बालपणुं छोडी मध्यम तथा बुधपणुं प्राप्त करे छे, जेथी तेओ पोतानुं कल्याण सारी रीते साधी शके छे. आथी आ जीवो आवा प्रकारना उपदेशना बलथी सन्मार्गगामी उत्तमधर्मी बनी परिणामे सम्यक्त्व पामे छे अर्थात् शुक्लपाक्षिकपणानी दुर्लभ स्थिति प्राप्त करे छे. एवं वक्ता पण अनेक जीवोने धर्म प्रमाडी पोतानुं अभूतपूर्व कल्याण करे छे. आचार्यश्री कहे छे के—'नियमतो' आवा उपदेशथी निश्चयेन वक्ताओ श्रोताने बोधिलाभ पमाडे छे. टुंकमां आथी श्रोताओ उत्तरोत्तर पोतानुं कल्याण साधता शीखे छे. ॥

" उद्देश "

गत अधिकारना अंतभागमां आचार्यश्रीए जणाव्युं के—बाल आदि योग्य वर्गने तेओनी योग्यता अनुरूप उपदेशक उपदेश आपे तो ज नियमेन बोधि पमाडे छे. आ परथी क्या श्रोताने क्या प्रकारनो उपदेश आपवाथी लाभ थाय ? ए वात हवे समजवानी नितान्त आवश्यकता रही. अतएव ग्रंथकर्ता आ बीजा प्रकरणमां क्या क्या जीवोने क्या क्या प्रकारनो उपदेश आपवो तेनुं स्वरूप दर्शाववा प्रयत्न करे छे, अर्थात् बीजा अधिकारनो प्रारंभ अने तेनो संबंध आदिमां आ रीते ग्रंथकारे दर्शाव्यो छे.—

बालादिनामेषां यथोचितं,
तद्विदो विधिर्गीतः ।
सद्धर्मदेशनायामयमिह,
सिद्धान्ततत्त्वज्ञैः ॥ २—१ ॥

मूलार्थ—बाल, मध्यम आदिनुं स्वरूप जाणनार उपदेशक आचार्योए पूर्वे जणावेल बाल आदिने यथोचित रीते उपदेश केवो आपवो ते संबंधमां सद्धर्मनी देशनाविधिनुं स्वरूप आ प्रस्तुत प्रकरणमां कहेवाशे अर्थात् जे रीते सिद्धान्ततत्त्वज्ञ पुरुषोए विधि जणाव्यो छे, ते प्रमाणे आचार्यश्री कहेशे.

" प्रस्ताव अने निर्देश "

स्पष्टीकरण—आ कारिकानो भावार्थ जो के स्पष्ट ज छे तो पण कांइक विशिष्ट खुलासो करवानी आवश्यकता छे खरी. प्रकरणनो प्रारंभ करवा पूर्वे ग्रन्थकर्ता आचार्यश्री निर्देश करे छे के- आ प्रकरणमां सिद्धान्ततत्त्ववेत्ता महापुरुषोए जे प्रमाणे उत्तम धर्मनी देशना आपवानो विधि अने तेना प्रकारो बाल आदि जीवो माटे कह्यां छे तदनुसार अमे पण कथन करीशुं; कारण के पूर्व प्रकरणमां कही गया हता के " बाल आदिने योग्य हितोपदेश आपवाथी आचार्य तेओने बोधि पमाडे छे. " एटले बाल आदि वर्गनुं स्वरूप जाणकार पण उपदेशविधि जो न जाणे तो ते तथाप्रकारनो विधि क्यांथी दर्शावी शके ?

" संबंध "

निदान के-उपदेशके आ विधि अवश्य समजवो जोइए. अतएव पहेलुं प्रकरण बाल आदि वर्गनुं स्वरूप दर्शावनारुं जणाव्युं एटले आ बीजुं प्रकरण देशनाविधि स्वरूप दर्शावनारुं जणावीशुं. आ रीते बीजा प्रकरणनो संबंध पहेला प्रकरण साथे बराबर घटावी लेवो, कारण के-ग्रंथनो विषय योग्य रीते उत्तरोत्तर सुसंबद्ध होवाथी ज समुचित ग्राह्य अने पाठ्य थाय, जेथी पाठको पण उपदेशविधि समजी यथोचित रीते उपदेश करवा साथे बोधि पमाडी शके. अहीं आटलुं

विशेष जाणवुं के अहीं जे विधि कहेवामां आवशे ते 'तद्विदो' बाल आदि वर्गनुं स्वरूप जाणकार एवा उपदेशक पुरुषोने ज खास करीने उपकारी थशे. शिवाय अन्य लोकोए तो आ विषय समजी ध्यानमां राखवानो छे. आटलो खुलासो करी हवे आचार्यश्री जणावे छे के—

" पराधीनता अने तेना हेतुओ."

आ विधि हुं स्वतंत्र कल्पनाथी नथी कहेवानो, किन्तु "सिद्धान्ततत्त्वज्ञैः" सिद्धान्त–आगमशास्त्रोना जाणकार, पारंगत एवा श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामी जेवा महापुरुषोए जे रीते पूर्व शास्त्रोमां जणाव्यो छे, ते ज विधि "यथोचितं" बराबर बाल आदि वर्गने उपकारी थाय तथाप्रकारे अहीं हुं कथन करीश. मतलब के–आ विषयमां ग्रंथकर्त्ता पोतानी पराधीनता तथा शिष्टाज्ञा परिपालनता दर्शावे छे. शिष्टत्वप्राप्त्यर्थे अने ग्रंथने आदेय बनाववा माटे आ एक उत्तमोत्तम मार्ग छे के जे आचार्यो पूर्वपुरुषना पंथे चाली वस्तु कथन करी पोतानी पराधीनता दर्शावे छे. तथा जे लोको उपदेश अने वस्तुनो निर्देश शास्त्रोमां पोतानी स्वतंत्र मतिकल्पनाओ मुख्य करी कथन करे तो ग्रंथकर्त्ता छद्मस्थ होवाथी अवश्यमेव स्खलित थाय अने दोषमिश्रीत ज व्याख्याओ करे, कारण के ज्यां छद्मस्थो अल्पज्ञ होइ मर्यादित ज्ञान धरावे छे त्यां तेओ निर्दोष अने अविरोधी कथन क्यांथी करी शके ? परमार्थ के–सदोष तथा विसंवादी ज वस्तुनुं प्ररूपण करे छे. आ बाजु प्राकृत लोको

तो श्रद्धालु, विश्वासु अने अतिअल्पज्ञ होवाथी ग्रंथकर्त्ताना वाक्योपर ज निर्भर रहे छे. निदान के--एकान्त आदेयरूपे माने छे. आथी ग्रंथाज्ञा प्रमाणे वर्तन करी परिणामे ते लोको कल्याणना बदले विश्वासथी स्वात्मानुं अकल्याण ज करे. एटले आवुं महत् पाप ते स्वतंत्र आचार्यनी बुद्धिथी ज पेदा थयुं, एम विनासंकोचे मानवुं जोइए. अतएव सज्जन अने शिष्टनो ए वास्तविक धर्म छे के पूर्वपुरुषना पंथे चाली तेवी वस्तु-तत्त्वनी प्ररूपणा करवामां पराधीनता ज दर्शाववी--राखवी. निष्कर्ष के--अल्पज्ञे सर्वज्ञोना अने महद् ज्ञानीओना वचनाधारे पदार्थनी व्याख्याओ करवी ए न्याय्य गणाय.

अहीं मूलमां "अयं" शब्द एटला माटे ज ग्रंथकर्त्ताए धर्यो छे के--आ आगलनी आर्याओथी साक्षात् दृश्यमान एवी सद्-धर्मनो देशनाविधि हुं जणावीश. जे विषय अनंतरपणे समी-पमां ज--साक्षात् देखाडवानो होय छे त्यां ज अयं शब्दनो प्रयो-ग थाय छे. हवे उपर देखाडेला संबंधना अनुसारे बाल, मध्यम अने बुध पैकी धर्मदेशनामां प्रथम बाल योग्य धर्मदेश-नानो प्रकार अने उपदेशके पण तथाप्रकारे ज वर्तवुं जोइये, ए वात आचार्यश्री जणावे छे--

बाह्यचरणप्रधाना,
कर्त्तव्या देशनेह बालस्य ॥
स्वयमपि च तदाचार-
स्तदग्रतो नियमतः सेव्यः ॥ २--२ ॥

मूलार्थ—उपदेशके अहीं उपदेशविधिमां प्रथम तो बालवर्ग पासे बाह्य चारित्रनी प्राधान्यता एटले मुनिवेशनी मुख्य प्रशंसा जेमां होय एवी देशना आपवी, तथा उपदेशके पण नियमेन तेओनी सामे तेवो ज आचार पालवो जोइये.

"अयोग्य उपदेशनुं परिणाम."

स्पष्टीकरण—" बाह्य एवो मुनि आदिनो वेश, बाह्य एवी अन्य क्रियाओ तेमज बाह्य आचार-वर्तन देखीने जेओ खुशी थाय, धर्म पामे ते बालवर्ग" आ वात गत प्रकरणमां आचार्यश्री कही गया छे. परमार्थ के—बालजीवो बाह्याडंबरमां वधारे श्रद्धालु होय छे, कारण के—तेओने विशिष्ट विवेक तथा दीर्घ विचार न होवाथी तेम बनवुं उचित छे. निदान के—बालवर्गनी आवी स्थिति होवाथी यदि उपदेशक धर्मोपदेश आपता आ लोको सामे " बाह्य वेशनी असारता, अन्य बाह्य क्रियाओनी गौणता, एवं बाह्य वर्तननी आडंबरता, तेमां धर्म नथी, पासत्थाओ, वेशविडंबको अने भांडो पण आजीविका माटे, अन्य स्वार्थ माटे तेवो वेश, तेवी क्रियाओ तथा तेवुं आबेहुब वर्तन करे छे. छतां आ लोकोमां धर्मनो लवलेश देखातो नथी; माटे धर्म तो तत्त्वमार्गमां अने आत्मानी शुद्ध परिणतिमां ज होय छे, शिवाय वेश के क्रियाओ तो एकडा वगरना शून्य जेवी ज समजवी." आ रीतनो उपदेश अपाय तो नितान्तेन तेवुं ज एकान्त पोषण

थाय तो ते बाललोको तुरतज धर्म प्रति मंद आदरवाला थइ धर्मशून्य–अश्रद्धालु बनी जाय छे. अरे! विमुख परिणामवाला थाय तो पण आश्चर्य नहीं.

"उपदेश प्रकार"

अतएव ग्रंथकर्त्ता स्पष्ट कहे छे के–"इह" उपदेश विषयमां उपदेशके ते बालजीवो विपरिणामी न बने, अश्रद्धालु न थाय माटे तेओनी प्रकृति अनुकूळ क्रमशः गुणवृद्धि थाय, तेओ सन्मार्गारूढ बने, तेओनी धर्मप्रीति वधे तेम बाह्यवेश, बाह्यक्रिया अने बाह्यवर्त्तननी प्राधान्यता जेमां होय तेवो धर्मोपदेश उपदेशके आपवो; तथा वक्ताए पण वर्तन अने क्रियाओ तथाप्रकारे ज ते लोको सामे प्रेमपूर्वक आचरवी, जेथी ते लोको आधिक्येन धर्मश्रद्धालु बनी उपदेशक पर अनुरागी पण थाय. अन्यथा आ लोको उपदेश अन्यथा प्रकारनो तथा आचरण भिन्न प्रकारनुं निहाळी शीघ्र ही शंकाशील बनी अविश्वासु थाय छे. ते ज उपदेश अने उपदेशक प्रति मंद आदर के अनादरवाळा बनी परिणामे धर्ममां पण किंचित् अदृढ परिणामी थइ जाय. निदान के–'परोपदेशे पांडित्यं' ए वाक्यनो लोको तुरतज उच्चार करे,–'पोथीना रिंगणा' जेवुं कहे. अतएव अहीं ग्रंथकर्त्ता भार मूकीने कहे छे के– "नियमतः सेव्यः" नियमेन वक्ताए पण जेवो उपदेश आपवो तथाप्रकारे ज वर्त्तन सेववुं. एटले उपदेश अने वर्तनमां द्विधाभाव न करवो जोइए, अर्थात् उपदेशके "चित्ते वाचि

क्रियायां च, साधुनामेकरूपता " ए ज नियमनुं समुचित रीते पालन करवुं न्याय्य गणाय.

" ग्रंथकर्त्तानो आशय "

अत्र ' उपदेशके बालजीवोने बाह्यवेश तथा बाह्याचारनी प्राधान्यतावाळी धर्मदेशना आपवी ' आवुं जे आचार्यश्रीए जणाव्युं तेनुं कारण आ बाललोको आवा उपदेशथी अनुक्रमे धर्म पामे ए ज समजवुं, परंतु आवा उपदेशथी ते लोकोने अंधारामां अथवा बालस्थितिमां राखवा एवो आशय आचार्यश्रीनो छे एम न समजवुं. किन्तु बालकने मिठाइनी लालच आपी जेम कडवा औषधनुं पान करावाय छे, ए न्याये अहीं पण आ लोकोने जे वस्तुमां अधिक प्रेम तथा श्रद्धा छे ते वस्तुना गुणो दर्शावी तेमां तेओने बराबर सुदृढ करी, तेओनी विचारशक्ति अने विवेकशक्तिने खिलववी तेमज अनुक्रमे द्रव्यक्रिया अने भावक्रियानुं स्वरूप, आत्मानी विचित्र परिणतीयो, अध्यात्मतत्त्वनुं दिग्दर्शन, आगमतत्त्व, व्यवहार अने निश्चयनयनी मान्यता विगेरे जणावी बाह्यवेश, बाह्यक्रियाओनी मुख्य गौणता, क्रियानो खाली पण बाह्य आडंबर क्यां अने केवा केवा प्रकारनो होय छे? पासत्थाओ पण केवुं वर्तन तथा क्रियानुं परिशीलन करे छे? विगेरे दर्शावी, केवल बाह्यवेश आदिमां बालजीवोनो स्थापित एकान्त अनुराग उठावी तत्त्वमार्गमां भावप्राधान्य द्रव्यक्रियाओमां स्थापन

कराववो. बालजीवो मध्यमपणुं पामी अनुक्रमे बुधपणुं प्राप्त करे, आत्मानी परमविशुद्धि करता शीखे तथाप्रकारे उपदेशके प्रयत्न करवो जोइए. तो ज उपदेशकनो उपदेश प्रभुआज्ञाकारी बनी स्वपरने यथारूपे उपकारी थाय, ए ज आचार्यश्रीनो अहीं गर्भित परमार्थ छे. अतएव अहीं उपदेशानुकूल वर्तन राखवानुं पण उपदेशक माटे आचार्यश्रीए भारपूर्वक जणाव्युं छे.

आ प्रकारे उपदेशकने भलामण करी हवे बालवर्ग लायक देशनानुं स्वरूप ग्रंथकर्ता पांच आर्या श्लोकथी विस्तृतपणे अहीं दर्शावे छे—

सम्यग्लोचविधानं
ह्यनुपानत्कत्वमथ धरा शय्या ।
प्रहरद्वयं रजन्याः,
स्वापः शीतोष्णसहनं च ॥ २–३ ॥

मूलार्थ—सम्यक्–सर्वज्ञ आज्ञानुसारे छ छ मासे मुनियोए लोच करवो, उपानह (जोडा) पहेरवा नहीं अने पृथ्वी पर शयन–संथारो करवो, तथा रात्रिना बे प्रहर सुधी एटले बीजा अने त्रीजा प्रहोरमां निद्रा लेवी एवं शीयाळे, उन्हाळे शीत तथा उष्ण आदि परीषहो सहन करवा जोइए.

" धर्मप्राप्तिनुं कारण "

स्पष्टीकरण—बालजीवो सुंदर एवो मुनियोनो बाह्यवेश

तथा बाह्य कठिन आचारो निहाळी खुशी थवा साथे धर्म पामे छे, तेनुं मुख्य कारण आ छे. प्रथम तो आ लोको खानपान, गाडी, वाडी अने लाडीनी मोजमजाहमां, कपडा अलंकारोमां, शरीरनी शुश्रूषामां ज आनंद माने छे, जेमां अतिकष्ट के अल्प कष्ट होय तेवी क्रियाथी, आचारोथी ध्रुजी उठे छे, पोताना आत्माने लेश पण कष्ट थाय तेनाथी त्रास पामे छे, अशक्य अनुष्ठानो माने छे, आथी जे लोको कष्टसाध्य दुर्वह क्रिया के आचारो पालता होय तेना दर्शनमात्रथी आ लोको 'अहो! महान् भयंकर अशक्य दुर्वाह्य आ लोको धर्मसेवन करी रह्या छे.' एम उच्चारी नमी पडे छे, गळगळा थइ जाय छे, बहु बहु प्रशंसा करे छे, मुनियोना बाह्याचारो प्रति आ लोको मान-बुद्धि धारे छे. अतएव उपदेशके पण आ लोकोने धर्म पमाडवा आ लोकोनी बुद्धि अनुकूळ उपदेश आपवो लाभकारी गणाय. ते उपदेश आ रीते आपवो.

"बाल उपदेश"

जैन मुनियोनो एवो आचार छे के–शिरमां कोइ विशेष दर्द–पीडा न होय तो छ छ मासे अवश्य साधुए हाथवडे पोताना केश उखेडी नांखवा–लोच करवो. यदि विशिष्ट पीडा थती होय तो एक एक महिने अस्त्राथी मुंडन कराववुं अने अधिक दर्द थतुं होय तो उपरउपरथी पन्नर पन्नर दिवसे केशो कतराववा. गमे तेवी कठण शीत या गरमी पडती होय, पत्थर, कांकरा के कंटकवाळी जमीन होय, लांबी

अथवा दीर्घ मुसाफरी करवानुं होय तो पण साधुए पगमां चामडाना अथवा तेवा अन्य प्रकारना जोडा पहेरवा नहीं. उंची के नीची, सम के विषम, कांकरावाळी के साफ गमे तेवी जमीनमां पलंग, खाटलो के गादी–तकिया विना साधुए शयन करवुं, मात्र पोतानो उननो के तेवो एकाद बे कपडानो संथारो करी तेना पर शयन करवुं जोइए. साधुए रात्रिना चार प्रहर पैकी पहेला अने छेल्ला प्रहरमां स्वाध्याय, ध्यान अने ईश्वरभक्ति करवी तथा बीजा अने त्रीजा प्रहरमां एटले वधारेमां वधारे छ घंटानी निद्रा लेवी उचित छे. जो के साधुए प्रमाद करवो न जोइए तथापि शिथील एवुं शरीर विना निद्राए अवश्य अस्वस्थ थइ जाय, अधिक आलस आवे ने अनुक्रमे धर्मसाधन छुटी जाय छे, एवं दर्शनावरणीयकर्मना उदयथी निद्रा पण जरुर आवे छे, माटे अहीं बे प्रहरनी निद्रा जाणवी; परंतु रात्रिना आठ अने दश घंटानी निद्रा, दिवसना बे बे कलाकोनी निद्रानो प्रमाद सेववो ए तो कदापि उचित न गणाय. फरी साधुए शीत, उष्ण अने वर्षा ए त्रणे ऋतुमां पोतानी शक्ति माफक सम्यग् रीते अनुकूल–प्रतिकूल शीत तथा उष्ण आदि परीषहो सहन करवा जोइये. मस्तक पर छत्र धारवुं न जोइए, कोइ पण वाहन आदिमां बेसवुं न घटे. अत्र जे परीषहो सहन करवानुं मुनियो माटे कह्युं छे ते त्यां सुधी ज के पोतानी शुभ परिणतीओ चडती रहे, शरीरनी शक्तिओ बनी रहे, आर्त्तध्यान संबंधी क्लिष्ट परिणामो उपजे नहीं, वधुमां कोइ पण रीते

प्रथम जे चारित्र परिणामो हता तेमां क्षति न पहोंचे किन्तु वृद्धि ज थाय तथाप्रकारे सहन करवुं, आचरण सेववुं. जे आचारोनुं सेवन करवा छतां आत्मा क्षणे क्षणे अधिक मलीन थतो होय, क्लिष्ट परिणतीयो पामतो होय, वधु कर्मबंध करतो होय तो ते कठीण आचारोनुं पालनपणुं निष्फळ ज समजवुं. अरे! एक प्रकारे कर्मबंधमां हेतुभूत समजवुं, माटे ज अहीं मूलमां ग्रंथकर्त्ताए 'सम्यक्' ए पद आप्युं छे अर्थात् शुभ भावोथी आचारोनुं पालन करवुं.

फरी ए ज विषयने ग्रंथकार वधु स्पष्ट करे छे—

षष्ठाष्टमादिरूपं चित्रं,
बाह्यं तपो महाकष्टं ।
अल्पोकरणसंधारणं च,
तत् शुद्धता चैव ॥ २–४ ॥

मूलार्थ—सामान्य जनो जेने दुःखथी करी शके तेवा नाना प्रकारे छठ्ठ अठ्ठम आदि बाह्यतपनुं आचरण करवुं, एवं पोतानो निर्वाह थइ जाय एटला ज अल्प वस्त्रपात्र आदि आधाकर्मी विगेरे दोषो रहित चारित्रना उपकरणो धारण करवा.

"तपस्वरूप"

स्पष्टीकरण—जेनाथी आत्मा जाज्वल्यमान थइ पोतानी

साथे लागेला अनादिना निकाचित-अनिकाचित बन्ने प्रका-रना विविध कर्मो प्रजाली प्रजाली भस्मीभूत करे अथवा जे कर्मोने तपावी तपावी आत्मा आत्माथी अलग करे तेने शास्त्रमां तप कह्युं छे. परमार्थ के-आत्मा शुभ एवा परमविशुद्ध परिणामोपूर्वक अनेक विचित्र खानपान अने तृष्णानी कांइ पण वांछा विना केवल कर्मक्षयनी इच्छाथी ज पोतानी शक्ति अनुसारे निरोध करे. एवं इंद्रियो तथा मन, वचन, कायाना पवित्र योगोने बाधा न पहोंचे, खंडित न थाय एवी परम विशुद्ध क्रियाने सुविशुद्ध तप कह्यो छे. आ प्रकारनो ज तप कर्मनो क्षय करी आत्माने ब्रह्मस्थानमां स्थापन करे छे; ज्यारे आ शिवायनो अमुक प्रकारनी लालसाओथी बनेलो तप मात्र आ जन्म के पर जन्ममां ते ते लालसाओनुं ज पोषण करी कृतकृत्य थाय छे. आथी ज महर्षिओए आ बन्ने तपना अनुक्रमे निष्काम अने सकाम एवा नामो आप्या छे. आ बन्ने तपो कष्ट अतिकष्टकारी होवाथी सामान्य जनता करी शकती नथी, एटले जे कोइ करे छे तेमां तेओ मुग्ध ज थाय छे; तथापि सकाम तप तो घणाए लोको स्वार्थ-लोभथी करे छे ने तेमां पोते क्लेशने पण गणता नथी. जेमके-पैसा माटे, विषयो माटे लोको खानपान छोडी दे छे, अति गरमी के शीत विगेरे सहन करे छे, चार-पांच कलाको सुधी एकी पगे खडा रहे छे, रोगादि कारणे आठ, दश, पन्नर दिवसना उपवासो करे छे, एवी ज रीते आ अने जे लोको परलोकमां राज्य आदिना लोभथी विविध कष्टो सहन करे छे ते सर्वने सकाम तप कह्यो छे. आवो तप तो घणाये

करे छे एटले ते कांइ दुर्लभ नथी, परंतु निष्काम एवा तपनी ज प्राप्ति दुर्लभ अने आश्चर्यकारी शास्त्रोमां जणावी छे.

" तपना भेदो "

अत्र निष्काम एवा तपना बाह्य तथा आभ्यंतर ए बे भेदो तथा उभयना छ बाह्य अने छ आभ्यंतर मली द्वादश (बार) भेदो कह्या छे. जे तप बाहेरथी शरीर आदिने सुकावी सुकावी क्षीण करे, लोको जेने सारी रीते देखी शके ने आश्चर्य पामे ते बाह्य; अने जे अंदरना कषाय. तथा रागादिकने चीण करी विषयादि वासनानो प्रलय करे तथा बहुधा सामान्य जनता जे तपने देखी न शके ते तपने आभ्यंतर तप कह्यो छे. आ उभय तप पैकी आभ्यंतर तप एकान्ततः कर्मक्षयकारी होवाथी तेने प्रधान गण्यो छे, ज्यारे बाह्य तपथी तो सुवि-शुद्ध परिणामो वर्तता होय तो कर्मक्षय थाय अने न वर्तता होय तो न थाय माटे आ तपने तेटला अंशे गौण कह्यो छे. तथापि एटलुं तो चोकस जाणवुं के-बाह्यतप जनताने आश्च-र्यमां नांखी बालजीवोने मुग्ध जरुर बनावी शके छे. निदान के-बन्ने तप कल्याणकारी होवाथी सर्वांशे आदरणीय जाणवा. कर्मक्षयना अर्थीए तो आ तपो अवश्य आचरवा जोइये.

" विचित्र दलीलो "

अहीं आ तप विषयमां घणाओनी एवी दृढ मान्यता छे के-आवो तप करवाथी आत्मा जरूर दुःखी थाय, अंदरना

जंतुओ खोराक न मळवाथी मरी जाय अने भूखे मरवुं एवा तपमां धर्म केम संभवे ?

" समाधान "

निदान के—आवा तपमां धर्म न ज घटे. जरूर,—यदि अनिच्छाथी तप कर्यो होय, हुं भूखे मरुं छुं एवा विकल्पो उद्भवता होय तो तो ते तपमां धर्म न संभवे ए न्याय्य छे; परंतु जे तप खास जीगरना प्रेमथी कर्यो होय, कर्मक्षय अने तेम करवुं ते मारो एकान्त सुविशुद्ध धर्म छे, देहनो ममत्व अल्प करवानो आ मुख्य मार्ग छे आवा विचारोथी यदि ते तप करीए तो आत्मा दुःखी क्यांथी थाय ? एमां तो आत्मा एकान्त खुशी ज मनावे छे अने सर्वज्ञ भगवंतोनी आवा अद्वितीय तप माटे ज आज्ञा छे. अंदरना जंतुओना बचाव माटे ज मनुष्यो खोराक स्वीकारे छे, आ दलील तो हास्यास्पद जेवी छे; कारण जो एमज होय तो शरीरने निरोगी बनाववा लोको दवाओ, विरेचनादि स्वीकारी शामाटे अंदरना जंतुओनो नाश करता हशे ? केवल शरीरमां अने बाहिर जीवडाओने केम वधवा देता नथी ? तथा शुं लोको जंतुओने आराम पहोंचाडवा ज आहार ले छे के पोताना शरीरनी पुष्टि माटे ? यदि जो आहारथी, पोतानी पुष्टिना बदले एकान्त जंतुओनी वृद्धि थइ शरीरने हानि पहोंचती होय तो प्रत्येक मनुष्यो शुं आहार लेवानुं पसंद करे खरा ? विगेरे विगेरे विरोधी दलीलो उपर बहु विचार करवो घटे छे. फरी शरीरमां जंतुओनी उत्पत्ति

आहारना अपचाथी ज थाय छे, एटले शरीरमां कांइ जंतुओए पहेलाथी घर कर्युं नथी होतुं. हवे रही भूखे मरवानी दलील. आनुं समाधान उपर करी गया छीए. ज्यां भावथी तप करवानो होय त्यां भूखे मरवानुं कोण कही शके ? ए तो जबरजस्तीथी अगर कांइ लालसाथी आहार छोडवानो होय त्यां ज आ दलील टकी शके.

"उपवास"

आथी सिद्ध थयुं के—आत्मार्थीए तप अवश्य करवो जोइए. अतएव साधुए क्रमे क्रमे देहनो मोह अल्प करवा महाकष्टकारी एवा छट्ठ (बे उपवासो), अट्ठम (त्रण उपवासो) आदि विविध बाह्य तप करवा घटे. अहीं जैन शास्त्रनी मर्यादा प्रमाणे प्रथम एक वखत भोजन करी बीजा दिवसे अन्न, जल, स्वादिष्ट वस्तुनो अने मिठाइ आदिनो अथवा जल सिवाय सर्वनो सर्वथा त्याग करवो अने त्रीजा दिवसे एक वखत मात्र भोजन करवुं. आवा त्यागने चतुर्थभक्त उपवास एवी संज्ञा शास्त्रोमां कही छे, तो पण सूर्योदयथी बीजा सूर्योदय पर्यंत उपरोक्त भोजनादि वस्तुनो त्याग करवो तेने उपवास कह्यो छे. अत्र आटलुं तो उपवास करनारे ध्यान राखवुं के पहेला दिवसे संध्यासमये जल विगेरे छोडी देवा, एवं त्रीजा दिवसे सूर्योदय बाद ओछामां ओछी ४८ मीनीट पर्यंत कांइ पण मुखमां न नांखवुं अर्थात् नवकारसी करवी एटले आ उपवास उचित गणाय. साधुए

आवा विचित्र तपो अवश्य करवा जोइए, जेथी देहनो मोह अल्प थवा साथे नितान्त कर्मक्षय थाय.

" उपकरण "

तथा साधुए पोताना निर्वाह अर्थे वस्त्र, पात्र, कांवली, रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि उपकरणो एटला ज राखवा के जेनाथी निर्वाह थवा साथे भारभूत थइ मूर्च्छाकारी न बनाय. ते पण अल्प कींमतना ज राखवा जेथी कोइने उठाववानी इच्छा न थाय अने पोताने मोह न उपजे. आ उपकरणो पण निर्दोष, न्यायथी आवेल अने साधु माटे बनाव्या न होय, पैसाथी खरीद्या न होय तेवा राखवा, यावत् जेमां साधुपणानी शोभा वधे तेवा उपकरणो साधुओए राखवा उचित छे; कारण के ग्रंथकर्ताए अहीं ' उपकरण ' शब्द मूक्यो छे तेनो अर्थ ' उपक्रियते इति उपकरणं ' जे उपकार करे ते उपकरण. परमार्थ के-जेने धारण करवाथी आत्माने उपकार थाय, आत्मा लघुकर्मी थाय ते ज उपकरणो; सिवाय उपधिना बदले उपाधिभूत समजवा.

पुनः उपदेशनो विषय ग्रंथकार दर्शावे छे—

गुर्वी पिंडविशुद्धिश्चित्रा,
द्रव्याद्यभिग्रहाश्चैव ।
विकृतीनां संत्यागस्तथैक-
सिक्थादिपारणकं ॥ २–५ ॥

मूलार्थ—साधुए आहारादिनी विस्तारथी शुद्धि करवी ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्रित त्रिविध अभिग्रहो धारण करवा, तथा नित्य छ विगयोमांथी अमुक विगयनो त्याग करवो. एवं तपना पारणे एक सिक्थ, बे सिक्थथी पारणुं करवुं.

स्पष्टीकरण—जैन साधुओ हनन, पचन, क्रयण ए त्रण कोटीना त्यागी होय छे, अर्थात् साधुओ कोइ जीवने मारे, मरावे अने मारताने सारो समजे नहीं, अग्नि आदिनो आहारादि माटे आरंभ करे, करावे तथा करताने सुंदर समजे नहीं एवं विक्रयथी कोइ वस्तु ले, लेवरावे नहीं—आवो कठोर आचार साधुओनो होवाथी साधुओए शरीरना निर्वाह तथा धर्मसाधनार्थे गृहस्थे स्वकुटुंब अर्थे तैयार करेल भोजन अने पाणी आदिमांथी माधुकरी वृत्तिये उचित समये अल्प अल्प आहार ग्रहण करवो. एटले जे आहारमां शास्त्रकथित आहार संबंधी ४२ दोषो न लागे एवो ज आहार मुनियो माटे लेवा योग्य कह्यो छे; अने ते सिवायनो आहार अकल्प्य कह्यो छे. अहीं आहारना १६ उद्गम दोषो, १६ उत्पादना दोषो, १० एसणा अने ग्रासेसणा दोषो मली ४२ दोषो पिंडनिर्युक्तिमां कह्या छे. आनुं विस्तारथी स्वरूप बालश्रोता सामे उपदेशके करवुं, तथा द्रव्याद्यभिग्रहाश्चैव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्रयी ४ प्रकारना अभिग्रहनुं स्वरूप कथन करवुं. अर्थात् उत्तम मुनियो रोज नाना प्रकारना अभिग्रहो धारण करे

जेमके-द्रव्यथी अमुक ज आहार, क्षेत्रथी अमुक घरनो अगर अमुक जग्याए, कालथी अमुक समये अने भावथी स्त्री अथवा पुरुष के बाळक अमुक वयना, अमुक रंगना कपडा पहेरेला होय-आ रीते अभिग्रहो धारण करी अग्लानभावे, अप्रमादपणे तेनो निर्वाह करे. वळी नित्य दुध १, दहीं २, घी ३, गुड ४, तेल ५, तळेल चीजो ६-आ ६ विगयमांथी अमुक विगयनो त्याग करे, अने उपवास, छट्ठ, अठ्ठम आदि तपस्याने पारणे एक सिक्थ, बे सिक्थ आदि आहार अंगीकार करे. आ रीते मुनि-आचारनुं सुंदर स्वरूप प्रतिपादन करवुं, जेथी बालश्रोता सारी रीते धर्ममार्गमां आवी शके.

पुनः आचार्यश्री जणावे छे—

अनियतविहारकल्पः
कायोत्सर्गादिकरणमनिशं च ॥
इत्यादि बाह्यमुच्चैः
कथनीयं भवति बालस्य ॥ ५-६ ॥

सूत्रार्थ—साधुए अनियमित रीते विहार करवो तथा हम्मेशा कायोत्सर्ग विगेरे उचित क्रियाओ जरुर करवी. आ विगेरे सर्व बाह्याचार संबंधी उपदेश बाळजीवो पासे कथन करवो.

"अनियतविहार"

स्पष्टीकरण—मुख्यतया साधुए एक जग्याए अधिक काल रहेवुं न जोइए. संसारत्याग कर्या पछी, मोहना बंधनो छोड्या पछी फरी एक ज स्थानमां रहेवाथी साधुओने अनेक प्रकारना दोषो लागु थाय छे. प्रथम तो एक स्थानमां लांवा काल पर्यंत रहेवाथी लोको साथे, पदार्थो साथे अने स्थान साथे जरुर मोह बंधाइ जाय छे यावत् आ मोह पाछळ अनेक खटपटो अने प्रपंचो पण उभा थाय छे. एटले साधुपणुं स्वीकार्या छतां एक संसारी करतां पण अधिक विटंबणाओ आ महात्मा (!) ने सहवी पडे छे, एवं लोको अति संबंधमां आववाथी धर्मगुरुपणानी भावनानो त्याग करी एक सामान्य संबंध धराववा लागी जाय छे. परिणामे निंदापात्र बनी लोकोने धर्मश्रद्धा प्रति स्खलित आशयवान् करे छे. अतएव साधुए एक स्थानमां अधिक समय न रहेतां भिन्न भिन्न क्षेत्रमां विचरवुं जोइये. परमार्थ के—"गामे एग राईयं णगरे पंच राईयं" ए शास्त्राज्ञा प्रमाणे ग्राममां एक रात्रि अने शहेरमां पांच रात्रि जघन्यथी रहेवुं. विशेषमां चातुर्मास सिवाय एक महिनाथी अधिक रहेवुं न कल्पे. यदि शरीर अशक्त होय, रोगादि कारणो होय अथवा तेवा प्रतिकूल संयोगो उभा थया होय तो पण एक महोल्लो छोडी बीजा महोल्लामां, एक उपाश्रयथी बीजा उपाश्रयमां अने छेवटे एक खूणाथी अन्य खूणामां ए प्रमाणे स्थान बदली मासकल्प कर-

वानो विधि अवश्य साचववो जोइए. निदान के-त्यागीने एक स्थानमां रहेवुं सर्वथा हानिकर छे माटे अहीं "अनियत-विहारकल्पः" ए पद ग्रंथकर्त्ताए साधुओ माटे उचित ज कह्युं छे.

"काउस्सग्ग"

फरी मुनिए हम्मेशा कायोत्सर्ग करवो जोइए. अव्वलमां तो साधुए नित्य पोतानी समयोचित उचित क्रियाकांडथी निवृत्त थइ सूत्राभ्यास करवो, कराववो, अर्थ आदिने विचारवा, विचराववा, एवं लोकस्वरूप, अनित्यादि संसारनी बार भावनाओ, मैत्री आदि समकितनी भावनाओ, पंचमहाव्रतनी पचीस भावनाओ, देह अने आयुष्यादिनी स्थितिओ, कर्मनुं स्वरूप, आत्मा तथा कर्मनो संबंध ने प्रत्येकनुं स्वरूप विगेरे पदार्थ पर बहु बहु विचारो करवा, धर्मध्यान अने शुक्लध्यानना पायाओ ध्यावचा. बाद शरीरनी मूर्च्छा अल्प करवा, आत्मानुं अडग बल प्राप्त करवा, कषायोने निर्बळ करवा, एकान्त स्थानमां, शून्य खंडियेर मुकाममां, श्मशान अने अरण्यादिकमां दिवसे अने निशाये कायोत्सर्ग जरूर करवो. एटले जे क्रियामां पोताना आत्माने स्थिर थता परिणामवाळो बनावी देहना संस्कारो, शुश्रूषाओ त्याग कराय, गमे तेवा उपद्रवो अर्थात् गजसुकुमाल मुनि माफक प्राणांतकष्टो पण आवी पडे, डांस, मत्सरादि पीडा उपजावता होय तथापि आत्मा पोतानुं शुभध्यान त्यागे नहीः किन्तु परमात्मानुं अथवा आत्मस्वरूपनुं ज

ध्यान धरे. मन, वचन अने कायानी एकाग्रता—अविचलता राखी, नासिकाना अग्रभाग पर दृष्टिने स्थिर करी, ऊर्ध्वदेहपणे शरीरनुं एक पण रुवाडुं फफडाव्या विना अप्रमत्तभावे आत्मा स्थिर रहे तेनुं ज नाम अहीं कायोत्सर्ग कह्यो छे. 'आवश्यक' सूत्रमां काउस्सगनुं मुख्य फल 'वणतिगिच्छा' कह्युं छे. जेम देह पर गुमडा विगेरे थया होय तो तेनी मलमपट्टी विगेरेथी शान्ति कराय छे एवं आत्मा पर दोषोरूपी जे गुमडा थया होय के जेनी शान्ति प्रतिक्रमवाथी एटले वारंवार निंदवाथी, पश्चात्ताप करवाथी न थाय तेवा प्रबळ दोषो—पापोनो नाश आ काउस्सग्ग ध्यान करवाथी निश्चयेन थाय छे. अतएव छ आवश्यकमां प्रतिक्रमण नामक चतुर्थ आवश्यक पछी आ काउस्सग्ग नामक पांचमुं आवश्यक व्रतधारी माटे करवानुं सर्वज्ञ भगवंते निर्देश्युं छे. निदान के—उपरना पापोने आ कायोत्सर्गरूप क्रिया जरुर शान्त—निर्मूल करे छे. अतः साधुए हम्मेशा काउस्सग्ग करवो जोइए.

"आसन"

मूलमां 'कायोत्सर्गादि' ए पद आप्युं छे. अत्रस्थ आदि शब्दथी 'निषद्याकरणमासेवनम्' टीकाकार जणावे छे. न्यायविशारद उपाध्यायजी महाराज 'आदिनातापनादिग्रहः' कहे छे. अर्थात्—जेम साधुए कायोत्सर्ग हम्मेशा करवो जोइए, तेम एक ज स्थानमां कायाने स्थिर करी

जीवोनो बचाव थाय तेम एक आसने बेसी ध्यानादि पण करवा जोइए. एटले वारंवार इधरउधर फरवुं न जोइये जेथी जीवोनी विराधनानो प्रसंग प्राप्त थाय, अथवा डंडासण, उत्कटुकादि आसन वाळी कायानुं दमन करवुं–कायानो निग्रह थाय ते रीते स्थिर थवुं. उपाध्यायजीना वचनमां स्वाध्यायादिमांथी निवृत्त थइ खुल्ला स्थानमां नग्न देहे उभा रही चैत्र-वैशाख महीनानी गरमीमां आतापना लेवी, कडकडती ठंडीमां कपडा अलग करी खुल्ला स्थानमां ठंडी लेवी एटले शीतसहन विगेरे क्रियाओ करवी जोइये; परंतु आत्मा आर्तध्यानी न थाय ए वात नितान्त ध्यानमां राखवी.

'उपसंहार'

आटलुं कथन करी हवे श्लोकना उत्तरार्द्धथी ग्रंथकर्ता बाल योग्य धर्मोपदेशनो उपसंहार करता जणावे छे के–आ सर्व बाल योग्य धर्मोपदेश बाह्य आचार संबंधी जाणवो. वस्तुतः अहीं जे विस्तृतरूपे बाह्य आचार संबंधी उपदेश जणाव्यो ते अने तेने लगतो ज उपदेश उपदेशके बालवर्गने आपवो. आ उपदेश बाह्य आचार संबंधी ज आपवो जोइये आटलुं तो बराबर उपदेशके ध्यान राखवुं. सिवाय आचार्यश्रीए 'इत्यादि' अहीं आदि शब्द आप्यो छे एटले आदि शब्दथी साधुए जे स्थानमां रहेवुं तेनी अने वस्त्रपात्रनी उभय काल बराबर ध्यान राखी पडिलेहणा करवी, उभय काले लागेला दोषनी शुद्धि माटे प्रतिक्रमण करवुं, एवं सूत्रादिना अभ्यास माटे

रात्रिना पाछला पहोरमां शास्त्रोक्त विधिपूर्वक प्राभातिक-काल ग्रहण करवानी विधि विगेरे क्रिया अवश्य करवी जोइये. पुनः महाव्रतोनुं पालन. गरम जलनुं पान, रात्रिभोजन आदिनो त्याग ए अनुष्ठानो साधुए अवश्यमेव करवा जोइये. अहीं दर्शावेला आ सर्व साधुओना बाह्य आचारो जाणवा. नितान्तेन बालवर्ग बाह्य आचारने निहाळवा जेटली ज बुद्धि धरावनार तथा तत्त्वरत्ने अनुरागी होवाथी आ सर्व उपरोक्त उपदेश तेओनी श्रद्धामां वधारो करी धर्ममति प्रबल अनुराग उपजावे ए संभवित ज छे, बल्के बधुमां आवा उपदेशथी उपदेशक तेओना हृदयमां ग्रंथकर्त्ताना वचन प्रमाणे बोधिबीज प्रकटावी मध्यम अने बुधपणानी अवस्था पर लइ जाय ए कांइ अतिशयोक्ति न गणाय.

आ रीते टुंकमां ग्रंथकर्त्ताए बाल योग्य हितोपदेश कर्यो. आवा उपदेशथी बालजीवो धर्ममां दृढ थवापणाथी थइ अवश्य क्रमशः मध्यमवर्गमां आवी जाय छे. अतएव आ लोकोने हवे मध्यमवर्ग योग्य उपदेश आपवो जोइए. माटे आ उपदेशनुं स्वरूप आगामी श्लोकथी अहीं दर्शावे छे.—

> मध्यमबुद्धेस्त्वीर्यासमिति-
>
> प्रभृति त्रिकोटिपरिशुद्धं ॥
>
> आद्यंतमध्ययोगैर्हितदं,
>
> खलु साधुसद्वृत्तम् ॥ २—७ ॥

मूलार्थ—उपदेशके मध्यमबुद्धिवर्गने ईर्यासमिति आदि पांच समितिनुं स्वरूप तथा त्रिकोटिये शुद्ध आदि, मध्य अने अंतमां कल्याणकारी एवुं साधु संबंधी सुंदर वर्तननुं निश्चयेन कथन करवुं.

"मध्यमवर्गनी योग्यता"

स्पष्टीकरण—पहेला प्रकरणना बीजा अने त्रीजा श्लोकना विवरणमां आपणे तपासी गया के—मध्यमबुद्धिवर्ग बालवर्ग करतां बुद्धिमां तथा आचारमां चडतो होय छे, अर्थात् तेओ विचारशील होवाथी बाह्य आडंबरना खाली भभकामात्रथी खुशी थता नथी किन्तु अंदरना शुद्ध आचारोनी परीक्षा करवा माटे पोतानी बुद्धिने दोडावे छे. अतएव आ लोकोनी पासे आधिक्येन धर्ममां दृढ करवा माटे उपदेशके प्रधान एवा साधु आचारनुं स्वरूप जरूर प्रतिपादन करवुं. निदान के—आगळ जणावी गयेल आचारनुं प्रतिपादन आ लोको पासे करवुं ते निरर्थक समजवुं. पांचमी या छट्ठी चोपडीना अभ्यासकने पहेली चोपडीनो पाठ शीखवाडवा जेवुं हास्यकारी ज गणाय, कारण के उपर दर्शित साधुओना बाह्य आचारो दुष्कर अने दुर्वाह्य छतां अमुक प्रकारना लोभ या मोहना कारणथी विनयरत्न आदिनी माफक घणा लोको सेवन करे छे. एवं खाली आत्मशुद्धि विना आवा प्रखर बाह्य आचारो आत्माए—" अणंताइं दव्वलिंगाइं " ए वचनथी अनंती

वार सेव्या छे, परंतु तेथी आत्मकल्याण जराये थयुं नहीं. आवा आवा अनेक विचारो आ मध्यमबुद्धिवर्ग विचारे छे.

" उपदेश "

अतः जे आचारोनी खरी दुष्करता अने उत्तमता होय तेवा अभ्यंतर शुद्ध आचारोनुं स्वरूपदर्शन उपदेशके आ लोकोने कराववुं उचित गणाय. ग्रंथकर्ताना वचनमां ' ईर्यासमिति-प्रभृति ' ईर्यासमिति विगेरे साधुओनुं सत्य स्वरूप कहेवुं. ते आ प्रमाणे-प्रथम तो साधुए स्वात्मशुद्धि माटे अने बाह्य आचारोनी सार्थकता वदल आठ प्रवचनमातानुं पालन करवुं जोइए. १-ईर्यासमिति, २-भाषासमिति, ३-एषणा-समिति, ४-आदानभंडमत्तनिक्षेपणासमिति, ५-पारिष्ठापनिकासमिति, ६-मनोगुप्ति, ७-वचनगुप्ति, ८-कायगुप्ति. आमां पांच समिति अने त्रण गुप्ति छे, उभय मली आठ प्रवचनमाता कही छे.

" प्रवचनमाता "

प्रवचन एटले जैनसिद्धान्त तेमां जे माता तुल्य माता ते प्रवचनमाता, अर्थात् जेम माता पुत्रनुं सर्वावस्थामां हित ज चाहे अने करे छे तेम आ माता पण तेनी सेवा करनार अने तेनी आज्ञामां वर्तनार साधुरूप पोताना पुत्रनुं एकान्त कल्याण ज करे छे. वल्के लौकिक माता कदापि विरोधी पण थइ जाय छे अथवा आ लोकमां पूरतुं हित पण नथी करती त्यां पर-लोकना हितनी वात ज क्यां रही ? ज्यारे आ लोकोत्तरमाता

तो स्वप्नमां पण पोताना पुत्रनुं अहित नथी करती–विरोधी नथी बनती. आ लोकमां पूर्ण कल्याण करवा साथे परलोकमां नितान्त कल्याण ज करे छे एटले आ माताने सर्वतोश्रेष्ठ केम न कहेवी ? अवश्य उत्तमोत्तम माता ज कहेवाय.

"समितियो"

अहीं समितिनुं स्वरूप शास्त्रमां आ प्रमाणे दर्शाव्युं छे–"प्रविचाराप्रविचारात्मिका समितिः" "जे क्रियामां कर्मबंधक खोटी प्रवृत्तिनो आत्मा रोध करे अने कर्मक्षयकारक प्रवृत्ति करे ते समिति" हिंसा, झूठ आदि चेष्टाओथी नितान्त कर्मबंध ज थाय छे, माटे तेमांथी देह आदिने रोकी कर्म-निर्जरानी हेतुभूत समितिरूप क्रियामां आत्माने स्थापवो. एटले मार्गमां गमन करवा पूर्वे बीजी तरफना ध्यान, विचारो अने वार्तालाप आदिने रोकी केवल साडात्रण हाथ जमीनमां दृष्टि राखी जीवोनो बचाव करी गमन करवुं ते ईर्यासमिति १, अन्यनी निंदा के दुःख न उपजे, पदार्थनुं यथार्थ स्वरूप कथन कराय, नितान्त अन्यनुं हित थाय अने परिमित शब्दो जेमां होय जेथी खुल्ली रीते अर्थबोध थाय ए रीते भाषानो उच्चार करवो ते भाषासमिति २, आधाकर्मी आदि ४२ दोषो न लाग्या होय एवा आहारादि ग्रहण करवा ते एषणासमिति ३, वस्त्र–पात्र आदि कांइ पण चीज प्रथम दृष्टिथी बराबर निहाळी, रजोहरणथी प्रमार्जी बाद लेवी अथवा भूमि पर मूकवी ते आदानभंडमत्तनिक्षेपणसमिति ४, मळ, मूत्र, श्लेष्म

के अन्य पदार्थो निर्दोष, निर्जीव स्थानमां परठववा—छोडी देवा एनुं नाम पारिस्थापनिकासमिति ५—आ पांच क्रियाओ आत्माने अशुद्ध व्यवहारमांथी निकाळी (वहार लावी) शुद्ध व्यवहारमां प्रवर्तावे छे. अतएव अशुद्धमांथी उद्धृत थइ शुद्धमां प्रवर्तवुं तद्रूप आ पांच समितियो कही.

" गुप्ति "

गुप्तिनुं स्वरूप " अप्रविचारात्मिका गुप्तिः " अप्रविचार एटले निरोध तत्स्वरूप गुप्ति जाणवी. परमार्थ ए के—जेमां आत्मानी शुद्ध अथवा अशुद्ध उभय पैकी एकमां पण प्रवृत्ति न होय ते गुप्ति जाणवी. ज्यारे मन, वचन तथा काया आ त्रणे योगने दुष्ट कार्योमांथी संहरी उत्तम कार्योमां—आत्महितना कार्योमां—स्थापन कराय त्यारे ते समिति जाणवी, अने ज्यारे ए त्रणे योगनो दुष्ट के हितकारी कोइ पण व्यापार न होय किन्तु शान्त मौन होय त्यारे ते मनोगुप्ति १, वचनगुप्ति २, कायगुप्ति ३ जाणवी. एवं आ त्रणेनो वाच्यार्थ पण मननुं गोपन, वचननुं गोपन अने कायानुं गोपन ए ज अर्थबोध करे छे. टुंकमां मध्यमबुद्धिवर्ग पासे उपदेशके आ समिति—गुप्तिनुं स्वरूप बराबर दर्शाववुं, अने कथन करवुं के साधुओनो आ मुख्य आचार छे.

" हननादि त्रिकोटि "

फरी साधुओनुं चारित्र " त्रिकोटिपरिशुद्धं " राग,

द्वेष अने मोहे करीने शुद्ध होय, अर्थात् मुनिओने संसारना विविध सुंदर पदार्थोनो मोह न होय, स्वजन-परजनमां मोह के रागबंध न होय, निंदक के पूजकमां प्रेम या द्वेषभाव न होय. अरे! साधुओने स्वशरीर पर पण मोह नथी होतो तो अन्य पदार्थनो मोह क्यांथी होय? निदान के-साधुओ एवुं चारित्र-सुंदर वर्तन आचरे के जेमां आ राग, द्वेष व मोहने अवकाश न मले अथवा अनुक्रमे निर्मूल थइने चाल्या जाय. टीकाकार आ पदनो बीजो अर्थ दर्शावे छे—"तिस्रः कोटयः हननपचनक्रयणरूपाः कृतकारितानुमतिभेदेन श्रूयंते ताभिः परिशुद्धं". हनन, पचन, क्रयण ए त्रण कोटीने करवुं, कराववुं अने अनुमोदनवडे गुणवाथी नव भेदो थाय. आ नव भेदे शुद्ध साधुओनुं वर्तन होय, अर्थात् मुनियो कोइ जीवने हणे, हणावे अने हणताने सारो समजे नहीं, अग्नि आदिनो आरंभ करे, करावे ने करताने ठीक माने नहीं, कोइ पण चीज बजारथी मूल्यथी ले, लेवरावे ने लेताने सारो समजे नहीं. परमार्थ के-४२ दोष रहित जे आहारविधि मुनियो माटे आगल दर्शावी गया ते आ त्रण कोटीमां अंतर्गत थाय छे. जो आ त्रिकोटीशुद्ध वर्तन यथास्थित होय तो ज आ आहारविधि पण बराबर सुरक्षित थाय; अन्यथा आहारविधि पण सदोषमय जाणवी. एटले निर्दोष आहार इच्छक मुनिये अवलमां अवश्य आ त्रण कोटीनी शुद्धि करवी ए न्याय्य गणाय. ए ज वात शास्त्रोमां कही छे-"पिंडेसणाय सव्वा, संखित्तो असरइ नव-

सुक्कोडीसु। न हणइ १ किणइ २ न पयइ ३, कय कारवण अणुमईहिं नवहा " ॥१॥ " पिंडेसणा संबंधी सर्व विधि संक्षेपथी न हणवुं ३, न खरीदवुं ३, अने न रांधवुं ३ करवुं, कराववुं, अनुमोदवुं विगेरे ए नवकोटिमां समावेश थाय छे. "

" कषच्छेदताप त्रिकोटि "

एवं टीकाकार पुनः " त्रिकोटीपरिशुद्धं " नी टीका " कषच्छेदतापकोटित्रयपरिशुद्धं " जणावी स्पष्ट कहे छे के-संपूर्ण जैनागम आठ प्रवचनमातामां अंतर्हित होवाथी एटले जैनागम आठ प्रवचनमाताना आधारे ज जीवे छे, माटे विद्वानोए आ जैनागमनी पण त्रण कोटिथी कष, च्छेद अने तापद्वाराए परीक्षा करवी ए नितान्त न्याय्य गणाय. वाह्य-आभ्यंतर आचारने दर्शावनार एवा मूल स्थंभभूत प्रवचन-सिद्धान्तनी कसोटी कर्या विना आचारोनी कसोटी क्यांथी थाय ? अतएव अत्र टीकाकारे तेनी परीक्षा करवा " त्रिकोटिपरिशुद्धं" ए पदनो उपरोक्त अर्थ जणाव्यो छे एटलुं ज नहीं किन्तु अगाढपणे खुल्लो करे छे. निदान के-आगम एटले सर्वज्ञनुं वचन अने तेनी यथास्थित परीक्षा थवाथी तदुक्त आठ प्रवचनमातानी स्वतः परीक्षा थइ गइ, कारण के-सर्वज्ञवचनरूप प्रवचन आज्ञाथी ज साधुओ वर्तन-क्रियामात्र करे छे.

" कषशुद्धि "

कष, च्छेद अने तापनुं स्वरूप एतत् ग्रंथकर्त्ता " धर्म-

बिंदु " मां आ रीते जणावे छे, जे परीक्षकोने बहु उपयोगी तथा ध्यान राखवा योग्य छे. "विधिप्रतिषेधौ कष इति" विधि तथा प्रतिषेध ते कष. मोक्ष या स्वर्गप्राप्तिमां हेतुभूत जे कार्यो तेने दर्शावनार वाक्यो ते विधिवाक्यो, जेवां के- " आसं च छंदं च विगिं च धिरे " वीर पुरुषोए आशा तथा मोहनो त्याग करवो जोइए, "उदाहु वीरे अप्पमादो महामोहे " वीरप्रभु कहे छे के-महामोहथी अप्रमादी-सावधान रहो, " सव्वामगंधं परिण्णाय णिरामगंधो परिव्वए " (आचारांग) सर्व भावोने छोडी निर्मोही थइने विचरो. एवं दान देवुं, तप करवो, पांच समिति तथा त्रण गुप्तिए शुद्ध चारित्र पालवुं-आ सर्व विधिवाक्यो जाणवा. फरी जे करवाथी पापबंध थाय, आत्मानुं अहित थाय तेवा कार्योना निषेधदर्शक जे वाक्यो ते प्रतिषेध वाक्यो जाणवा, जेवां के-" रागदोसकसाएहिं इंदिएहिं य पंचहिं । दुहा वा मोहणिज्जेण अट्टा संसारिणो जिया " राग-द्वेष अने कषायथी, पांच इन्द्रियोथी तथा बे प्रकारना मोहथी संसारी जंतुओ दुःखी थाय छे, अतएव तेनो त्याग करवो जोइये. पुनः " आत्मवत्सर्वभूतेषु, सुखदुःखे प्रियाप्रिये । चिंतयन्नात्मनोऽनिष्टां, हिंसामन्यत्र माचरे" ॥१॥ जेम स्वात्माने सुख तथा दुःख प्रिय अने अप्रिय लागे छे तेम सर्वात्माओ संबंधे समजी पोताना आत्माने अनिष्ट एवी हिंसा अन्य आत्मानी विद्वाने न करवी, तेमज झूठ न

बोलवुं, चोरी, मैथुन न करवा विगेरे आ सर्व प्रतिषेध वाक्यो जाणवा. आ रीतना विधि, निषेध वाक्यो जेमां होय ते कषशुद्ध जाणवा. सोनानी परीक्षा करवा माटे प्रथम तेनी कसोटी पर आंक आपी शुद्धि कराय छे, एवं जे धर्मशास्त्रमां आ उभय वाक्यो कर्तव्यनो उपदेश अने अकर्तव्यनो त्याग उपदेशता होय ते ज शास्त्र कषशुद्ध जाणवुं; परंतु जे शास्त्र हिंसा आदि पाप-कर्मना त्यागना बदले कर्तव्यतया कथन करे ते शास्त्र आ कष-शुद्धिमां आवी शके नहीं. अतएव 'यज्ञमां हिंसा कर्तव्य छे' एम स्पष्ट प्रतिपादन करनार वेदादि अने विषयकषाय आदिनी पुष्टि करनार पुराणादि शास्त्रो कषशुद्ध क्यांथी संभवे ?

"छेदशुद्धि"

कषशुद्धि बाद छेद तपासवा जोइए. "तत्संभवपालनाचेष्टोक्तिश्छेद इति" ज्यां विधि, निषेधनी संभावना, पालन तथा वर्तनमां मूकवानुं जणाव्युं होय ते छेद कह्यो छे. घणीवार सुवर्ण कसोटी पर बराबर शुद्ध देखाय छे छतां पाछलथी तेमां भेद नीकळी आवे छे, माटे परीक्षको सोनाने कापीने तेना अंदरना भागनी परीक्षा करवा चूकता नथी. ए ज रीते शास्त्रोमां विधि, निषेध उभय वाक्यो दर्शाव्या होय; किन्तु ते प्रमाणे करी शकाय के नहीं, तेनुं पालन करवुं जोइए विगेरे विषयो गुप्त राख्या होय अगर न जणाव्या होय या तो करवानुं अन्यथा प्रकारे दर्शाव्युं होय एटले उपदेश अने

वर्तन बन्ने जूदा जूदा दर्शाव्या होय तो ते शास्त्र कषशुद्ध न होवाथी स्वीकार्य नथी; बल्के सर्वथा हेय जाणवुं. अतः कष-शुद्धि पछी शास्त्रना आंतरभागनी परीक्षा करवा छेदशुद्धि-द्वाराए मुमुक्षुओए अवश्यमेव चिकित्सा करवी. जे शास्त्रमां विधेयवाक्यो अने निषेधवाक्यो कह्या पछी तेनी पुष्टि माटे विविध प्रकारनी बाह्य पवित्र क्रियाओ कथन करी होय, तेने पाळवाना विविध प्रकारो दर्शाव्या होय, अथवा जेथी विधेयवाक्यो अने निषेधकवचनोने जोर मळे तेवा विषयो जेमां अच्छी रीते वर्णाव्या होय तो ते शास्त्र छेदशुद्ध कही शकाय. जेमके–विधेयमार्गमां दान, तप, स्वाध्याय विगेरे कह्या छे, तो तेना पोषण माटे जैन सिद्धान्तमां दाननुं स्वरूप, भेदो अने फल दर्शावी तथाप्रकारे करवानो उपदेश आपी तेना पर अनेक दृष्टांतो कही पोषण कर्युं छे. एवं तपनुं स्वरूप, द्वादश भेदो, तेनुं फल अने तेने आचरणमां मूकवानो उपदेश आपी खुद महावीर भगवानना दृष्टांतथी पुष्टि करी छे. स्वा-ध्याय विगेरे माटे पण तथाप्रकारे ज प्रगाढरीत्या उपदेश कर्यो छे; एटलुं ज नहीं किन्तु साधु अने गृहस्थना व्रतो, क्रि-याओ, अतिचार, अनाचार दर्शावी विधिवादने घणा जोरथी पोष्यो छे. ए ज रीते निषेधक वाक्योथी मोहत्याग, कषायत्याग, हिंसा, झूठ आदिनो निषेध करी आ पापोना त्याग माटे भिन्न भिन्न क्रियापंथो दर्शावी पालनता–कर्तव्यता पर बहु बहु जोर आपी अनेक दृष्टांतो कह्या छे. अतः आ रीतना जे शास्त्रो ते

कष तथा छेदशुद्ध जाणवा; ज्यारे अन्य शास्त्रोमां तेवी प्रगाढ क्रियाओ दर्शावी नथी.

" तापशुद्धि "

कष तथा छेदे करीने बन्ने रीते सुवर्ण सिद्ध थयुं होय तो पण विशेष शंकाने दूर करवा तेना मिश्रभागनी परीक्षा करवा फरी बुद्धिमान सराफो तेने ताप आपी—अग्निमां तपावी अच्छी रीते निहाळे छे. एटले जो सुवर्ण अग्निमां नाख्या पछी ते पोतानो असल रंग तथा स्व—स्वरूपनो त्याग न करे तो ते खरुं कंचन कहेवाय, अन्यथा ते सुवर्णपणाना मूल्यने लायक न गणाय; कारण के साचुं सोनुं सर्वदा एक ज रूपमां रहे छे. तथाप्रकारे शास्त्र पण कष, छेद उभय रीते शुद्ध नीकल्या पछी तेनां आंतरतत्त्वनी यथार्थ परीक्षा करवा तेनी तापद्वाराए शुद्धि निहाळवी ए उचित ज गणाय. तापनुं स्वरूप आ रीते जाणवुं " उभयनिबंधनभाववादस्ताप इति " उपर जणावेल कष अने छेद उभयना आधारभूत अने परिणामी कारणरूप जीवादि पदार्थोनी यथास्थित जे व्याख्या तेनुं नाम ताप, कष तथा छेदनी साफल्यता तापनी शुद्धि पर अवलंबी रहे छे, एटले तापनी सफलतामां कष-छेदनी सफलता समजवी. एवं शास्त्रमां विधि, निषेधवाक्यो दर्शाव्या होय, विविध बाह्य क्रियाओ पण कही होय तदपि आ सर्वना आधारभूत आत्मा विगेरे तत्त्वनुं स्वरूप एकदेशीय अथवा सदोष प्रकाश्युं होय तो उपरोक्त बन्ने फलशून्य समजवा.

परमार्थ ए के—सर्व बाह्य, आभ्यंतर व्यवहारनो मूल आधार जीव, कर्म, जगत् विगेरे पदार्थोनी शुद्ध—निर्दोष मान्यता पर रह्यो छे. अतएव आ पदार्थो अनादि अकर्तृक अने नित्यानित्यत्वरूप धर्मवान् ए रीते ज्यां प्ररूप्या होय अर्थात् आत्मा, कर्म, जगत् आदि पदार्थो द्रव्यास्तिक नयनी मान्यतामां नित्य अने पर्यायास्तिक नयनी मान्यतामां अनित्य, एवं उत्पाद, व्यय अने स्थितिरूप धर्मवान् छे—आवुं सुंदर अबाध्य स्वरूप ज्यां वर्णव्युं होय ते शास्त्रने तापशुद्ध विद्वानो समजे छे. आत्मा आदि पदार्थो कंचनकुंभना दृष्टांते नित्यानित्य धर्मवान् छे ए वात बराबर गळे उतरे तेवी छे. कंचनकुंभ फुटी जवाथी तेना कुंडल के कडा विगेरे बनाव्या तदपि कंचन तो कायम ज रह्युं; मात्र कुंभ आकारनो नाश अने कुंडलादि आकारनी उत्पत्ति थइ. एवं आत्मा पण अमुक गति अपेक्षया नाश अने उत्पन्न थाय छे ज्यारे आत्मस्वरूपेण सर्वत्र विद्यमान ज रहे छे. आ स्थितिमां प्रथम कहेल विधि, निषेधवाक्योनी साफल्यता तथा विविध क्रियाकांडोनी साफल्यता अच्छी रीते बनवा संभव छे, परंतु एकान्त नित्य अथवा एकान्त अनित्य आत्मवादमां सर्व क्रियाओ, उपदेशो अर्थशून्य—अरे ! छार पर लिंपण जेवा समजवा; माटे विद्वानो तापशुद्धि, कषशुद्धि अने छेदशुद्धि कर्या पछी ज समुचित रीते करे छे. बस कष, छेद अने तापरूप त्रिकोटिये शुद्ध जे शास्त्र ते ज परिशुद्ध जाणवुं. अतः तदुक्त आज्ञाओ ज हितार्थीने शिरसावंद्य गणाय.

"उपसंहार"

अहीं आ त्रिकोटिशुद्ध सर्वज्ञशास्त्र सिवाय अन्य क शास्त्र होय ? ए रीते त्रणे परीक्षामां सर्वज्ञ भगवंत महावीरनुं वचन अबाधित सिद्ध थवाथी तदुक्त आठ प्रवचनमाता पण नितान्त शुद्ध, अबाध्य जाणवी; माटे साधुए ए रीतनी निर्दोष आठ प्रवचनमाता अहोनिश अवश्य पालन करवी, ए प्रमाणे उपदेशके मध्यमबुद्धि लोकोने उपदेश आपवो. वधुमां उपदेशके—"अमीषामान्तरदर्शनमिति" आ कष, छेद, तापमां मुख्य कोण कोण ? समर्थ, असमर्थ कोण ? परस्पर भिन्नता केटली ? विगेरे जरुर समजाववुं.

"त्रिधा हितकारी"

फरी मुनियोनो आचार उपदेशके "आद्यंतमध्ययो-र्हितदं" आदि, मध्य अने अन्तमां हितदायी एवो आ आचार छे एम जणाववुं. एटले ईर्यासमिति विगेरे साधुओनो आचार आदि, मध्य अने अन्तमां हेतु, स्वरूप तथा अनुबंधे करी सर्वथा परमपवित्र निर्दोष दर्शाव्यो छे. प्रथम तो साधुने जीवोनी दया-रक्षा अर्थे अने दुष्ट कार्यो बंध करवा माटे ईर्या-समिति आदि पालन करवानुं जणाव्युं छे, माटे आ आचार हेतुरूपेण निर्दोष जाणवो. फर ईर्यासमिति आदि स्वयं जीवोनी रक्षा-दयारूप होवाथी स्वरूपेण निर्मल जाणवो. ईर्यासमिति आदि समितिमां अहोनिश सावधान मुनिने कदापि

अशुभ–अपवित्र विकल्पो उद्भवता नथी, बल्के सर्वदा सद्विचारो ज बन्या रहे छे. अतएव आ समितियो कर्मनिर्जरा अथवा शुभकर्मनो ज बंध करी भविष्यमां सुंदर फल अर्पण करे छे. माटे आ मुनि–आचाररूप अष्ट प्रवचनमाता अनुबंधरूपे पण शोभन कल्याणावह न जाणवो. परमार्थ ए के–हेतु, स्वरूप अने अनुबंधरूपे त्रिधा हितकारी एवो मुनियोनो आचार जाणवो.

" बीजी व्याख्या "

अथवा टीकाकार " आद्यंत० " आ पदनी टीका आ प्रमाणे करे छे—" वयसो जीवितव्यस्य वा हितदनुपकारि " उपरोक्त साधु आचार जीवननी प्रत्येक अवस्थामां हितकारी–उपकारी थाय तेवो छे. एटले प्रथम दर्शावेल मुनि आचाररूप अमृतपान बाल, युवान के वृद्ध कोइ पण वयमां देवामां आवे तथापि सर्व वयमां तुल्यरूपे उपकारी, अजर–अमर फल प्रगाढरीत्या अर्पनार बने छे. पुनः प्रकारांतरे टीकाकार कहे छे के–" वयनी आदिमां सूत्रादिनो अभ्यास, मध्यवयमां अर्थश्रवण अने अंत्यावस्थामां धर्मध्यानादि द्वाराए त्रणे वयमां आ मुनि–आचार हितकारी थाय छे " अर्थात् चारित्र ने जीवननी त्रण अवस्था पैकी कोइ पण वयमां स्वीकाराय अने तेथी जे जे वयमां चारित्र स्वीकार्युं होय ते ते वयमां तत् तत् वय योग्य कर्मद्वाराए स्वीकारनार आत्मा पोतानुं अवश्य कल्याण करी शके छे. निदान के–अमुक ज

वयमां चारित्र स्वीकारी शकाय एवुं अमुक ज वयमां चारित्र पोतानुं फल अर्पण करे छे तेवो एकान्त नियम अहीं नथी. अतएव प्रथम १२ वर्षमां सूत्राभ्यास, पछी १२ वर्षमां अर्थाभ्यास अने पश्चात् १२ वर्षपर्यंत विहार करी शिष्यादि निष्पत्ति एटले आचार्यपद योग्य थाय आम जे विशेषावश्यकमां दर्शाव्युं छे, ते पण जेने प्रथम वयमां चारित्र स्वीकार्युं होय अने आयुष्य दीर्घ तथा बुद्धि तीक्ष्ण होय तेने माटे, अथवा वय गमे ते होय छतां क्षयोपशमादि तीव्र होय तेने माटे आ नियम सुसंबद्धरीत्या पाठकोए घटाववो-जाणवो. आथी उपरोक्त कथनमां पण कांइ बाध नहीं आवे.

" उपाध्यायजीनुं कथन "

उपाध्यायजी महाराज " आद्यंत० " ए पदनी टीकामां साधु आचार माटे " आवीलए निप्पीलए इत्यागमात्तदविरोधि अल्पमध्यमविकृष्टतपोविशेषरूपैर्वा हितदं भवति " मलिन कपडुं सामान्य मर्दन, विशेष मर्दन करवाथी सामान्य, विशेष रीते विशुद्ध बने छे, एवं कर्मावृत्त आत्मा पण अल्प, मध्यम अने उत्कृष्ट तपस्या करवाथी विशुद्ध विशुद्धतर थाय छे. परमार्थ ए छे के-संयम स्वीकार्या पछी जेम मुनि-आचारमां आठ प्रवचनमातानुं पालन करवानुं कह्युं तेम आत्मानी विशुद्धि माटे जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट तप पण शक्ति अनुसारे करवो उचित छे. एटले ए रीते तप अपेक्षाए पण मुनि-आचार आदि, मध्य अने अन्तमां सर्वथा

कल्याणकर्त्ता बने छे. सारांश के-दरेक प्रकारनी जुदी जुदी व्याख्यानो सार एटलो ज के मुनि-आचार मातृवत् एकान्त हितकारी जाणवो.

" समाप्ति "

संक्षेपमां-अहीं पर्यंत दर्शावेल मुनि-आचारनी व्याख्या मध्यमबुद्धिवर्ग पासे उपदेशके करवी, केमके ते लोको वधु रीते मुनियोना उपरोक्त आचारो तरफ अधिक ख्याल राखे छे. एटले आ आचारो श्रवण करी धर्मश्रद्धामां तेओ वधु मक्कम थाय त्यारपछी तेओने आगमतत्त्वनुं स्वरूप समजावी बुध योग्य अवस्थामां आरूढ थाय तेम आचार्ये करवुं शास्त्रीय गणाय. निदान के-मध्यमवर्गनी कोटीमां ज रहे ते कांइ उपदेशनुं फल पर्याप्त न गणाय.

उपर कहेला मुनि आचार माटे ज वधु खुलासो करतां ग्रंथकार आठ प्रवचनमातानुं पालन करवानो स्पष्ट उपदेश दर्शावे छे—

अष्टौ साधुभिरनिशं मातर,
इव मातरः प्रवचनस्य ।
नियमेन न मोक्तव्याः,
परमं कल्याणमिच्छद्भिः ॥ २-८ ॥

मूलार्थ—परम-उपमातीत कल्याण-सुखना इच्छक एवा

मुनियोए हितवत्सलमातानी तुल्य अष्ट प्रवचनमातानी नित्य सेवा करवी; निश्चयतया कदापि तेनो पक्ष छोडवो नहीं.

" तीर्थभूतमाता "

स्पष्टीकरण—आ आर्यामां आचार्यश्री आठ प्रवचनमातानी सेवा करवानो उपदेश जणावे छे. आठ प्रवचनमातानुं स्वरूप आगलनी आर्याना विवरणमां विस्तारथी दर्शावी गया. आ आठ प्रवचनमाताने महर्षियो मातानी उपमा आपी तेनो मातृत्वपणे निर्देश करे छे. उपकारज्ञ जनो मातानी सेवा एक क्षण पण विसरता नथी, कारण के माता जन्मदातृ, पालनकर्ता अने हितकर्तृ होवाथी अतुलित–अप्रतिकार्य–अनन्य उपकारिणी शास्त्रोमां कही छे. अतएव उत्तमजनो तेनी सेवा करवामां ज पोतानुं सुख, यश, प्रतिष्ठा, इतिकर्तव्यता समजे छे. एटले "आतीर्थमिवोत्तमानाम्" "तीर्थनी माफक यावत्‌जीवन भक्तिपूर्वक आराध्य मानी उत्तम पुरुषो मातानी सेवा करे." ए उक्तिने चरितार्थ करे छे. निदान के–माता माटे भक्तिथी पोताना प्राणो समर्पीने पण जींदगीनी अंतिम क्षण पर्यंत जेओ सेवा करे ते ज उत्तम पुरुष जाणवो.

" प्रवचनमातृत्व–तत्सेवा "

अहीं लौकिक आराध्योमां माता जेम उत्कृष्ट आराध्य मानी छे, परंतु तेनी समान अन्यमां तेवा गुणो न होवाथी अन्यने तथाप्रकारे आराध्य मानेल नथी. एवं लोकोत्तर क्रियातत्त्वमां

आठ प्रवचनमाता मातृवत् गुणधारिका होवाथी महर्षियो तेने माता कही संपूर्ण आराध्यतया उपदेशे छे, अर्थात् जन्मदातृत्व, पालनकर्तृत्व तथा शिक्षादातृत्व गुणो तेमां पण छे. प्रवचन-सिद्धान्त तेने जन्म आपनार, ईर्यासमिति आदिमां उपयुक्त मुनि ज सिद्धान्त-तत्त्वने पामी शके. सिद्धान्तनो अभ्यास, स्वाध्याय विगेरेनो अधिकार आठ प्रवचनमातामां अनुपयुक्त मुनिने निषेध्यो छे. निदान के-सिद्धान्तना अभ्यासथी जे कल्याण सधावुं जोइए ते कल्याण अनुपयुक्त मुनि सिद्धान्तनो अभ्यास करवा छतां पण साधवा असमर्थ बने छे. अतएव आ माताने प्रवचनजन्मदाता महर्षियोए कही. एवं उत्तरकालमां प्राप्त सिद्धान्तज्ञान अने सद्-वर्तन तेनुं पालन तथा पोषण अधिकाधिक आ माता ज करे छे अने क्रमशः शिक्षाओ अर्पी उत्तरोत्तर उपाध्याय, आचार्य आदि पदोना अधिकारो पर लइ जइ उच्च स्थाने आत्माने आ माता ज बीराजमान करे छे. परामर्श एटलो ज के-आ माता पोताना पुत्रने दुःख-क्लेशोथी बचावी ले छे तथा अपमार्गथी सर्वदा दूर ज राखे छे, माटे उपकारज्ञ पुत्रोनुं ए प्रधान कर्त्तव्य छे के मातानो यत्किंचित पण अनादर न करवो जोइये, तो दुःख के क्लेशनी तो वात ज क्यां रही ? फरी माताना क्लेशथी पुत्रने क्लेश अने माताना नाशथी पुत्रनो पण परिणामे नाश थाय छे. एवं ईर्यासमिति आदिनो क्लेश उप-जाववाथी अथवा नाश करवाथी प्रवचन आज्ञारूप पुत्रनो पण नाश ज थाय, माटे उत्कृष्ट कल्याण इप्सु (इच्छनारा) मुनियोए आ

मातानी प्रतिक्षणे सेवा करवी, किन्तु एक क्षण पण तेने विसरवी न जोइये; कारण के आ मातानी सेवा करवाथी परमार्थतया सर्वज्ञनी बराबर सेवा करी गणाय. अन्यथा प्रभु आज्ञानो लोप कर्यो मानवो एम भगवंत पोकारी पोकारीने जणावे छे.

ए रीते 'मध्यमबुद्धि' ने उपदेश आप्या पछी, अन्तमां आ प्रमाणे उपदेश जरुर करवो—

एतत्सचिवस्य सदा साधो-
र्नियमान्न भवभयं भवति ।
भवति च हितमत्यंतं,
फलदं विधिनाऽऽगमग्रहणं ॥ २-९ ॥

मूलार्थ—पूर्वोक्त आठे प्रवचनमाता सहित नित्य वर्तनार मुनिने निश्चयथी संसारनो भय होतो नथी अर्थात् संसारनो नाश थाय छे, एवं भविष्यमां पण अतिशे आत्मानुं हित-कल्याण थाय छे ने विधिपूर्वक आगमज्ञान पमाडवारूप फल अर्पण करे छे.

"प्रवचनमातानी सेवानुं सर्वोत्तम फल"

स्पष्टीकरण—पुण्यकामना अर्थे उत्तम जनो कदापि माताने अलग करता नथी, कारण के तेना वर्तनमां ज पोतानुं श्रेयः तेओ समजे छे, एटले तेओने अपयश आदिनो भय उपजतो नथी. एवं अहीं पण दृष्टांत समन्वय करता आचार्यश्री संक्षेपमां उपसंहार करी जणावे छे के-जे मुनि आ आठ प्रवचनमातानी

आज्ञानो लोप करता नथी, कोइ पण क्षणमां आ मातानी सेवा विसरता नथी, प्रतिक्षणे "जयं चरे जयं चिट्ठे०" "जयणाथी चालवुं अने जयणाथी बेसवुं" ए महर्षिपूज्य आज्ञाने शिरोधार्य करी, ईर्यासमिति आदिमां सोपयुक्त रही अहोनिश वर्तन आचरे छे, तेओने भवसंसारनो भय रहेतो नथी–अर्थात् आ मुनियोने चतुर्गतिना दुःखनो लवलेश जेटलो डर होतो नथी कारण के–तेओनी शीघ्र मुक्ति ज थाय छे. ठीक ज छे के–जेओ अन्य प्राणीने स्वात्मवत् देखी एक रोममात्रमां पण पीडा न थाय अने आत्मा अशुभ पापकर्मनो बंधक न बने, आत्मा एक रोममां पण अशुभ विचार के प्रवृत्ति न करे तेवी अलौकिक उदार–पवित्रतम अप्रमत्तभावना धारे–आचरे छे, तेओनी शीघ्र मुक्ति ज थाय. अतएव दशवैकालिकमां महर्षिपूज्य शय्यंभवसूरि महाराजे कह्युं ते उचित ज छे.–" सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइं पासओ। पिहियासवस्स दंतस्स, पावं कम्मं न बंधइ " ॥ १ ॥ " कोई पण जीवने दुःख न उपजावतो अने सर्वेने स्वात्मवत् देखनार तथा आश्रवोने रोकनार अने इंद्रियोनो निग्रह करनार एवो मुनि फरीने पापकर्मने बांधतो नथी " वधुमां अहीं मूलकर्ता भार दइने कहे छे के–' नियमात् ' निश्चयथी भवनो भय रहेतो नथी, एटले नितान्त–अशंसयेन भवनो नाश थाय छे.

" उपसंहार "

फरी भविष्यमां आ मुनिनुं अत्यंत हित–उत्कृष्ट कल्याण ज थाय छे. परमार्थ ए के–सोपयुक्त मुनिने

आ जन्म के अपर जन्ममां अनिष्ट अपायो आवता ज नथी. एवं ईर्यादिसमितिवान् होवाथी विनय, वैयावच्च, भक्ति, सरलता, नम्रता आदि गुणो जरुर होय, एटले आचार्य, उपाध्याय आदिनी समीपे सूत्रवाचनादि मंडलीमां बेठवानो पूर्ण अधिकार आ मुनिने यथेष्टपणे प्राप्त थाय छे, जेथी सिद्धान्तज्ञान सुखपूर्वक उपलब्ध थाय; माटे आवा मुनिने आगमज्ञाननी प्राप्तिद्वारा पण आठ प्रवचनमाता फलदातृ अवश्यमेव बने छे. निष्कर्ष एटलो के—ईर्यासमिति आदिमां सावधान मुनिने ज आ सूत्रादिनी वाचनामंडलीमां बेसवानो अधिकार कह्यो छे. अहीं आचार्यश्रीए 'मध्यबुद्धि' जन योग्य उपदेशविधिनो उपसंहार करी अन्तमां आठ प्रवचनमातानुं बराबर पालन करवानुं पर्याप्त फलनो निर्देश ए रीते कर्यो. परमार्थ के–उपदेशके ए रीते 'मध्यमवर्ग' पासे आठ प्रवचनमातानुं अवसान फल पण अवश्य जणाववुं."

गत आर्या श्लोकमां आठ प्रवचनमाता–पालक मुनिने आगमज्ञाननो अधिकारी कह्यो. आगमज्ञान गुरुमहाराजना हृदयमां ज विराजित होय छे, माटे 'मध्यमवर्ग' ने आ उपदेश पण साथे साथे उपदेशके करवो—

गुरुपारतंत्र्यमेव च,
तद्बहुमानात्सदाशयानुगतं ॥
परमगुरुप्राप्तेरिह बीजं,
तस्माच्च मोक्ष इति ॥ २–१० ॥

मूलार्थ—गुरु पर आंतरनी भक्तिपूर्वक तेमना आशयने अनुलक्षी ते प्रमाणे वर्तन करवुं–तेओनी आज्ञाने आधीन ज रहेवुं ए ज परमेश्वर प्राप्तिनुं मुख्य बीज छे अने तेनाथी ज मुख्यतया मोक्षप्राप्ति आत्माने कही छे.

" गुर्वाधीनता "

स्पष्टीकरण—अहीं प्रवचनज्ञान प्राप्त करवा मुनिये प्रथम तो गुर्वाधीन रहेवुं जोइये, ए तत्त्व आचार्यश्री दर्शावे छे. अर्थात्–जेने आगमज्ञान, तेनुं मौलिक तत्त्व प्राप्त करवुं होय तेणे अवश्यमां तो तेवा ज्ञानवान् गुर्वादिकोनी सर्वस्वनो भोग आपीने पण सेवा करवी जोइए. टीकाकार कहे छे के–आ गुरुदेव सिवाय मारो संसारभय कोइ दूर करनार नथी–ए ज तरणतारण एक जहाजरूप छे, ए भावना हृदयमां अंकित करी–रोमेरोममां प्रतिबिंबित करी तेमनी सेवा करवी एतावन्-मात्र नहीं किन्तु गुरु चित्त परीखी (जाणी) तेमना आशयनुं अनु-सरण करवुं, चेष्टा के क्रिया विशेषथी तेमना हृदयनो भाव जाणी लेवो अने ते प्रमाणे वर्तन करवुं. तेओना पर सरल आशयथी अद्भूत भक्ति धारण करवी, बहुमान, विनय, सेवा, आसन अर्पण करवुं, उभा थवुं, सामे जवुं, पादप्रक्षालन, वैयावच्च विगेरे भक्ति मनसा, वाचा अने कायाथी करवी. टुंकमां गुरु आज्ञाथी ज सर्व वर्तन करवुं, किन्तु मोक्षार्थीए स्वतंत्र के स्वे-च्छाचारी वर्तन न करवुं जोइये. " आणाए चिय चरणं तब्भंगे जाण किं न भग्गंति । आणं च अइक्कंतो क-

स्साएसा कुणइ सेसं " ॥ १ ॥ " भगवाने आज्ञा आराधनमां ज चारित्र कह्युं छे. आज्ञानो लोप थवा पछी शुं बाकी रहे एटले चारित्र क्यांथी रहे ? जेणे गुरु आज्ञाने अतिक्रमी ते हवे कोनी आज्ञा आराधे ? अर्थात् ते कोइनी पण आज्ञा माने नहीं " फरी सर्व तत्त्वज्ञान, चारित्रनुं खास रहस्य, आगम पेटीनी चावी, विद्या अने मंत्रोनी सिध्धि, धर्मनुं गूढ तत्त्व-ए सर्व गुरु आधीन होवाथी मोक्षार्थीए खास करीने गुर्वाधीन ज पोतानुं जीवन व्यतीत करवुं, एटले गुरुपादसेवामां ज जीवन चरितार्थ करवुं जेथी सर्व सिद्धियोपूर्वक आगमनुं गूढ रहस्य त्यांथी बराबर उपलब्ध थाय अने परिणामे कल्याण प्राप्ति पण थइ शके. " णाणस्स होइ भागी, थिरयरो दंसणे चरित्ते य । धन्ना आवकहाए, गुरुकुलवासं न मुंचंति " ॥ १ ॥ एवं आ अनंतसंसारना दुःखनो नाश करनार अने मोक्षदर्शक गुरु सिवाय आ भूतलमां कोई नथी, एवुं धारी तेओने आज्ञाधीन रहेवाथी तेओनी परमकृपामय प्रसन्नता प्राप्त थाय छे. गुरु प्रसन्नता पासे जगत्ना तमाम पदार्थो तुच्छ जेवा भासे छे. गुरुकृपा ए ज परम प्राप्तव्य तत्त्व छे. आ तत्त्व ज परमगुरु-जे परमेश्वर तेनी प्राप्तिनुं मुख्य बीज छे. एटले गुरुकृपा फरया पछी परमेश्वरनी कृपा विनाविलंबे हाथमां आवे छे. परमार्थ के-जेओ गुरु आज्ञा आराधक होय तेओ अवश्यमेव प्रभु आज्ञानुं पालन करे छे अने जेणे गुरु आज्ञा लोपी तेणे प्रभु आज्ञानुं पण अवश्य खुन कर्युं जाणवुं, माटे अहीं गुरु पराधीनताने ईश्वरप्राप्तिनुं मुख्य अंग कह्युं छे.

निदान के–छेवटे तेनाथी ज तेने मोक्षप्राप्ति थाय छे. निष्कर्ष एटलो ज के–मुनिये गुरु आज्ञाधीन रहेवुं, गुरुकुमां वास करवो, तेनाथी ज परमेश्वरनी प्राप्ति अने छेवटे मोक्ष थाय छे. ए रीते उपदेशके 'मध्यमबुद्धि' वर्गने उपदेश आपवो.

आ रीते गुर्वाधीनता जणावी छेवटमां 'मध्यम०' योग्य उपदेशनो उपसंहार दर्शावी अडधी आर्याथी आचार्यश्री 'बुध' योग्य उपदेशविधिनी प्रस्तावनानो उल्लेख करे छे–

इत्यादि साधुवृत्तं मध्यमबुद्धेः
सदा समाख्येयम् ॥
आगमतत्त्वं तु परं बुधस्य,
भावप्रधानं तु ॥ २–११ ॥

मूलार्थ—पूर्वे दर्शाव्या प्रमाणे साधुओनुं सद्वर्तन–सुंदर आचरण, क्रियाकुशलता उपदेशके निरंतर 'मध्यमबुद्धि' वर्ग पासे कथन करवुं, अने 'बुधवर्ग'ने तो रहस्यप्रधान आगमतत्त्वनो ज उपदेश आपवो.

"उपसंहार"

स्पष्टीकरण—अत्र ग्रंथकर्त्ता पूर्वार्धभागमां 'मध्यमबुद्धि' योग्य उपदेशविधिनो उपसंहार दर्शावे छे ने उत्तरार्धथी 'बुध' योग्य उपदेशनो प्रस्ताव करे छे. आ श्लोकनो भाव

स्पष्ट ज छे. एटले तेनो विस्तार करवो ए ग्रंथना कलेवरने वधारवारूप ज थाय. टुंकमां आचार्यश्री कहे छे के—अमे पूर्वे जे 'मध्यमबुद्धि' माटे ईर्यासमिति आदि आठ प्रवचनमातानुं स्वरूप दर्शावी तेनुं पालन करवानुं जणाव्युं, सिद्धान्त-तत्त्व ग्रहण करवानी योग्यता दर्शावी, गुर्वाधीनता, गुरुआज्ञाग्राह्यता विगेरे उपदेशविधिनो प्रकार दर्शाव्यो तेना पर उपदेशके बराबर ध्यान आपी तदनुकूलपणे तथाप्रकारनो उपदेश 'मध्यमबुद्धि' ने हंमेशा कथन करवो. एटले सम्यगूरीत्या साधुओनुं सद्वर्तन जणाववुं, जेना श्रवणथी आ लोको धर्मकार्यमां अधिक श्रद्धालु बनी परिणामे बुधनी कोटीमां दाखल थाय. अर्थात् उपदेशकनी उपदेशकुशळता त्यारे ज प्रशस्यतर गणाय के ज्यारे श्रोता उपदेशबलथी स्थापित श्रद्धामां मजबूत रही अधिक धर्मरुचिपणुं अने तत्त्वज्ञमति प्राप्त करे. बस अहीं 'मध्यम' योग्य उपदेशविधि ग्रंथकर्त्ता समाप्त करे छे.

"उपक्रम"

एटले क्रम प्राप्त अने बुधनी कोटीमां आवेल मध्यमजनो जेनी अभिलाषा करे एवा बुध योग्य उपदेशनी आचार्यश्री प्रस्तावना करे छे. 'आगमतत्त्वना प्रेमी अने हम्मेशा आगमतत्त्वनी ज शोधमां, परीक्षवामां लीन होय ते बुध.' आ लक्षण ग्रंथकर्ता आगल जणावी गया छे. अतएव आ लोकोने उपदेशके आगमतत्त्वनो उपदेश आपवो एटले आगमनुं खरुं रहस्य

कथन करवुं. आगमतत्त्व "आत्माऽस्ति स च परिणामी०" ए श्लोकथी ग्रंथकार प्रथम प्रकरणमां जणावी गया छे ते ज तत्त्व अहीं 'बुध' वर्गने उपदेशवुं, अने वधुमां प्रवचननुं मौलिक रहस्य दर्शाववुं जे हवे पछी ग्रंथकर्ता जणावे छे. मूलमां जे 'तु' शब्द छे ते एवकार अर्थमां होवाथी निश्चयेन पूर्वोक्त ज तत्त्व विगेरे कथन करवुं.

"दर्शित संबंधवालो बुध योग्य उपदेशनो प्रकार आचार्यश्री दर्शावे छे."

> वचनाराधनया खलु
> धर्मस्तद्बाधया त्वधर्म इति ॥
> इदमत्र धर्मगुह्यं
> सर्वस्वं चैतदेवास्य ॥ २–१२ ॥

मूलार्थ–सर्वज्ञ प्रवचनोक्त वचन–आज्ञानुं आराधन–आज्ञानुकूल वर्तन करवुं ते ज सत्यधर्म अने तेनी विराधना–प्रतिकूल वर्तन आचरवुं ते ज अधर्म जाणवो. अत्र सर्वज्ञागममां ए ज धर्मनुं गूढ रहस्य छे ने ए ज धर्मनुं मुख्य सर्वस्व सार छे; आ सिवाय धर्मनुं अन्य कांइ तत्त्व नथी.

"बुध–देशना"

स्पष्टीकरण–अहीं 'वचनं–आगमं' वचन एटले आगम–सिध्धान्त–प्रवचन, अने बुध एटले पंडित–तत्त्वज्ञ ए अर्थो

खास लक्ष्यमां राखवा. बुध ते ज जाणवो के-जे उपरनी बनावट अथवा तथाप्रकारनी विशिष्ट क्रियाना वेशना आडंबरथी न रंगाय, किन्तु साचा झवेरीनी माफक पाणीदार हीरा-मोतीनी परीक्षा करे-स्वीकारे. अतः बुधजन उपरनो वेश देखी राजी न थाय, ते तो वेशविडंबकोमां पण छे. एवं उत्कृष्ट त्याग, वैराग्य के क्रियाओ देखीने पण खुश न थाय, ते सर्व जमाली, गोशालो के निह्नवोमां पण हती, होय छे; किन्तु क्रिया अने वेश साथे प्रभुना वचननो आदर, प्रेम तथा भक्ति केटली छे ? ते ज तपासे छे ने तेनाथी ज मुग्ध बने छे; कारण के पूर्वे कह्या प्रमाणे विधि-निषेधनुं प्रतिपादन करनार जे सर्वज्ञ भगवंतनुं आगमरूप वचन तेनी आराधना करवी ते ज मौलिक धर्म कह्यो छे. भावार्थ एटलो के-आगमानुसारी आगमदर्शित मार्गमां प्रवृत्ति करवी, आगमना एक वाक्यने पण बाध न आवे तेम हेयनो हेयरीत्या जाणी परित्याग करवो अने उपादेयनो उपादेय जाणी आदर करवो ते ज परमार्थ धर्म जाणवो. अर्थात् उत्कृष्ट क्रियानी आराधना अने उत्कृष्ट तप के चारित्रनुं पालन आत्मा सर्वज्ञना एक वचनथी पण उलटो चाली करे तो ते पलालपुंज बराबर निर्माल्य ज समजवुं. निदान के-भगवानना वचननुं पालन करवाजमां ज सम्यक्त्व, श्रुत अने चारित्र ए त्रणेनी साफल्यता समजवी. अतएव भगवाने "कडेमाणे कडे" ए सूत्रनी नहीं श्रद्धा करनार उत्कृष्ट चारित्री जमालीने पण निह्नव कह्यो. वळी आ वचनथी उलटी गति करवी, स्वमतिने आगल करी वचननो लोप करवो

अथवा वचननो दुरुपयोग के अनर्थ करवो, पोताना आग्रहने, धारणाने पोषवा माटे सर्वज्ञवचननो उपयोग करवो ए सर्व प्रभु आज्ञानुं खूनरूप चेष्टा होवाथी अधर्म ज जाणवो. निदान के–तेथी आत्मा संसारना दुःखनुं पात्र ज बने छे.

" वचनाराधकतामां आराधकता "

भगवान् हरिभद्रसूरिजी महाराज जणावे छे के–उपदेशके बुध श्रोताने खुल्लुं जणाववुं के–प्रभुना वचननुं पालन करवुं ते ज धर्म अने तेनो अनादर–अपालन करवुं ते अधर्म, ए ज अहीं जैन प्रवचनमां धर्मनुं नितान्त सत्य–गूढतत्त्व कह्युं छे, अने ए ज संपूर्ण द्वादशांगीनुं परमतत्त्व–सर्वसारभूत प्रधान तत्त्व कह्युं छे. निष्कर्ष ए के–प्रवचनज्ञाननुं फळ ए ज के शक्ति छतां तदनुकूल क्रिया–वर्तन करवुं अने वधु माटे पूर्ण आदर साथे अपेक्षा मानबुद्धि धारवी, श्रोता समीपे सत्य तत्त्वनुं कथन करवुं अने पोतानी अशक्ति जाहेर करवी; कारण के श्रद्धाथी पडेला आत्मानो उद्धार कदापि थतो नथी पण क्रिया-पतितनो तो उद्धार थइ जाय छे. एटले प्रभु आज्ञानुं पालन करवुं ए ज सत्य धर्म अहीं दर्शाव्यो. प्रभु हेमचंद्रसूरिजी पण ए ज दर्शावे छे के—" आज्ञाराद्धा विराद्धा च, शिवाय च भवाय च । इतीयमार्हती मुष्टि–मन्यदस्याः प्रपंचनं" ॥ १ ॥ आ माटे ज भगवंतो आगम प्रमाणे वर्तनारने आरा-धक कहे छे ने एक अक्षरने पण नहीं माननारने अनंत-संसारी जणावे छे, तेनुं कारण ए ज के–जेणे आगमाज्ञा मानी

तेणे सर्वे आगमोक्त वातो मान्य करी, अने जेणे एक अक्षर लोप्यो तेणे प्रभुनो पण अनादर कर्यो. अतः प्रभु आज्ञानुं पालन करवुं ए ज धर्मनुं परमतत्त्व छे, ए रीते ' बुद्धजन ' पासे उपदेशके कथन करवुं, निदान के—आगमाज्ञानी प्राधान्यता—श्रेष्ठता—सर्वकर्तव्यता दर्शाववी.

" विचित्र दलीलो "

" अरे ! आ प्रकारनो उपदेश आपवाथी तो बाह्य अने आभ्यंतर आचारोनी अप्रधानता बल्के असारता ज प्रतिभासमान थाय छे. अथवा आ उपदेशथी आ लोकोनी आचार परत्वेनी रुचिनो नाश ज केम न थाय ? जो आम ज होय तो पछी बालजनने बाह्य आचार संबंधी उपदेश, मध्यमजनने आभ्यंतर आचार संबंधी उपदेश आपवो नकामो ज मानवो जोइये; माटे सर्व अनुष्ठानोने गौण करी वचनाराधनमां ज धर्म केम न कह्यो ? आ बधी शंकाओने दूर करवा समग्र अनुष्ठानोनुं मूल प्रभु आज्ञा ज छे ए वात दर्शाववा आचार्यश्री परमार्थ उपदेश देखाडे छे. "—

यस्मात्प्रवर्त्तकं भुवि,
निवर्त्तकं चांतरात्मनो वचनं ॥
धर्मश्चैतत्संस्थो,
मौनींद्रं चैतदिह परमं ॥ २–१३ ॥

मूलार्थ—अंतरात्माने विधेयकार्यमां प्रवर्तक अने निषिद्ध कार्योथी निवृत्तिकारक आ भूमंडलमां केवल सर्वज्ञोक्त प्रवचन ज उत्कृष्टतो छे, अने परमार्थतया धर्म पण आ मौनीन्द्रना प्रवचन सिवाय अन्यत्र नथी.

" मननी स्थिति "

स्पष्टीकरण—विशिष्ट पवित्र अथवा अपवित्र कार्योमां आत्मा मननी प्रेरणा विना गति करवाने घणा अंशे असमर्थ ज बने छे, एटले प्रथम मन इच्छे छे ने पश्चात् आत्माने प्रेरे छे. यद्यपि असंज्ञी द्वींद्रियादि जीवो मनहीन होवा छतां प्रत्येक क्रियाओ शरीरद्वारा ज करे छे, एवं संज्ञी आत्माओ पण घणी वार मन विना क्रियाओ करता अनुभवाय छे; तथापि अहीं भावरूप मन कायम होवाथी मनपूर्वक ज क्रिया-प्रवृत्ति थाय छे एम समजवुं. निदान के-प्रवृत्ति-निवृत्तिमां मुख्यतया मन ज कारणभूत छे.—" मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः " आचारांगसूत्रमां पण कह्युं छे के-" जे आसवा ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा ". " जे आश्रवो ते ज निर्जराना कारणो थाय छे, अने जे निर्जराना कारणो छे ते ज आश्रवना हेतुओ थाय छे." आ कथनमां पण मननी ज मुख्यता दर्शावी छे. वळी सातमी नारकी योग्य कर्मो अने उंच देवत्व योग्य कर्मो पण आत्मा मननी सहायताथी ज बांधी शके छे. एटले मन विना आत्मा जे कांइ प्रवृत्ति करे ते मात्र सामान्य ज जाणवी, परंतु विशिष्ट प्रवृत्ति तो आत्मा

मनद्वारा ज करे छे. शुभाशुभ कार्योमां मन मुख्य मान्युं छे, माटे मन कदाचित् अशुभने शुभतया अने शुभने अशुभतया परिणमावी शके ए सहज छे. आथी मनने जे संस्कार मले तेवी रीते ते परिणमे छे ने प्रवृत्ति–निवृत्तिमां साधक बने छे. अतः आत्मानी ऐच्छिक इष्टसिद्धि माटे प्रथम मनने ज सुशिक्षित अने पवित्र संकल्पी बनाववुं उचित छे. जेम थया पछी मन तप, संयम, स्वाध्याय, शील आदिने आदेय मानी तेमां प्रवृत्ति, अने हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदिने हेय मानी तेनी निवृत्ति करे छे. परंतु आ प्रकारनी विवेकशाली प्रवृत्ति–निवृत्ति करवानुं बल मनने सुसंस्कारो अथवा ज्ञानप्राप्ति थया विना प्राप्त थवुं दुःसाध्य छे–बराबर मन समजदार थया पछी ज करे छे.

" सर्वज्ञवचन "

आथी ग्रंथकर्ता जणावे छे के–'यस्मात्०'आ भूमंडलमां शुभ कार्योमां मनने प्रवर्त्तावनार अने अशुभकार्योथी निवृत्ति करावनार केवल सर्वज्ञकथित सिद्धान्त–प्रवचन सिवाय अन्य कोइ पण साधन नथी; कारण के सर्वज्ञ प्रवचनमां ज प्रवृत्ति–निवृत्ति मार्गो दर्शावी हेय, उपादेय पदार्थो अच्छी रीते दर्शाव्या छे. सिवाय एक पण एवुं प्रवचन जगतमां नथी के जेमां विरोधी, स्वार्थनुं अने स्खलित कथन न होय. सर्वज्ञवचननो बोध थया पछी आत्मा हेयनो त्याग अने उपादेयनुं उपादान करे छे एटले मनने सर्वज्ञागमना अभ्यासथी संस्कारित बनाववुं जोइए, कारण के–सर्वज्ञागमनुं परिशीलन करवुं ते ज वास्तविक धर्म छे; हिंसादिथी निवर्तवुं अने तप, स्वाध्यायादिमां प्रवृत्ति करवी ते

तो धर्मनो बाह्य व्यापारमात्र छे. निदान के-मन तथाप्रकारे आगमथी संस्कारी थया पछी सहजतया शुभाशुभमां प्रवृत्ति-निवृत्ति करे छे, अतएव आगमोक्ततत्त्वनी आराधना करवी तेमां खरो धर्म जणाव्यो. आवुं मन बराबर अचलपणे प्रवृत्ति-निवृत्ति करे छे, एटले सुंदर चारित्र, तप, स्वाध्याय, ध्यान, क्रिया-कुशलता आदि धर्मना प्रधान अंगो पण आत्माने सहजतया उपलब्ध थाय छे. अर्थात् आ मन कदापि आ व्यापारोनी उपेक्षा करतुं नथी बल्के परमश्रद्धापूर्वक सुविशुद्धपणे आचरे छे-कदापि भंग थवा देतुं नथी माटे ज अहीं ग्रंथकर्ता कहे छे के-" धर्मश्चैतत्संस्थो " धर्म आ भगवंतकथित प्रवचननी सेवामां अबाधपणे रह्यो छे अने जैनशासनमां आ सर्वज्ञवचन ज परमतत्त्व-उत्कृष्ट धर्म छे. टुंकमां सर्व अनुष्ठानोनुं मुख्य जीवन-प्रधान आधार सर्वज्ञवचन ज जाणवुं.

" शंकानो उद्धार "

देहना प्रत्येक अवयवो अने इंद्रियोनो व्यापार-स्थंभ मुख्य प्राणो ज छे. प्राणनो नाश थया पछी सर्व व्यापारोनो लोप आपोआप ज थइ जाय छे, एवं सर्व अनुष्ठानोनी आराध्यता सर्वज्ञवचननी आराध्यताथी बने छे, अने सर्वज्ञवचननी विराधना करवाथी सर्व अनुष्ठनो निर्जीव तुल्य समजवा, माटे बुध योग्य उपदेशविधिमां सर्वज्ञवचननी प्राधान्यता जणावी. परंतु आ कथनथी अन्य अनुष्ठानो गौण अथवा नकामा नथी सम-जवाना; बल्के सर्वज्ञवचननी प्रधानता दर्शाववाथी तेनाथी अभिन्न

एवा आगमोक्त सर्व अनुष्ठानो पण मुख्य ज जणाव्या, एटले नितान्त आदेय अने अनुष्ठेय जाणवा. अन्यथा आगमदर्शित अनुष्ठानोनुं अबहुमान के अश्रद्धा करवाथी फरी आगम-वचननुं ज अबहुमान कर्युं जाणवुं, तथा तेम करवाथी अधर्म ज गणाय. आटला कथनथी प्रथमनी सर्व शंकाओनुं पण निरसन थइ गयुं. उपाध्यायजी कहे छे के-धर्म अहीं व्यापार-रूप ज्ञापकता संबंधथी जाणवो, एटले आगम ए धर्मनुं ज्ञापक छे; ज्यारे धर्म अत्रे ज्ञेय जाणवो. छेवटे टीकाकार जणावे छे के—सर्वज्ञोक्तेन शास्त्रेण, विदित्वा योऽत्र तत्त्वतः। न्यायतः क्रियते धर्म्मः, स धर्म्मः स च सिद्धये ॥ १ ॥ " सर्वज्ञभाषित शास्त्रोमां कहेल तत्त्वनुं भान-बोध करी न्यायरूपे जे कांइ करवामां आवे तेनुं ज नाम अत्रे जैन-सिद्धान्तमां धर्म कह्यो छे अने आ ज धर्मसिद्धि आपे छे; बाकी कोई पण धर्म मोक्षदायी मान्यो नथी. " आ वात पर बहु बहु विचारवुं अने तथाप्रकारे बुधजनने उपदेश आपवो.

" सर्वज्ञवचननी मुख्यता अहीं शा माटे जणावी ? तेनो हेतु ग्रंथकर्त्ता स्पष्ट करे छे. "

अस्मिन् हृदयस्थे सति,
हृदयस्थस्तत्त्वतो मुनींद्र इति ॥
हृदयस्थिते च तस्मिन्नि-
यमात्सर्वार्थसंसिद्धिः ॥ २–१४ ॥

मूलार्थ—सर्वज्ञवचन—सिद्धान्तने हृदयांकित करवाथी एटले चित्तमां स्थापन कर्या पछी परमार्थथी सिद्धान्तद्वारा मुनींद्र—सर्वज्ञ भगवाननी ज हृदयमां स्थापना कराय छे, अतः भगवान हृदयमां वीराजवाथी आत्मा पोतानी सर्व अभीष्ट सिद्धियोने नियमेन विनाविलंबे प्राप्त करे छे.

" प्रभुप्राप्तिनो मार्ग "

स्पष्टीकरण—अभीष्ट अर्थोनी सिद्धि परमात्मानी प्रसन्नता सिवाय न ज थाय ए तो सर्वसाधारण वात छे. परमात्मानी प्रसन्नता खाली तेनी विविध पूजाओ करवाथी अने मंदिरो बंधाववाथी ज न मले, किन्तु परमात्माने प्रसन्न करी तेने पोताना हृदयमंदिरमां स्थापन करवानो मार्ग अलौकिक अने घणो सरल छे, ते ज वात अत्र आचार्यश्री स्पष्ट करे छे. जनता परमात्माने खुशी करवानो अने तेने मेळववानो मार्ग वारंवार पूछे छे, तेना माटे आचार्यश्री कहे छे—" अस्मिन् हृदयस्थे " आ विधि, प्रतिषेध, उत्सर्ग, अपवाद आदि मार्गदर्शक लौकिक—लोकोत्तर कल्याणमार्गप्ररूपक स्याद्वादशैलीमय एवुं पूर्वोक्त आगमवचन—सिद्धान्तकथित आज्ञाओ हृदयमां धारवाथी, अर्थात् आत्मा सामान्य के विशेष जे कांइ प्रवृत्ति—निवृत्ति आचरे ते सर्व सिद्धान्तनी आज्ञा अनुकूलपणे ज यदि आचरे तो " तत्त्वतो० " परमार्थथी आत्मा परमेश्वरनुं ज नितान्त बहुमान करे छे; कारण के—परमेश्वर उपर ज्यारे अनन्य भक्ति—बहुमान होय त्यारे ज भव्य आत्मा तदुक्त प्रत्येक

आज्ञाओने हृदयांकित करी शके, आज्ञाओ पर बहुमान न होय तो परमेश्वरनुं बहुमान नथी ए पण निश्चित जाणवुं. एटले परमेश्वरने खुशी अथवा प्राप्त करवानो सरल मार्ग आ ज छे के परमेश्वरनी आज्ञाओने हृदय साथे एकाकार करवी. सामान्य व्यवहारमां पण ए ज नियम छे के मनुष्यना बहुमान पहेला तेनी आज्ञाओनुं बहुमान लोको इष्ट गणे छे, ते सिवाय तो प्रत्येक मनुष्य तेवा व्यवहारने छल व्यवहार माने छे. कायदामां पण सरकारना बहुमान पहेला तेना फरमाननो प्रथम आदर करवो पडे छे, अतः अत्र साफ साफ कही दीधुं के वचननो आदर करवाथी ज मुनींद्र–भगवाननो ज अवश्यमेव आदर थाय छे. एटले पछी ज क्रियमाण (कराता) प्रत्येक तप, जप, संयम, स्वाध्याय आदि क्रियाओ फलदातृ बने छे. जे मनुष्य भगवाननुं बहुमान घणी घणी खुशीथी करे छे, पण तेमनी प्रत्येक न्हानी–मोटी आज्ञाओ स्वीकारता नथी अथवा एकाद आज्ञानुं खून करे छे तो ते मनुष्यनी उत्कृष्ट पण तप, संयम आदि क्रियाओ निष्फल जेवी ज भगवाने कही छे; बल्के संसारभ्रमणरूप दंडनो अधिकारी कह्यो छे ए वात आगल जणावी गया छीए. प्रभु आराधनाना उपाय माटे प्रकारान्तरे एतत् ग्रंथकर्त्ताए अष्टक प्रकरणमां खुल्लंखुल्ला जणाव्युं छे के– "यस्य चाराधनोपायः सदाज्ञाभ्यास एव हि" पुनः "हृदयस्थिते च तस्मिन् नियमात् सर्वार्थसंसिद्धिः" उपरोक्त कथनथी सिद्ध थइ चूक्युं के वचनना बहुमानद्वाराए ज परमेश्वर हृदयमां विराजे–प्रसन्न थाय छे.

-" अभीष्ट सिद्धियो "

अतएव भगवान हृदयमां विराजवाथी नियमेन आत्माने सर्व अर्थो-अभिष्टोनी सम्यक्तया सिद्धि थाय छे. निदान के-भगवान मल्या पछी क्यो पदार्थ जगतमां एवो छे के आत्मा सहजतया (सहेलाइथी) न मेळवी शके ? टुंकमां तप, जपादिनी सिद्धि, अष्टसिद्धिनी प्राप्ति, शरीर संबंधी दुःखोनो ह्रास, इंद्र चक्रवर्त्यादिनी रिद्धियो अने छेवटे संसारनो नाश थइ परमात्मा साथे एकाकारपणुं हस्तगत थवुं आत्माने कांइ दुःसाध्य नथी. अल्पकालेन अभिलषित स्थानोनी प्राप्ति थाय छे, केवल परमेश्वरनी हृदयमां अद्भूत रीते स्थापना थवी जोइये; माटे ज बुधजनने उपदेशके भगवाननी आज्ञा आराधवानो प्रधानतर उपदेश आपवो अने तेनो प्रभाव आ रीते जणाववो.

" भगवाननी प्रसन्नताथी सर्व कार्योनी सिद्धि थाय छे, एवुं जणावी भगवानना माहात्म्यनी ग्रंथकर्त्ताए आटली स्तुति शा माटे करी ? शुं भगवान सर्व कार्यो करी आपे छे खरा ? आ शंकानुं समाधान ग्रंथकर्त्ता दृष्टांतनी घटना साथे करे छे."

चिंतामणिः परोऽसौ
तेनैव भवति समरसापत्तिः ॥
सैवेह योगिमाता,
निर्वाणफलप्रदा प्रोक्ता ॥ २-१५ ॥

मूलार्थ—आ भगवान्—जिनेश्वरदेव चिंतामणिरत्न

करता पण उत्कृष्ट रत्नरूप छे, कारण के आ वीतरागदेवथी ज आत्माने एकान्त उपशम-शान्तरसनी प्राप्ति थाय छे, अने महर्षियोए आ उपशमरसनी प्राप्तिने ज योगियोनी माता तथा निर्वाण-मोक्षफळदायी कही छे.

" चिंतामणिनी उपमा "

स्पष्टीकरण---अत्र भगवाननी उत्कृष्टता दर्शाववा आचार्यश्री सर्वतो सुंदर दृष्टांत आपी तेमनी आराध्यता बराबर सिद्ध करे छे. भगवान सर्वतोश्रेष्ठ होवाथी अद्‌भूत आश्चर्योत्पादक दृष्टांत साथे ज तेमनी कांइक साम्यता दर्शाववी ए पाठको माटे सरलता गणाय. भूतल पर चिंतामणि सर्वोत्तम पदार्थ मनायो छे. आ रत्न जड छतां तेनी सेवा करनारने अभिष्ट फलो तेना मालिक (अधिष्ठायक) देवता अर्पण करे छे. एवं आ भगवान पण पोतानां बहुमान, भक्ति, श्रद्धा, आज्ञापालन करनारने पण आ लोक तथा परलोक संबंधी सर्व इष्ट पदार्थो पूरण करे छे. यद्यपि भगवान वीतराग होवाथी अभक्त, अपूजक, अश्रद्धालु सामे क्रोध अने आराधक-पूजक सामे प्रेम दर्शावता नथी. तेओ तो सर्व जगतने समदृष्टिए ज निहाळे छे, अन्यथा भगवंतमां वीतरागपणुं ज न कहेवाय; तथापि चिंतामणिनी भक्तिथी आकर्पायेल तेना मालीक देवता सेवकनी कामनाओ पूरे छे. एटले आ अभिष्ट सिद्धियो चिंतामणिना आलंबनथी ज प्राप्त थइ परंतु परमार्थ रीते तो चिंतामणि ज अर्पण करे छे एवो व्यवहार जगतमां प्रवर्त्यो छे, तथाप्रकारे जिनप-

णित आगमानुसारे उपादेय–हेयादिमां प्रवृत्ति–निवृत्ति करनार आत्माने अलौकिक लोकलोकोत्तर सिध्धियो तत्काल सहजतया उपलब्ध थाय छे. एटले–" व्यवहारमां जेम अमुक माणसनी सलाहथी अमुक माणस कोइ जातनुं कार्य अगर व्यापार करे एवं मार्गमां गमन करे अने तेमां ज्यारे पोते फतेह मेळवे त्यारे ते माणस एमज समजे छे के अमुकनी सलाहथी–वचनथी हुं चाल्यो माटे ते माणसे ज मने सुखी कर्यो." अत्र माणसना वचनथी जे सिद्धि थइ ते माणसे ज सिद्धियो अर्पी एवुं उच्चारता, मानता अने व्यवहार करता जनताने आपणे सामान्य दृष्टिथी जोइये छीये, तो पछी अहीं भगवानना वचनाधारे प्रवृत्ति करनार आत्मा इष्ट सिद्धि मेळवे ते भगवाने ज अर्पण करी ए व्यवहार शामाटे अनुचित मानवो ? अर्थात् भगवान ज अर्पण करे छे ए उक्तिमां कांइ अनौचित्यपणुं समजातुं नथी. अतः भगवानने चिंतामणिनी उपमा बराबर चरितार्थ थइ शके छे.

"अनौपम्य भगवान"

वधुमां भगवान तो चिंतामणिनी अपेक्षाए अधिक फल अर्पणकर्ता होवाथी भगवाननी आगल चिंतामणी पण सामान्य पत्थरवत् समजवो, कारण के चिंतामणि तो मात्र इहलोक संबंधी ज तुच्छ पदार्थो अर्पण करे छे पण जन्मांतरना सुखो आपवाने समर्थ नथी थतो; ज्यारे भगवान तो लोकलोकोत्तरना दिव्य सुखो अर्पण करी अखंड आत्मानंदने

अर्पण करे छे, जेथी आत्माने आ संसारना भयानक स्वप्नाने जोवानो समय फरीने आवतो नथी.

" प्रभुथी समरस लाभ "

आ ज वातनो उद्देश ग्रंथकर्ता जणावे छे के-" तेनैव भवति समरसापत्तिः " भगवद् वचनाधारे प्रवृत्ति करवानुं, भगवाननुं बहुमान के पूजा करवानुं खरुं फल ए छे के आत्मा भगवंत जेवो उपशमभाव प्राप्त करे-एटले कषायोनी क्षीणता थइ जाय. हेतु ए के-कषायोनी क्षीणता विना साक्षात् भगवद् प्राप्ति थती नथी अने आत्मानो वास्तव धर्म उपशमभाव-स्वस्वभावमां रमणता करवानो ज छे. आ स्वरूप खरी रीते भगवानना वचनोथी आत्माने उपलब्ध थाय छे, माटे अहीं जणाव्युं के भगवान पासेथी ज आ समरस-उपशमरसनी प्राप्ति थाय छे; कारण के प्रभुकथित वचनरूपी अमृत एवुं छे के आत्मा तथाप्रकारे वर्ते तो जरुर अमृतभावमय ज थइ जाय.

" समापत्तिनुं स्वरूप "

अथवा टीकाकार " तेनैव भवति समरसापत्तिः " ए चरणनो अन्यार्थ निकाले छे. " ते भगवानथी ज आत्मा समरसनी प्राप्ति करे छे." अत्र 'रस' शब्द भाव अर्थनो वाचक छे एटले समभावनो लाभ पामे छे. जिनभगवंतोए स्ववचनथी जेम जगतना कल्याण माटे प्रवृत्ति-निवृतिना द्वारो खोली दर्शाव्या छे तेम परमेश्वरनुं पण यथार्थ स्वरूप विना-

संकोचे प्रकाश्युं छे, जेथी आगमना अभ्यासी अने आगमानुसार प्रवृत्तिकारको पोतानुं कल्याण निराबाधपणे साधी शके, अर्थात् आगमोक्त मार्गमां चाली जे साधनोद्वारा परमेश्वरनी प्राप्ति जणावी छे ते साधनो उपलब्ध करी, परमेश्वर स्वरूप हृदयमां बराबर स्थापन करी सर्व वृत्तियो-विकल्पो बंध करी केवळ परमेश्वरना ज ध्यान-विचारमां तन्मय बने छे, एटले आ समये ते विशिष्टात्मा अने परमेश्वरनो जाणे अभेदभाव न थयो होय तेवो आ आगमोक्तकारी आत्माने अनुभव थाय छे. आनुं नाम आचार्यश्री 'समापत्ति' ध्यान कहे छे.

" ध्याता, ध्येय अने ध्यान "

आ विषयने समजाववा टीकाकार योगशास्त्रनो आधार आपे छे. 'क्षीणवृत्तेरभिजात्यस्येव मणेर्ग्राह्यग्रहीतृग्रहणेषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः" ध्याता, ध्येय अने ध्यान आ त्रिकोटीनी ज्यारे ऐक्यता थाय त्यारे ते 'समापत्ति'-समयावनी प्राप्ति कही छे. जेम सुंदर अने स्वच्छ जात्य स्फाटिकमणि पासे जेवा प्रकारनुं रंगीन कपडुं धरवामां आवे तथाप्रकारनी छाया ते मणिमां बराबर प्रतिबिम्बित थाय छे, एटले कपडामां स्थित वर्णनो स्वीकार करी मणि पण तेवा ज रंगनो देखाय छे. अहीं मणि, रंग अने कपडुं ए त्रणेनो समागम बनी एक-बीजा तन्मय तदाकार प्रतिभासमान थाय छे. कारण के कपडामां स्थित वर्णने ग्रहण-पकडवानी ताकात मणिमां छे अने वर्णमां पकडावानी शक्ति छे. एवं आ बन्ने वस्तु एक

स्थानमां विराजमान छे एम दृष्टाने (जोनारने) प्रत्यक्ष मालुम थाय छे. एटले ग्राह्यवर्ण, ग्रहीतृमणि अने वर्णने स्वीकारी तन्मय थवानो मणिनो स्वभाव ते ग्रहण—आ त्रणे भाव वर्ण अने मणिमां साक्षात् अनुभवाता होवाथी स्वच्छ अने निर्दोष सुंदर मणि लाल, पीळुं, आसमानी, कृष्ण वर्णवाळुं आपणे सौ साधारण दृष्टिथी जोइ शकीए छीए. परमार्थ के—मणि कपडाना संबंध-मात्रथी तथाप्रकारना वर्णमय थइ जाय छे ए ज रीते अहीं आत्मा अने परमेश्वरमां आ दृष्टांतनी बराबर साम्यता—घटना समजवी. आत्मा ज्यारे आगमोक्त परमेश्वरनुं स्वरूप समजी—विचारी तदीय ध्यानमां तन्मय बनी परमात्मा साथे एकाकार बने छे त्यारे आत्मा पण सर्वज्ञरूप—परमात्मरूपपणानो परमार्थथी अनुभव करे छे. एटले ध्येय परमात्मा, ध्याता—विचारकर्ता आत्मा अने ध्यान ते परमात्माना स्वरूपनो विचार—आ त्रणेनो समागम ते 'समापत्ति.' परमात्मा सर्वने ध्येयस्वरूप प्राप्तव्य होवाथी परमात्मा ध्येय अने तेमना स्वरूपनो—गुणोनो अभ्यास, परिशीलन, विचार ते ध्यान; तथा विवेकी आत्मा आ स्वरूपनो विचार—अभ्यासकर्त्ता होवाथी ते ध्याता. आ त्रणेनो ज्यारे समागम—ऐक्यता थाय त्यारे विवेकी आत्मा सर्वज्ञना ध्यानरूप बाह्य आलंबनद्वाराए सर्वज्ञरूपनो अनुभव करे छे एटले ते आत्मा पण सर्वज्ञरूप कहेवाय; कारण के—आ समये ते आत्मा 'मयि तद्रूपं स एवाहं' 'मारामां भगवाननुं रूप छे, अने हुं भगवद्रूप छुं' ए ज भाव विज्ञानद्वाराए अनुभवे छे. माटे

अहीं ग्रंथकर्त्ताए उल्लेख कर्यो के-आ पूर्वोक्त 'समापत्ति' रूप भावावस्था आत्माने परमात्मारूप बाह्य आलंबनद्वारा ज उपलब्ध थाय छे; सिवाय ते अवस्था अप्राप्य ज जाणवी.

"योग तथा योगि अने योगिमाता"

आटलो निर्देश करी फरी ग्रंथकर्ता आ 'समापत्ति' नी माहात्म्यता, आराध्यतानी अलौकिकता सिद्ध करवा उत्तरार्धथी प्रकांड प्ररूपणा करे छे. 'सैवेह योगिमाता' दर्शित 'समापत्ति' ज अहीं-जैनदर्शनमां अथवा सर्वदर्शनमां योगियोनी माता कही छे. 'मोक्षेण योजनात् योगः' जेथी आत्मानो मोक्ष साथे बराबर संबंध थाय ते योग. आ योगने जेओ पाम्या तेओ योगि कहेवाय. योग तथा योगि शब्दनो अत्र आ अर्थ होवाथी सम्यक्त्व, ज्ञान, संयम, कषायविजय, इंद्रियनिग्रह, शान्ति, शौच, ब्रह्मचर्य, निर्ममत्व-आ सर्व योगमार्गो छे अने ते मार्गमां चालनार सर्व योगि जाणवा. खाली बाह्यथी जटा वधारी, कौपीन, वल्कल के व्याघ्र के मृगचर्म धारी, भस्म चोळी वेश करवो ते कांइ योगिपणुं न कहेवाय. जेमां मोक्षनो संबंध आत्मा साथे न थाय तेनुं नाम योग नथी कह्यो. आ योगियोने उपरोक्त योग धारवानुं मुख्य फल परमात्मप्राप्ति सिवाय अन्य अभीष्ट नथी कह्युं, अर्थात् आ सर्व योगियो पण योगमार्गना पंथमां विचरी परमात्माना ध्यानरूप 'समापत्ति' अवस्थानो लाभ करी ते द्वाराए अनुक्रमे परमात्मा अने पोते बन्ने तुल्यस्थान स्थित बने छे. एटले

परमार्थ ए के–योगियो 'समापत्ति' ध्याननी सिद्धि माटे ज आ सम्यक्त्व आदि योगो धारे छे. ज्यां सुधी आ ध्यान-सिद्धि न थाय त्यां सुधी योगियोनो योगप्रयत्न अर्थहीन जेवो मान्यो छे, माटे योगियोनी सर्व कार्यसिद्धि आ 'समापत्ति' ध्यानथी ज थाय छे. अतएव आ 'समापत्ति' ने नितान्त योगियोनी माता अहीं जणावी.

" निर्वाणफलदर्शन "

ए ज वात अन्यत्र कही छे–" सम्यक्त्वज्ञानचारित्र-योगः सद्योग उच्यते । एतद्योगाद्धि योगी स्यात् परमब्रह्मसाधकः " ॥ १ ॥ अन्तमां ग्रंथकर्त्ता आ 'समापत्ति' ने 'निर्वाणफलप्रदा प्रोक्ता' निर्वाण–मोक्षफल-दात्री महर्षियोए कही छे एवो निर्देश करे छे. निष्कर्ष ए के–आ 'समापत्ति' प्राप्त थया पछी मोक्षफल अवश्यमेव आत्माने सुलभ्य थाय छे. " इलिका भ्रमरीं ध्यायन् भ्रमरीत्व-मुपतिष्ठते " 'इयल भ्रमरीनुं ध्यान करवाथी छेवटे भ्रमरी-पणाने पामे छे' तथाप्रकारे योगियो पण परमात्मानुं 'समापत्ति' रूप ध्यान पामी परमात्मावस्थाने–मोक्षभावने पामे छे, आम अनुभववेदी सर्वदर्शी महापुरुषो अने पूर्वधर आचार्यो कहे छे. टुंकमां आगमानुसारी प्रवर्तक स्वहृदयमां पूर्वोक्त न्याय्ये आगमद्वाराए परमात्माने स्थापन करी ते परमात्मरूप आलं-बनथी 'समापत्ति' रूप खरुं ध्यान पामी छेवटे मोक्षस्थानमां विराजे छे. अतएव आगमवचननी आराधना ते ज वास्तव-धर्म

अहीं 'बुध' वर्ग माटे दर्शाव्यो. अतः उपदेशके पण आ स्वरूप बराबर ध्यानमां राखी तथाप्रकारे बुधजनने उपदेश करवो.

"आ अधिकारना प्रारंभमां ग्रंथकर्त्ताए बाल, मध्यम, बुध माटे उपदेशविधिनो प्रकार तत्त्वज्ञोए जे प्रमाणे कह्यो छे तथाप्रकारे जणाववानुं कह्युं हतुं" तो अहीं सुधी उपर दर्शाव्या प्रमाणे सिद्धान्तानुसारी उपदेशविधिना प्रकारो कह्या, एटले आचार्यश्रीए 'यथोद्देशः तथा निर्देशः' ए महर्षियोनुं कथन चरितार्थ कर्युं. हवे आ 'विधि' नो उपसंहार करी तथाप्रकारे उपदेशदाननुं अपूर्व फल दर्शावी उपदेशकोने ए दिशामां ज गमन करवानी सूचना आपी आ अधिकारने पूर्ण करे छे."

इति यः कथयति धर्मं,
विज्ञायौचित्ययोगमनघमतिः ॥
जनयति स एनमतुलं,
श्रोतृषु निर्वाणफलदमलम् ॥२-१६॥

सूलार्थः—अनघमति–शुद्धमतिमान् एवा जे धर्मगुरु बाल, मध्यम आदिनी योग्यता बराबर परीक्षी योग्यता प्रमाणे धर्मोपदेश करे छे, तो तेओ श्रोताना हृदयमां मोक्षफलने अर्पण करनार एवा अनन्य–असाधारण धर्मभावनी श्रद्धा स्थापन–उत्पन्न करे छे.

" उपसंहार "

स्पष्टीकरणः—उपदेशविधिना प्रकारो दर्शाव्या. अत्र तो तेनुं फल प्रकाश्युं छे. प्रथम तो उपदेश आपवानो अधिकार आगल दर्शाव्या प्रमाणे " धम्मो जिण पण्णत्तो पकप्प-जयिणा कहेयव्वो " जिनकथित धर्म केवळ प्रकल्पयतिए (गीतार्थमुनिए) ज प्ररूपवो, अर्थात्—त्यागी, मोक्षमार्गेस्थित अने गुरुकुलवासमां रही योगादि क्रिया आराधी जघन्यथी पण आचारांगादि पांच सूत्रोमां निपुण एवा गीतार्थमुनिए ज धर्मव्याख्या करवी; सिवाय अन्यने तो बोलवानो पण अधिकार नथी तो पछी धर्मदेशनानी वात ज क्यां रही ? आ मुनि पण 'अनघमतिः' पापबुद्धि रहित एटले केवल पवित्राशयवान् होय ते ज. हेतु ए के—स्वार्थी के आग्रही कदापि शुद्ध उपदेश आपी शकता नथी. ते पण बाल, मध्यम आदि वर्गनी प्रथम चेष्टा, क्रिया, अभिरुचि, बुद्धि, विचार आदि साधनद्वाराए योग्यतानो बराबर ख्याल करी, तपास कर्या पछी ते लोकोने धर्मनो बोध थाय, श्रद्धा अने अभिरुचीमां वधारो थाय, उत्तरोत्तर उच्चम उत्तम अवस्थाओ प्राप्त करे तथाप्रकारे पूर्वोक्त उपदेशके तेओना अधिकार प्रमाणे उपदेश आपवो. उपदेश आपती वखते एटलुं तो खास ध्यान राखवुं के उपदेशमां भगवंत तथा पूर्वाचार्योना ज्ञाने स्वमतिकल्पना के आग्रहनुं मिश्रण करी श्रोताओने उपदेश न अपाय; कारण के एथी उपदेशक अनंतसंसारनी वृद्धि करी श्रोताने पण कल्याणना बदलामां अकल्याण प्रति घसडी जाय छे. एवं आज्ञाभाव तथा

मान-प्रतिष्ठानो लोभ छोडी परिश्रम के शरीरखेदनो विचार कर्या विना मात्र श्रोतानुं कल्याण क्या प्रकारे थाय तेवा पवित्र विचारोपूर्वक ज उपदेश आपवो.

"उपदेशनुं खरुं फल"

आ रीतें उत्तम उपदेश आपवाथी वक्ता आचार्य स्वनुं (पोतानुं) कल्याण साधवापूर्वक श्रोताने उद्दाम धर्म ज पमाडे छे. आचार्यश्री कहे छे के-'जनयति स एनमतुलं श्रोतृषु निर्वाणफलदमखम्' आ रीते धर्मोपदेश आपवाथी उपदेशक सारी रीते श्रोताओना चित्तमां असाधारण एवो धर्मप्रेम उत्पन्न करे छे, जेथी श्रोताने एवो दृढ धर्मप्रेम जागृत थाय छे के जे परिणामे अवश्यमेव निर्वाण-मोक्षरूप फल अर्पण करवा समर्थ बने छे. निदान के-श्रोता छेवटे मोक्ष पामी स्वात्माने कृतकृत्य करवा समर्थ थाय तेवो उत्तरोत्तर शुद्धतर धर्म पामे छे. टुंकमां-आचार्यना उपदेशमां एवो तो अद्भूत चमत्कार तथा आकर्षण होय के श्रोताने कंटाळो के अभाव कदापि उत्पन्न न थाय, किंतु मोरलीना नादथी आकर्षायेला नागनी माफक खेंचाइ खेंचाइने उपस्थित थइ अधिकाधिक श्रवण करवामां दत्तचित्त बने ने पछी परिणामे तथाप्रकारे उपदेशना बलथी उत्तम पंथानुयायी थाय. आथी श्रोता अने वक्ता उभयनुं परिणामे कल्याण ज थाय छे. वधुमां उमास्वाती महाराज कहे छे के-"वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति" आवो उपदेश आपनार आचार्य छेवटे कांइ नहीं तो पोताना अनंतपापकर्मोनी निर्जरा-क्षय निःसंदेहपणे करे छे.



(३) धर्मलक्षणषोडशकम् ।

"शंका अने संबंध"

गत अधिकारना प्रारंभमां 'बाल' आदि वर्गने सद्धर्मनी देशना आपवानुं जणाव्युं हतुं अने अंतमां "तथाप्रकारे उपदेश आपवाथी उपदेशक श्रोताने असाधारण धर्मप्रेम पेदा करे छे." एटले बन्ने स्थलमां धर्म ए शब्द आवे छे. तो धर्म कोने कहेवो ? तथा धर्मनुं लक्षण शुं ? ए आशंकानो उत्तर जणाववा द्वाराए पूर्वाधिकार साथे सुसंबधतया स्थित आचार्यश्री धर्मस्वरूपदर्शक तृतीयाधिकारनो आरंभ करे छे. उपदेशबलथी आत्माने जे धर्म प्राप्त थाय अथवा धर्म उपजावाय ते धर्म कोने कहेवो ? ए संसय अशंसयपणे उत्पन्न थाय. अतः बीजा अधिकार पछी उपरोक्त शंकाने दूर करवाना संबंधवाळो आ त्रीजो अधिकार दर्शावे छे. एटले आ अधिकार संबंधशून्य छे ए शंकाने अहीं अवकाश मळतो नथी.

अस्य स्वलक्षणमिदं
धर्मस्य बुधैः सदैव विज्ञेयं ।
सर्वागमपरिशुद्धं
यदादिमध्यांतकल्याणम् ॥ ३–१ ॥

मूलार्थः—धर्मनी परीक्षामां निपुण एवा बुधजनोए प्रथम धर्मनुं लक्षण हम्मेशा आ प्रमाणे जाणवुं के जे सर्व शास्त्रोवडे अतिशुद्ध होय अने फरी आदि, मध्य तथा अंतमां कल्याण फलने ज अर्पण करे.

" बुधने सूचना "

स्पष्टीकरण—पदार्थनुं स्वरूप विचारवा पूर्वे प्रथम विद्वानो पदार्थना लक्षणनो विचार करे छे, कारण के लक्षणे करीने अव्यवस्थित पदार्थ स्वरूपमां पण अव्यवस्थित ज होय छे, एवं लक्षणद्वारा पदार्थनुं सामान्यतः स्वरूप पण समजवामां आवी जवाथी पश्चात् विशेष स्वरूप समजवाने सरलता पण थाय छे. अतएव ग्रंथमां उद्दिश्य पदार्थोनुं स्वरूप वर्णन करवा पूर्वे समर्थ विद्वानो पदार्थनुं लक्षण पहेलाथी ज प्रकांडतया कथन करे छे. आ नियमनो बाध न थाय ते माटे ग्रंथकर्ता आ प्रकरणनी आदिमां ज ग्रंथपरीक्षक विद्वानो प्रति स्पष्ट विद्वत् प्रणालिकानुं दर्शन करावे छे के—अत्र धर्मस्वरूप—निरूपणमां बुधजनोए हम्मेशा धर्मनुं लक्षण आगलनी आर्यामां जणावशे तथाप्रकारे जाणवुं, धर्मपरीक्षकोए तथा धर्मइप्सु (धर्म इच्छनारा) महानुभावोए धर्म ग्रहण करवा पूर्वे अहीं जे धर्मनुं लक्षण कह्युं छे तथाप्रकारनुं लक्षण स्वीकृत, स्वीकार्यमाण धर्ममां अविरोधपणे सुघटित छे के नहीं? एवो विचार प्राज्ञहृदयथी अवश्य करवो, जेथी मुग्धहृदयने पदार्थ स्वीकार्या पछी पश्चात्ताप के खेदनो प्रसंग न आवे; कारण के घणी वार धर्मश्रद्धालु विद्वानोनुं पण मन आतुरतामां

अथवा विचाराभाव के अन्य कोइ विचित्र कारणोथी धर्माभाव-स्थलमां धर्मनी मान्यता करवाने ललचाय-मुग्ध थाय छे.

" लक्षण'नुं लक्षण "

अत्रे लक्षण ते ज जाणवुं के जेनाथी उद्दिष्ट पदार्थथी इतर पदार्थनो निषेध थाय अने अभीष्ट पदार्थनुं बराबर पूर्णांशे ज्ञान थाय. जेवुं के-' उष्णस्पर्शवत्तेजः ' ' उष्ण एवो स्पर्श जेमां होय ते अग्नि ' अत्रे अग्निनुं लक्षण " उष्ण-स्पर्शपणुं " कह्युं. आथी अग्नि सिवाय जेटला पदार्थो तपासीए ते दरेकमां भिन्न भिन्न स्पर्शो कोइमां थंडो, कोइमां काठीण्यता, कोइमां कोमलता विगेरे छे खरा पण उष्ण एवो स्पर्श तो अग्निमां ज छे; अन्य पदार्थमां नथी देखातो. गरम जल, गरम लोढुं विगेरेमां जे जणाय छे ते पण अग्निनो ज गुण छे, कारण के ते पदार्थो तो जाते थंडा, मृदु अने कठीण छे. सूर्यनो ताप अने विजलीने पण नैयायिको अग्नितत्त्व ज माने छे, एटले आ लक्षणथी अन्य पदार्थनो निषेध थवाथी अग्निपदार्थनुं स्पष्ट स्वरूप समजाय छे. फरी आ लक्षण अतिव्याप्ति, अव्याप्ति,

१ " तदेव हि लक्षणं यदव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवरूपदोषशून्यम् " २-" अतिव्याप्तिर्नाम अलक्ष्ये लक्षणसत्त्वम् " निषिद्ध पदार्थमां लक्षणनी प्रवृत्ति ते अतिव्याप्ति, जेमके 'गो' नुं लक्षण 'महिषि' मां लागु थाय ते. ३-" अव्याप्तिर्नाम लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम् " लक्ष्यना एक ज देशमां लक्षण लागु थाय ते अव्याप्ति, यथा 'गो' नुं लक्षण अमुक ज 'गो' मां लागु थाय ते.

असंभव दोषत्रयशून्य होय तो ज समिचीन कह्युं छे.

"स्वलक्षण"

अत्र धर्मनुं स्वलक्षण जणाववा पूर्वे ग्रंथकर्त्ता कहे छे के-इच्छित धर्मनुं स्वलक्षण केवळ सामान्य न जाणवुं, किन्तु आ लक्षण "सर्वागमपरिशुद्धं" छ दर्शनना जे जे शास्त्रो ते ते शास्त्रोनी कसोटीद्वारा सर्वतोप्रकारे शुद्ध-निर्दोष होवुं जोइए, अर्थात् धर्मनुं स्वलक्षण एवुं दर्शाववुं-दर्शाव्युं छे के छए दर्शनोना विद्वानो पोताना शास्त्ररूपी हथोडावडे घणुंये कूटे तो पण जे खंडित न थाय, परंतु सत्य सुवर्णनी माफक निर्दोष अने स्वीकार्यरूपे जाहेर थाय. एवं खाली निर्दोष अने स्वीकार्य होय आटलुं ज नहीं किन्तु आचार्यश्री वधु भार दइने कहे छे के-" यदादिमध्यांतकल्याणम् " जे धर्मनुं स्वलक्षण आदिमां, मध्यमां अने अंतमां कणस्वरूप कल्याण-फलप्रदातृ होय. एटले नितान्त लक्षण ज एवुं छे के-ज्यारे तथाप्रकारना धर्मनो आदर करे ते समये, आदर कर्या पछी, एवं धर्मना अंतमां ज्यां देखो त्यां मोदक के साकरनी माफक सुंदर फलने ज अर्पण करे छे अर्थात् तेनो कोइ पण अंश एवो नथी के ज्यां कल्याण ज न होय. टुंकमां

४-"असंभवो नाम लक्ष्यमात्रे कुत्रापि लक्षणासत्त्वम् " लक्ष्यमां लक्षण सर्वथा लागु न थाय ते असंभव, यथा 'गो' नुं लक्षण 'गो' मां लागु ज न थाय ते.

सर्व शास्त्रोने मान्य अने सर्वथा कल्याणफलप्रदाता एवा आ धर्मना स्वलक्षणनी परीक्षा विद्वानोए प्रथम तपासवी.

आटलो उद्देश कर्या पछी धर्मनुं स्वलक्षण कयुं छे ? ए प्रश्नना उत्तरमां आचार्यश्री हवे बीजी आर्यामां धर्मनुं स्वलक्षण प्रकाशे छे.

धर्मश्चित्तप्रभवो यतः
क्रियाधिकरणाश्रयं कार्यं ॥
मलविगमेनैतत्खलु
पुष्ट्यादिमदेष विज्ञेयः ॥ ३–२ ॥

मूलार्थः—चित्त–मनथी जे उत्पन्न थाय ते धर्म कारण के विधि, प्रतिषेधरूप क्रिया मनथी ज प्रवर्ते छे अने आ क्रिया ते तो कार्यरूप छे, तथा क्रियारूपी कार्यनुं अधिकरण–स्थान शरीर ज छे. एवं क्रियाप्रेरक मन शरीराश्रयी छे, एटले पुष्टि अने शुद्धिए करी अलंकृत एवुं जे मन तेनी जे प्रवृत्ति ते ज निश्चयेन धर्म जाणवो.

" धर्मलक्षण " (यशोभद्रसूरिजी)

स्पष्टीकरणः—आ आर्यानी व्याख्या 'यशोभद्रसूरिजी' थी उपाध्यायजी सर्वथा भिन्न रीते करे छे. एटले उपाध्यायजी यशोभद्रसूरिजीनी टीकाने हस्तस्पर्श सरखो पण करता नथी एटलुं ज नहीं किन्तु जे

बाबतमां यशोभद्रसूरिजी दोष जाहेर करे छे ते बाबतने पोते पहेला स्वीकारे छे, माटे अहीं उभय टीकाकारोनो आशय समजवा वांचको पासे उभयथा नीकलतुं स्पष्टीकरण अमे पण अलग अलग थयुं छे. एके टीकाकारना आशयनी लघुता करवा अमे साहस नथी करी शकता. परमार्थ तो विद्वानोए ज विचारवो.

ग्रंथकर्त्ता धर्मनुं लक्षण दर्शावे छे. लक्षणनुं लक्षण गत आर्याना स्पष्टीकरणमां तपासी गया तथाप्रकारे अहीं पण घटना पाठकोए करी लेवी. "चित्तप्रभवो धर्मः" "चित्त–मननी उत्पत्ति ते ज धर्म". चारित्र–वर्तनमात्र, क्रियारूप प्रवृत्तिमात्र मनपूर्वक ज थाय छे, एटले हृदयना संकल्पो ते ज अहीं धर्म जाणवो, कारण के श्लोकांतर्गत 'चित्तप्रभवो' ए वाक्यनो विशेषणसमास अत्र स्वीकारवो. "चित्तं स चासौ प्रभवश्च चित्तप्रभवः" "चित्त–मन तेनो ज प्रभव–जन्म–आविर्भाव ते ज चित्तप्रभव" एटले आवुं नाम धर्म. अत्रस्थ यत् शब्दथी चित्तनुं ग्रहण करवुं. परमार्थ ए के–कोइपण विधेय या निषिद्ध क्रियामां आत्मानी गति थाय छे ते मननी प्रेरणा विना तो नहीं ज, एटले मननी इच्छाद्वाराए क्रियाकांड बने छे; माटे चित्त ए क्रियोत्पादक होवाथी कारण जाणवुं अने क्रिया ए निष्पद्यमान होवाथी तेने कार्य कह्युं छे. हवे जे क्रियाओने जन्म आपनार मन छे ते कांइ निराधारपणे स्वतंत्र रही शकतुं नथी, तेमज क्रियाओ पण मनना

आधारे उपजती नथी; किन्तु-" अधिकरणाश्रयं कार्यं "
अत्र अधिकरण शब्द सामान्येन आधारवाचक छे तो पण प्रकरणवशात् मननुं जे अधिकरण-आश्रयस्थान शरीर ते ज लेवुं. हेतु ए के-शरीरना आधारे ज मननी अवस्थिति होय छे अने क्रियाओ सर्वे शरीरद्वाराए ज बने छे. तत्त्व एटलो के-मनथी इच्छाओ थाय, पश्चात् शरीरद्वारा आत्मा चेष्टाओ-नवा नवा व्यापारो करे छे. अतः जे चित्त इच्छाओ करे छे ते ज चित्तनुं नाम अहीं धर्म जाणवो. एटले के-शरीरद्वारा जे जे कार्यो थाय छे ते धर्म न समजवो, किन्तु ते तो चित्तरूप धर्मनां व्यापारकार्यो जाणवा. आ परथी जेओ शरीरनी यथेष्ट अमुक जातनी क्रियाप्रवृत्तिने धर्मपणे निर्देश करे छे तेओ भ्रान्त छे-धर्मलक्षणथी अनभिज्ञ छे एटलो निर्णय समजवो. टुंकमां टीकाकारना मतथी दान, पूजा, सामायिक आदि ए बधुंये धर्मनो व्यापार छे. धर्म तो आंतरनुं जे तथा-प्रकारनुं मन ते जाणवो. छतां आ क्रियाओने धर्मतया प्राज्ञपुरुषो व्यवहार करे छे ते तो धर्मनो क्रियामां कारणनो उपचार करीने ज, एटले कारण कार्यने जरुर पेदा करे. जे कारण कार्यने पेदा न करे ते कारण ज न कहेवाय. आथी जेओ क्रियाप्रवृत्ति विना अथवा क्रिया अंध छे एम कही क्रिया नकामी जणावी स्वात्माने मननी पवित्रता मात्रथी धर्मी माने छे तेओ पण नितान्त भ्रान्त छे एम समजवुं, कारण अहीं तो टीकाकार, क्रियोत्पादक एवुं जे मन तेने ज धर्म जणावे छे. प्रथम कह्या प्रमाणे अहीं विशेषणसमास स्वीकारवाथी 'चित्त' ए विशेषपदार्थे

अने 'धर्म' ए विशेषण पदार्थपणे स्थिर थाय छे. एटले अहीं जे जे विशेषणो आप्या छे ते सर्वने 'चित्त'नी साथे घटाववा अर्थात् आ विशेषणो चित्तने सम्यक्तया लागु थइ शके छे. यदि आ प्रमाणे समास न स्वीकारता "चित्तात्प्रभवतीति चित्तप्रभवः" "चित्तथी-मनथी जे पेदा थाय ते चित्तप्रभव" धर्म जाणवो. ए रीते कर्मधारय समास स्वीकारीए तो 'धर्म' विशेष्य अने चित्त विशेषण थाय. आम थवाथी श्लोकोक्त सर्व विशेषणो 'धर्म'ने ज लागु करवा जोइए. फरी यत् शब्दथी पण 'धर्म' पदनुं ग्रहण करवुं घटे. आ स्थितिमां श्लोकनो भाव दुर्गम्य थइ जाय छे एटले एके विशेषण 'धर्म' पदनी साथे बंधबेसतुं नथी-वधुमां क्लिष्टता प्राप्त थाय छे. आ दोषो उपजता होवाथी प्रारंभोक्त समास स्वीकारी व्याख्या समजाववी अनुकूल थइ शके छे.

"लक्षणमां वधारो"

उपर कथित लक्षणवाळो धर्म स्वीकारवाथी चोरी, झूठ, व्यभिचार, हिंसा आदि क्रियाने पण धर्मतया व्यवहार करवो जोइए, कारण के ते ते व्यवहारो पण मनथी ज पेदा थाय छे; मन विना एक पण विशिष्ट शुभाशुभ कार्य थतुं नथी. अतः ए आपत्तिने दूर करवा ग्रंथकर्ता उपरोक्त लक्षणमां वधारो करवानुं जणावे छे. "मलविगमेनैतत्खलु पुष्ट्यादिमद्देष विज्ञेयः" अत्र 'खलु' शब्द निश्चयार्थवाचक जाणवो.

एटले ' निश्चयेन राग, द्वेष, मोह आदि रहित मळो अने पुष्टि तथा शुद्धिमय एवुं जे चित्त ते ज धर्म विद्वानोए जाणवो' जे चित्तमांथी राग, द्वेष, मोहना भावो-विकारो वगरनी इच्छाओ जन्मे अने ते पण आगल जेनुं स्वरूप कहेवाशे तेवा प्रकारनी पुष्टि तथा शुद्धिमय होय ते ज ' चित्त ' ने अहीं धर्म मान्यो छे. अतएव धर्मनुं अव्याहत लक्षण आ प्रमाणे छेवटे सिद्ध थयुं " मलविगमेन पुष्ट्यादिवत् चित्त-प्रभवो धर्मः" " मळ रहित अने पुष्ट्यादिमय एवा चित्तनो जे आविर्भाव ते धर्म." आथी चोरी विगेरे विकारवाळुं मन मलरहित न होवाथी तेने धर्म न ज कहेवाय. निदान के-पवित्र चित्तनी वासनाओ, अध्यवसायो अने तज्जन्य पवित्र क्रिया-ओने ज वास्तव धर्म कही शकाय.

" धर्मलक्षण " (उपाध्यायजी)

" धर्मश्चित्तप्रभवः " ' चित्तथी उत्पन्न थाय ते धर्म ' चित्त-मनथी जे जे कार्यो प्रवर्ते तेनुं नाम अत्र धर्म जाणवो. एटले के-" चित्तात्प्रभवतीति चित्तप्रभवः " ए प्रमाणे कर्मधारय समास स्वीकारवाथी उपरोक्त अर्थ कथितपदनो प्राप्त थाय छे. परमार्थ ए के-खाली आशय वगरनी संमूर्च्छिम जेवी क्रिया ते अहीं धर्मतया अभीष्ट नथी गणी, खाली शून्य क्रिया ते तो अहीं एक व्यवहार तुल्य स्वीकारी छे. आ परथी अहीं आटलुं जाणवुं के मनना संकल्पपूर्वक आत्मानो जे अशुचि-निवृत्तिरूप व्यापार तेनुं नाम धर्म.

केवल संकल्पमात्रने उपाध्यायजी धर्मतया स्वीकारता नथी. आ व्याख्यामां 'यत्' शब्दनो 'धर्म' साथे संबंध करी उपाध्यायजी कहे छे के 'यतः धर्मात्' जे माटे धर्मथी, विहित क्रियानुं आचरण अने निषिद्ध क्रियानो त्याग तद्रूप क्रियानी प्राप्ति थाय छे. फरी मूलस्थ अधिकरण शब्द अधिकारवाचक छे. एटले क्रियारूप जे अधिकार तेना निमित्तथी--आश्रयथी भवि आत्माने संसारनी उदासीनता, विषयथी विमुखभावरूप कार्यो निष्पन्न थाय छे. मनथी धर्म, धर्मथी क्रिया, तथा क्रियाना आधारथी भवनिर्वेदरूपकार्योनो जन्म थाय छे; माटे अत्र 'चित्तप्रभवो धर्मः' ए रीते धर्मनुं लक्षण जाणवुं.

"विशेष कथन"

आ व्याख्यामां "यत्, अधिकरण, क्रिया, कार्य" आ शब्दोना संबंध माटे, तेना अर्थ माटे अन्यान्य कल्पनाओ के अधिक विचारो करवानी मुश्केलीओ नडती नथी. अहीं मार्गानुसारीनी जे प्रवृत्ति ते धर्म जाणवो. आ लक्षणवाळो धर्म मार्गानुसारीमां संभवे, परंतु अभव्य के दुर्भव्यमां आ धर्म न होय कारण के त्यां तो मनना धर्मीय संकल्पपूर्वक विहिताचरण अने निषिद्ध त्यागरूप क्रियानो संभव ज न होय.

"लक्षणवृद्धि"

आ 'धर्म' पण रागादि मलविकारो रहित अने पुष्टि शुद्धिवाळो ज जाणवो. एटले रागादि विकारवान्

चित्तना अभिप्रायपूर्वक जे क्रियाव्यवहार ते अहीं धर्मपणे स्वीकार्य नथी. निदान के–अत्र 'धर्म' पद विशेष्य होवाथी 'मलविगमेन पुष्ट्यादिमत्' ए शब्दो धर्म-पदना विशेषणपणे जाणवा. अतः आ व्याख्यापक्षमां "चित्तप्रभवः मलविगमेन पुष्ट्यादिमान् धर्मः" ए प्रकारे धर्मनुं अव्याहत लक्षण जाणवुं.

"तारवण"

सारांश के–उभय पक्षमां 'धर्म' ना लक्षणमां अने तेना परमार्थमां भेद नथी मान्यो, मात्र श्लोकोक्त पदोनो भाव क्यो निकाळवो ? समास क्यो लेवो ? अने विशेष्य विशेषणपणे क्या पदो स्वीकारवा ? अमुक शब्दनो कोना साथे संबंध जोडवो ? आटलो ज भेद पाड्यो छे. मूल वस्तुने बाधा न थाय तेवी रीते अन्यान्य युक्तिथी व्याख्याओ करवी तेमां शास्त्रीय विरोध आचार्योए मान्यो नथी. प्रथम व्याख्यामां मनने धर्म मान्यो छे अने मनोविचारजन्य क्रियाने उपचारथी धर्म कह्यो छे, ज्यारे उपाध्यायजी मनोविचारजन्य अध्यवसायपूर्विका क्रियाने विना उपचारे सीधी रीते धर्म कहे छे, आटलो भेद उभय पक्षमां छे खरो. बन्ने पक्षमां जे लक्षण धर्मनुं दर्शाव्युं छे ते एवुं छे के सर्वदर्शनमान्य थाय, कोइ पण दर्शनवाला गमे तेटली युक्तियोथी अत्रोक्त धर्मलक्षणनुं खंडन करवा समर्थ नथी; एवं आ लक्षण सर्वतो कल्याणप्रदाता पण

અવશ્યમેવ છે. અતઃ ધર્મ પરીક્ષક બુધજનોએ ધર્મ સ્વીકારવા પહેલા આ લક્ષણ ધ્યાનમાં રાખી તથાપ્રકારનો ધર્મ સ્વીકારવા પ્રયત્ન કરવો. એટલે જ્યારે આ લક્ષણ અવ્યાહત રીતે સમન્વિત થાય ત્યારે જ તે સત્ય અકૃત્રિમ ધર્મ છે એવું સમજવું. પરમાર્થ એ કે–આવો 'ધર્મ' સર્વજ્ઞપ્રવચન સિવાય અન્યત્ર પામવો અશક્ય જ છે.

"ધર્મ'ના લક્ષણમાં "मलविगमेन पुष्ट्यादिमद्" એ જણાવ્યું તો અહીં મલો ક્યા? અને ચિત્ત અથવા ધર્મની પુષ્ટિ–શુદ્ધિ તે કેવી રીતે? આ ભાવ દર્શાવવા શ્રોતાપ્રતિ આચાર્યશ્રી કથન કરે છે."

रागादयो मलाः
खल्वागमसद्योगतो विगम एषां ।
तदयं क्रियात एव हि
पुष्टिः शुद्धिश्च चित्तस्य ॥ ३–२ ॥

સૂત્રાર્થ—રાગ, દ્વેષ, મોહ આદિ મનના મેલો છે, આ મલોનો નિશ્ચયેન આગમ–સર્વજ્ઞવચનના સદ્વ્યાપારથી નાશ થાય છે; માટે સત્ક્રિયાથી જ આ મનની પુષ્ટિ–પુણ્યવૃદ્ધિ તથા ચિત્તની શુદ્ધિ–નિર્મળતા સુંદર રીતે બને છે.

" મનના મેલો "

સ્પષ્ટીકરણ—"रागादयो मलाः" શુદ્ધ પદાર્થને જે

अशुद्ध–अपवित्र करे ते मल. पवित्र वस्त्रने मट्टी, काजल आदि मलिन करे छे, मणि अने कांचनने माटी अशुद्ध करे छे माटे ते तेना मलो कहेवाय छे. एवं शुद्धभावस्थ आत्मा तथा मनने रागादिको मलीन–अपवित्र बनावे छे, अतः ते तेना मलो कह्या. " रंजनं रागः, द्वेषणं–कोपनं द्वेषः कोपः, मोहनं मोहः " जेनाथी आत्मा–चित्त रंगाय–खुशी थाय–प्रेमी बने ते, जेनाथी आत्मा–चित्त द्वेषी–क्रोधी बने–तपी जाय–अग्निस्वरूप धारण करे ते अने जेनाथी आत्मा–चित्त व्याकुळता पामे–लिपटाय जाय–मुग्ध बनी आसक्तिपूर्वक मूर्च्छा धारण करे ते अनुक्रमे राग, द्वेष तथा मोह आदि मलो विकारकारको जाणवा.

" मलनो प्रभाव "

जेम माटी आदि मलना संयोगथी मणि, कांचननुं असल स्वरूप ब्हार आवतुं नथी अने तेम थवाथी मणि अने कांचन माटी जेटला ज आदरणीय अने निर्मूल्य बराबर गणाय छे तथाप्रकारे अहीं आत्मा या चित्त ज्यां सुधी आ मलोनी संगतीमां रही रागी, द्वेषी, मोहीपणुं धारण करे त्यांसुधी आत्मा पोताना असल स्वरूपथी दूरतर ज रहे छे अने आत्मा आदरभावने कदापि पामतो नथी. ए तो ज्यारे माटी आदिना संगथी निर्मुक्त थाय त्यारे ज मणि अने कांचन अमूल्य पदार्थनी गणातरीमां आवे छे तथाप्रकारे क्षणे क्षणे प्रकटतो इष्ट–वल्लभ पदार्थोनो रागभाव, अनिष्ट पदार्थनो द्वेष-

भाव अने विषयो, लक्ष्मी, स्वजनो, शरीर आदिनो मोहभाव दूर करे–अल्प करे तो ज आत्मा आदर पामे–अमूल्य पदार्थनी पंक्तिमां आवे. परमार्थ ए के–आत्मा असलथी सर्व पदार्थनो साक्षात् प्रकटकर्ता, सर्वनो द्रष्टा, अनंत अनिरूपम सुखनो भोक्ता, अनंत उपमातीत बल धारणकर्ता, केवल सत्–चित्–आनंद ए त्रिपुटीनो मालिक, दुःख, क्लेश, विषयविकार रहित एक अलौकिक ज्योतिरूप पदार्थ छे. रागी, क्रोधी, मोही आदि भावो आत्माना नथी परंतु अनादिथी आ सर्व विकारो–मलो आत्मापर घेरो नांखीने पड्या छे, जेथी–"जेम सिंहनुं बच्चुं माता मरी जवा पछी शियालना समूहमां उछरी मोटुं थवा पछी पण शियालना समागमथी पोते सिंह–शृगालशत्रु छतां स्वात्माने शियालपणे ज मानवा लाग्युं" तेम आ आत्मा पण ते ते मलोना संसर्ग–एकाकार संबंधथी पोताने तथाप्रकारे रागी, द्वेषी, मोही, विषयीपणे माने छे. अतएव–आ विकारो आत्माने मलीन–अपवित्र भ्रान्तकर्ता होवाथी शास्त्रकर्त्ता महर्षियो तेओने मलतया व्यवहरे छे. आ मलोनुं विस्तृत स्वरूप शास्त्रोमां अनेक स्थले वर्णव्युं छे. अहीं तो मात्र श्लोकनो भाव देखाडवा पूरतो ज अमारो प्रयास छे. एटले कषायोना विस्तृत विचारमां उतरवुं ते ग्रंथनुं कलेवर वधारवा जेवुं होवाथी अमे नथी उतर्या अथवा ज्यां जेटला विवरणनी जरूर छे त्यां तेटलो विचार अवसरे आपवा अमे प्रयत्न साचववाशुं–साचव्यो छे.

"मलो धोवानो मार्ग"

मणि तथा कांचनने लागेल माटीरूप मल शास्त्र-अग्नि आदिनी क्रियाद्वाराए दूर थाय छे, एवं आत्मा-चित्तने लागेल पूर्वोक्त मलोनो दूर करवानो उपाय ग्रंथकर्त्ता जणावे छे. "आगमसद्बोगतो विगम एषां" 'जिनप्रणीत जे आगम तेना सद्बोध-सम्यग्ज्ञानथी आ मलोनो विगम-नाश थाय छे.' "शियालभूत सिंहने ज्यारे अन्य सिंहनो समागम थयो अने तेणे कह्युं के-भाइ! तुं पण मारा जेवो ज छे. आ टोळामां तुं क्यांथी भळ्यो? आ लोको तो आपणो खोराक छे. तने विश्वास न आवतो होय तो तुं विचारी जो के तारुं शरीर, वर्ण, आकृति, शब्द अने क्रियाओ आ लोकोथी केटला जुदा छे? आ वचन श्रवण कर्या पछी ज्यारे तेणे विचार्युं अने बराबर समजायुं त्यारे सिंहनाद कर्यो एटले पोताना स्वरूपने तेणे ओळखी लीधुं." ए ज रीते अहीं पण आत्मानुं अनादि शुद्धरूप अने रागादि भावोनो विकार आ बन्नेनी भिन्नता, कर्मोनी लीला अने स्वरूप, पुद्गल अने पोतानो भेद, ज्ञानादि गुणोनो चमत्कार, सन्मति तथा दुर्मतिना कारणो, उपादेय क्रियाओनुं आचरण, हेय भावोनो त्याग-आ सर्व पदार्थने प्रकांडतया जणावनार एवुं जिनभगवंतना आगमनुं ज्ञान आत्माने प्राप्त थवाथी पोतानुं कर्तव्य तेने समजाय छे. एटले आत्मा विहिताचरण अने निषिद्धना त्यागरूप क्रियामां प्रवर्तन करे छे, जेथी उपरोक्त मलोनो अवश्यमेव नाश ज थाय छे. निदान के-

आत्मा पोताना असल स्वरूपने समजी मलस्वरूपथी अलग थवा प्रयत्न करे छे. अतएव-' तद्यं क्रियात एव हि ' आ क्रियाद्वाराए ज मलो नाश थवाथी ' पुष्टिः शुद्धिश्च चित्तस्य ' चित्तनी पुष्टि तथा शुद्धि बने छे. अत्र पुष्टि अने शुद्धिनुं स्वरूप उत्तर श्लोकमां दर्शावशे ते अहीं जाणवुं अर्थात् पूर्व श्लोकमां ' पुष्ट्यादिमत् ' ए प्रकारे चित्तनुं विशेषण कह्युं हतुं तेमां पुष्टि-शुद्धि चित्तनी कया प्रकारे थाय ? ए शंकानो प्रत्युत्तर आ श्लोकना स्पष्टीकरणथी समजाइ जाय छे.

"मलोनो विगम थवाथी चित्तनी पुष्टि तथा शुद्धि प्रगटे छे ए भाव गत आर्यामां दर्शाव्यो. अहीं पुष्टि तथा शुद्धिनुं स्वरूप शुं ? आ शंसयने दूर करवा माटे अत्र आचार्यश्री पुष्टि अने शुद्धिनुं लक्षण दर्शावे छे."—

पुष्टिः पुण्योपचयः
शुद्धिः पापक्षयेण निर्मलता ॥
अनुबंधिनि द्वयेऽस्मिन्
क्रमेण मुक्तिः परा ज्ञेया ॥ ३-४ ॥

मूलार्थ—पुण्य-शुभकर्मनो उपचय-वृद्धि ते अत्रे पुष्टि, तथा पाप-अशुभकर्मनो क्षय-नाश थवाथी चित्तनी जे निर्मलता-स्वच्छता ते अहीं शुद्धि जाणवी. आ उभयना अनु-

बंध-परंपराथी अनुक्रमे आत्मानी उत्कृष्ट मुक्ति थाय छे ए तत्त्व जाणवुं.

" पुष्टि-शुद्धि लक्षण "

स्पष्टीकरण—" उपचीयमानपुण्यता पुष्टिः " अनुक्रमे पुण्य-सुखरूप फलप्रदाता कर्मनी वृद्धि तेनुं नाम अत्रे पुष्टि अभिप्सित छे, अने पूर्वबद्ध ज्ञानावरणीयादि सम्यग्ज्ञानादि गुणघातक कर्मनो अनुक्रमे क्षय थवाथी आत्मानी स्वच्छता ते अहीं शुद्धि मानी छे. तत्त्व ए के-पूर्व श्लोकमां दर्शाव्या प्रमाणे आत्मा सिद्धान्तज्ञानना संयोगथी पवित्र एवी दान, तप, शील, पूजा, इंद्रियदमन, कषायविजय, सामायक आदि क्रियाओनुं आचरण तथा हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन आदि पापक्रियानो त्याग करे. एटले आ क्रियाद्वाराए आत्मा अने तदाधारभूत चित्त बन्ने पवित्रतर थवाथी शुभ-पुण्यकर्मनो ज बंध करे छे, भविष्यमां जेथी सुख मळे तेवा ज कर्मो बांधे छे अने सम्यग्ज्ञानादि गुणोनो नाश करनार एवा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अंतराय, मोहनीय ए चारे घातीकर्मनो अनुक्रमे नाश करे छे. आथी आत्मा तथा तत्संबंधी चित्त उभय स्वच्छ-निर्मल थाय छे. अत्रे दर्शित चारे कर्म आत्माना मुख्य एवा ज्ञान, दर्शन, एकान्त शुद्ध स्वरूप तथा वीर्य गुणोनो नाशकर्ता होवाथी ते घातीकर्म कह्यां छे. अत्र क्रियाद्वारा पापकर्मनो नाश सर्वथा अथवा देशथी थाय ते उभयथा निर्मळता समजवी. आ स्थळमां मूळकर्ताए जे 'चित्त'नी निर्मळता

जणावी 'चित्त' शब्दनुं ग्रहण कर्युं छे आथी अत्रे चित्त शब्दथी भावमनरूप आत्मा ज जाणवो. 'चित्त' द्रव्य अने भाव एम बे प्रकारनुं कह्युं छे. आत्मा औदारिक आदि स्थूल देहना प्रयत्नथी विविध विकल्पो–विचारो करवा माटे मनो-वर्गणाना द्रव्योने ग्रहण करे छे जे द्रव्योवडे आत्मा अनेकधा विचारो करे छे. आ द्रव्यनुं नाम जैनशास्त्रकारो द्रव्यमन कहे अने विचाररूप अथवा विचारकर्ता आत्मा ते अहीं भावमन मान्युं छे, तेमां द्रव्यमन पुद्गलस्वरूपी होवाथी तेनी पुष्टि-शुद्धि दर्शाववामां कंइ तत्त्व नथी. मात्र विचाररूप जे भावमन तेनी ज पुष्टि अने शुद्धि कर्मनाशद्वारा थवाथी अहीं आ विचार-रूप भावमननुं ज ग्रहण कर्युं छे, परंतु द्रव्यमन लीधुं नथी. हवे आ पुष्टि तथा शुद्धिनुं फल उत्तरार्धथी आचार्यश्री जणावे छे.

"पुष्टि शुद्धिनुं फल"

उपरोक्त पुष्टि तथा शुद्धिनो अनुबंध–परंपरा चालवाथी अर्थात् प्रथम दर्शावेल क्रियाओमां निरंतर प्रवृत्ति करवाथी, कदापि क्रियामां त्रुटीयो न आववाथी, क्रियाथी भ्रष्ट मनने पण अनुसंधान करी पुनः क्रियामां दाखल करी अस्खलित क्रियाओ करवाथी आत्मा शुभकर्मनो बंध अने अशुभ–पाप-कर्मनो क्षय अधिकाधिक कर्ये जाय छे. आथी परिणामे आ जन्ममां के परजन्ममां अधिक शक्ति विस्तारी ते ज क्रियाना अभ्यासवलथी शुभाशुभ उभय कर्मनो सर्वथा नाश करी

मुक्तिस्थान आत्मा पामे छे. निदान के—आ जन्ममां यदि आ आत्मानी मुक्ति न थाय तो पण अभ्यास करेल ते ते क्रियाओथी उत्तर (पर) जन्ममां उच्च स्थान पामी त्यां तेने ते ज क्रियाना संस्कारो उदयमां आवे छे, अने फरी आ संस्कारनुं एटलुं उत्कृष्ट बळ आत्मा पामे छे के जेथी पोते सर्व कर्मनो क्षय करवाने समर्थ बने छे एटले आत्मा तात्त्विकी मुक्ति जरुर पामे छे. आ ज परमार्थ दशवैकालिकना चतुर्थ अध्ययनमां शय्यंभवसूरिजी मानकमुनिजीना कल्याण माटे बहु सुंदर रीते जणावे छे, जेनो टुंक भावार्थ पाठकोने उपयोगी धारी अमे अहीं आप्यो छे.

" क्रियानो अनुबंध "

" जो आत्मा जीवादिकनुं स्वरूप बराबर समजे तो पछी
" विषयभोगादिकथी अवश्य विरक्त थाय, एटले गमे तेवा
" सुंदर पण भोगोनो बाह्य–आभ्यंतर उभय रीते त्याग करे,
" अने आ त्याग–परिणाम प्राप्त थवाथी आत्मा अवश्यमेव गृह-
" संसारथी विमुख थइ अनगार–साधुपणुं स्वीकारे. साधुपणुं
" स्वीकार्या पछी स्वात्माना पूर्ण कल्याण माटे उत्कृष्ट संवर-
" मार्ग (जेथी नवा कर्म न आवे)मां आरूढ थइ असाधारण
" धर्ममां स्थिर थाय छे. आथी मिथ्यात्वभावथी पूर्वोपार्जित
" कर्मरूपी रजनो नाश करे छे. कर्मरजनो नाश करवाथी
" आत्मा सर्व पदार्थने प्रकाश करनारुं एवुं केवळज्ञान पामे छे,
" लोकालोकनुं स्वरूप जाणनार केवळज्ञानी जिनभगवंत बने
" छे. केवळज्ञानी थया बाद अवशेष कर्मनो सर्वथा नाश करवा

" माटे मन, वचन, कायाना योगोनो निरोध करी शैलेशि
" भाव पामे छे एटले समग्र कर्मथी छूटी सिद्धिस्थानमां चौद
" राजलोकना मस्तक भाग पर बीराजी शाश्वत एवुं सिद्धस्व-
" रूप प्राप्त करे छे." ए रीते उत्तरोत्तर पवित्र क्रियामां आगळ
" वधवाथी आत्मा आत्मानुं पूर्ण कल्याण करे छे ए ज वात
" संक्षेपमां अमे आगळ जणावी गया छीए. जेओ चारित्र-
" पतित थया होय तेना माटे पण कह्युं छे के-पच्छावि ते
" पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं । जेसिं
" पिओ तवो, संजमो अ खंती अ बंभचेरं च " ॥ १ ॥
" जे आत्माओ प्रथम चारित्रभ्रष्ट थया होय परंतु पाछळथी
" सन्मार्गमां आरूढ थइ आराधना पामे छे तेओ मृत्यु पामी देव-
" विमानोमां उपजे छे के जेओने तप, संयम, क्षमा, ब्रह्मचर्य
" आदि गुणो पर प्रेम होय छे. " परमार्थ ए के-उपरोक्त
क्रियाथी छेवटे देवलोकमां पण आत्मा जाय छे.

जेओ आ उपरोक्त पुष्टि-शुद्धिनो अनुबंध पामे तेओ मुक्ति पामे छे ए भाव गत श्लोकना अंतमां कह्यो, तो आ 'अनुबंध' कोण न पामी शके ? तेनो खुलासो ग्रंथकर्त्ता अत्रे जणावे छे.

न प्रणिधानाद्याशय-
संविद्व्यतिरेकतोऽनुबंधि तत् ॥
भिन्नग्रंथेर्निर्म्मल-
बोधवतः स्यादियं च परा ॥ ३-५ ॥

मूलार्थः—प्रणिधान आदि पांच धर्मना अध्यवसाय स्थानो आगल दर्शावे छे. आ अध्यवसायनो जेने बोध न होय तेओने आ पुष्टि-शुद्धिनो अनुबंध पण न होय, तेमज जेओए ग्रंथीभेद कर्यो छे अने उत्तम एवो शास्त्रनो बोध प्राप्त कर्यो छे तेओने तो आ पुष्टि-शुद्धिनो अनुबंध उत्कृष्टतया होय ज.

" अनुबंध साधनो "

स्पष्टीकरण —' पुष्टि तथा शुद्धि ' ना अनुबंधप्राप्तिनुं मुख्य साधन ' प्रणिधान ' विगेरे पांच आशयनुं ज्ञान अने अनुभव अहीं ग्रंथकर्ता दर्शावे छे. आ ' प्रणिधान ' आदि पांच अध्यवसायनुं स्वरूप अने तेना नामो शास्त्रकर्ता आगलना श्लोकोथी जणावशे. यद्यपि अंतःकरणथी उद्भवता विचारो अनेक प्रकारना कह्या छे तो पण धर्मक्रियाना पोषक अने वर्धक एवा सर्व अध्यवसायो पांच अध्यवसायनी अंतर्गत होवाथी विशिष्टपणे पांच ज अध्यवसायो जाणवा. अहीं आचार्यश्री जणावे छे के—आ प्रणिधान आदि अध्यवसायनुं प्रथम बराबर ज्ञान थाय अने त्यारपछी तेनो जेने योग्य रीते अनुभव थयो होय तेने ज आ दर्शित ' अनुबंध ' नो लाभ थाय. एटले के-जेने आ अनुभव नथी मल्यो तेने ते ' अनुबंध ' नो लाभ न ज थाय. अतः टीकाकार पण मूलस्थ ' संवित् ' पदनी व्याख्यामां " संवित् संवित्तिः संवेदनमनुभवः " संवित्

एटले ज्ञान, संवेदन-अनुभव-आ उभयनो ज्यां 'व्यतिरेक' अभाव होय त्यां पुष्टि-शुद्धिना अनुबंधनो पण अभाव जाणवो -एवो भाव देखाड्यो छे. परमार्थ ए के-प्रथम हृदयनी कांइक स्वच्छता थाय त्यारपछी ज पवित्र एवा आ अध्यवसायोनो आविर्भाव थाय, माटे आ आशयो प्राप्त करवा पहेला हृदयना दुष्ट मिथ्यात्व आदि मलो साफ करवा प्रयत्न करवो उचित गणाय. दुष्ट मिथ्यात्व आदि मलनो नाश तीव्र भयानक एवा रागद्वेष आदि भावो ज्यां सुधी घर करीने बेठा होय त्यां सुधी तो न ज थाय, माटे शास्त्रकर्ता आ 'अनुबंध' कोण पामी शके ? एनो खुलासो उत्तरार्धथी जणावे छे.

"ग्रंथीभेद"

"भिन्नग्रंथेर्निर्मलबोधवतः" ग्रंथीनो भेद जेणे कर्यो होय अने निर्मल बोधवान् जे होय तेने "स्यादियं च परा" आ उत्कर्षवती 'अनुबंधश्रेणी' नी प्राप्ति थाय. अत्र ग्रंथीभेदनुं स्वरूप आ रीते जाणवुं. समकित-शुद्ध मान्यता प्रति जेओ वळ्या होय अथवा वळवा तैयार होय-थशे तेओ ज आ ग्रंथीभेद करे, सिवाय कोइ पण न करे. आत्मा अनादिथी मिथ्यावासनाथी आकंठ घेरायेल होवाथी सत्य पदार्थनुं ज्ञान अने मान्यता करी शकतो नथी, अतएव जे आत्मा प्रथम तो आ संसारमां रुलतो रुलतो अने अनंत कष्टो भोगवतो थको जेम पर्वतथी उतरती नदीना जलप्रवाहमां तणाता अथडाता-अथडाता पथ्थरो स्वयमेव चोखूणा, त्रिखूणा, गोळ थइ जाय छे

तथाप्रकारे यथाप्रवृत्तिकरण आत्मा पोताना स्वाभाविक अपूर्व वीर्यबलथी आयुष्य सिवायना सात कर्मोनी बृहत् स्थितिनो नाश करी मात्र पल्योपमना असंख्यात भागन्यून एक कोटाकोटी सागरोपम जेटली स्थितिवाला कर्मोने करी मूके. अहींथी आगळ वधवा जेटलुं बल जेओमां नथी होतुं, तेओ तो अहींथी ज पाछा पडी जाय छे अने घणाओ अहीं ज उभा रहे छे, कारण के आ स्थलमां दुर्भेद्य वंशनी गांठ जेवी कठोर रागद्वेष परिणतियो उपस्थित थाय छे जेथी आत्मा पाछो पडी जाय छे. आने ज महर्षियो ग्रंथी कहे छे. अभवि आत्माओ अहीं सुधी अनंतीवार आवी आवीने पाछा वळी गया छे, एवं अहीं भवि अभवि असंख्यकाल यावत् स्थिर पण थाय छे यावत् अभवि तो चारित्र धारण करी अपूर्ण एवा दशपूर्व पर्यंतनो अभ्यास पण करे छे, छतां तेओना ज्ञानने मिथ्याज्ञान कह्युं. दशपूर्व अने चौदपूर्वनो अभ्यास तो समकितीने ज होय. " चउदस दस य अभिन्ने नियमा सम्मं तु सेसए भयणा तु " हवे कोइ कोइ भवि आत्माओ तो अपूर्वकरण–अद्भुत पराक्रमवडे उपरोक्त रागद्वेषनी ग्रंथीने भेदी नांखी मिथ्यात्वस्थितिना उदयकाल संबंधी अंतर्मुहूर्त्त काल जेटला भोग्यकर्मने छोडी, त्यारपछीना भविष्यमां उदय आववार एवा अंतर्मुहूर्त्तकाळ जेटला ज मिथ्यात्वकर्मना प्रदेशोने नाश करी शके एवुं 'अन्तरकरण' आत्मा अनिवृत्ति नामे कोइ सर्वोत्तम बलवडे रचे छे. अहीं

'अन्तरकरण' एटले अंतर्मुहूर्त यावत् मिथ्यात्वकर्मने सर्वथा दबावी राखवा ते. आ अन्तरकरणना पहेलाना टाइममां मिथ्यात्वनो उदय होवाथी आत्मा मिथ्यात्वी जाणवो अने अन्तरकरणना प्रथम समयथी ज मिथ्यात्वनो उदय न होवाथी आ समये आत्मा 'उपशम' नामे कषाय अने मिथ्यात्वकर्मना उदयाभावरूप समकितने पामे छे, एटले आत्मा साची मान्यता—वीतराग धर्मनो बराबर आदर करे छे.

" बे—पक्षो "

आ स्थानमां बे मतो छे—एक तो आगमपक्ष अने बीजो कर्मग्रंथनो पक्ष. कर्मग्रंथकार जणावे छे के—यदि अनादि मिथ्यात्वी आत्मा समकित नवेसरथी पामतो होय तो ते अन्तरकरणे करी दबावेला कर्मोनो शुद्ध, अर्धशुद्ध, अशुद्ध एवा त्रण पुंज करी उपशम समकित पाम्या विना ज 'क्षायोपशमिक' समकित पामे छे, शिवाय अन्य जीव एटले जे पहेला समकित पाम्यो हतो अने पछी पडी गयो छे ते जीव समकित पामतो होय तो पुंजत्रयनी रचना कर्या विना ज प्रथम तो उपशम समकित पामे छे; माटे आ जीव उपशम समकितथी पडीने नियमा मिथ्यात्वे जाय छे. आगमिक पक्षमां तो पूर्वोक्त रीते उपशम समकित पाम्या पछी आत्मा नियमेन मैणमय कोद्रवाने साफ करवथी कोद्रवा शुद्ध, अर्धशुद्ध अने अशुद्ध एम त्रण प्रकारे विभक्त थाय तथाप्रकारे अध्यवसायबळथी मिथ्यात्वना प्रदेशोने साफ करतो शुद्ध, अर्धशुद्ध,

अशुद्ध ए रीते त्रण प्रकारे प्रदेशोनो भाग पाडे छे. आनुं ज नाम त्रिपुंज शास्त्रो जणावे छे, एटले उपशमथी पड्या पछी मिथ्यात्व, मिश्र अथवा क्षायोपशमिक भावने आत्मा पामे छे.

"निर्मलबोधवान्"

बस आ प्रमाणे जेओए ग्रंथीभेद कर्यो होय एटले तेओने ज अर्थात् ग्रंथीभेद कर्या पछी अवश्येन आत्मा अनिवृत्ति नामाकरणथी--अध्यवसाय विशेषथी समकित पामे छे. अतः आ आत्माने ज 'प्रणिधान' आदि अध्यवसाय स्थाननो बोध तथा तेनो अनुभव निश्चयथी थाय छे. अहीं 'भिन्नग्रंथेः' ए व्यच्छेदक विशेषण होवाथी आ भिन्नग्रंथी सिवायना आत्माने आ प्रणिधानादि अध्यवसायो न होय, एवं आत्मा एवो जाणवो के-'निर्म्मलबोधवतः' निर्मल-सुंदर हेयोपादेय संबंधी बोधवान् जे होय. परमार्थ ए के-जेने जिनप्रवचन प्रतिपाद्य तत्त्वनुं ज्ञान प्राप्त थयुं होय तेने ज आ अध्यवसायो आवे, एटले खाली भिन्नग्रंथीने ज उपरोक्त आशयोनी प्राप्ति न थाय किन्तु निर्मलबोधवान् पण होवो जोइए. आ परथी जेओ शास्त्रीयज्ञानवान् न होय अने भिन्नग्रंथी होय तेओ यदि गीतार्थ आज्ञानुसारी अथवा गुर्वाज्ञाप्रमाणे प्रवृत्ति-निवृत्तिक्रियाकारक होय तो तेओ पण परमार्थतया निर्मलबोधवान ज होवाथी तेओने आ अध्यवसायो पेदा थाय तेमां कांइ पण विरोध न जाणवो:-कारण के माऱुष मातुष जेवा मुनिप्रवरो पण मोक्षे गया

छे एम शास्त्रमां खुल्लुं जणाव्युं छे आटलो अत्रे अधिक खुलासो जाणवो. हेतु ए के–निर्मलबोधनुं मुख्य फल अध्यवसायो अहीं कायम होवाथी ते विमलबोध ज कहेवाय. आवा आत्मा माटे ग्रंथकर्ता जणावे छे के–'स्यादियं च परा' 'प्रणिधान' आदि आशय संबंधी अनुभव प्राप्ति आ आत्माने उत्कृष्ट–प्राधान्यतावाली होय, अतः आ आत्माने ज पुष्टि-शुद्धिनो खास अनुबंध लाभ थाय.

" आटलुं जणावी हवे 'प्रणिधान' आदि आशयोनी नामग्रहणपूर्वक संख्या ग्रंथकर्ता जणावे छे. "—

प्रणिधिप्रवृत्तिविघ्न—
जयसिद्धिविनियोगभेदतः प्रायः ।
धर्म्मज्ञैराख्यातः
शुभाशुयः पञ्चधाऽत्र विधौ ॥ ३–६ ॥

मूलार्थ—पुष्टि–शुद्धिनी अनुबंधविधिमां मुख्य हेतु अने पवित्र एवा पांच आशयो–आत्माना विशिष्टाध्यवसायो धर्मज्ञ महापुरुषोए आ प्रमाणे कह्या छे. प्रणिधि, प्रवृत्ति, विघ्नजय, सिद्धि अने विनियोग ए पांच शुभ आशयो जाणवा.

" स्पष्टीकरण "

आ आर्यानो भाव स्पष्ट ज छे. पुष्टि तथा शुद्धिनो अनुबंध पवित्र एवा शुभ परिणामोने आधारे ज थाय एम दर्शाव्युं हतुं. अतः आ परिणामो माटे अहीं ग्रंथकर्त्ता

कहे छे के धर्मज्ञ–धर्मना सत्य मर्मने जाणनार एवा पूर्व महा-पुरुषोए शास्त्रोमां पांच प्रकारना शुभ परिणामो जणाव्या छे. यद्यपि शुभ परिणामो असंख्य प्रकारना कह्या छे, तो पण अहीं जे पांच परिणामो दर्शाव्या छे तेमां ते सर्व परिणामोनो समावेश थइ जवाथी पांचथी अधिक परिणामो विशेष-रीत्या गण्या नथी. एवं 'पुष्टि–शुद्धि' नो अनुबंध पण आ पांच आशय सिवाय अन्य आशयोथी थतो नथी एवो धर्मज्ञ पुरुषोनो अनुभव होवाथी मूलमां मूलकर्ताए 'प्रायः' पद आप्युं. वहोळताये प्रणिधि, प्रवृत्ति, विघ्नजय, सिद्धि, विनियोग–आ पांच आशयो ज अत्र अनुबंधविधिमां मुख्य कारणो जाणवा. परमार्थ ए के–जेने आ पांच आशयोनो लाभ थाय तेने ज पुष्टि–शुद्धिनो अनुबंध प्रवर्ते, एटले पुष्टि–शुद्धिनो अनुबंध प्राप्त करवा आ पांच आशयोनुं ज्ञान करी तेने मेळववा प्रयत्न करवो विवेकीनुं कर्तव्य गणाय. अहीं जे पांच आशयोना नामो दर्शाव्या तेमां तथाप्रकारना गुणो अने स्वरूप होवाथी तेमज अन्याशयोमां तथाप्रकारनी विशिष्टता न होवाथी पण अत्रे ए ज पांच आशयो दर्शाव्या आटलो विशेष खुलासो जाणवो.

"गत आर्यामां नाममात्रथी दर्शावेल पांचे आशयोनुं क्रमशः स्वरूप दर्शावता ग्रंथकर्ता प्रथम 'प्रणिधान' नामे आशयनुं स्वरूप एक आर्याथी बहु सुंदर अने स्पष्ट रीते दर्शावे छे."

प्रणिधानं तत्समये
स्थितिमत्तदधः कृपानुगं चैव ॥
निरवद्यवस्तुविषयं
परार्थनिष्पत्तिसारं च ॥ ३–७ ॥

मूलार्थ—धर्म संबंधी जे जे मर्यादा-प्रतिज्ञा स्वीकारी होय तेमां जे अविचलपणुं अने पोताथी नीची स्थितिना-धर्मप्रतिज्ञाहीन मनुष्यो उपर अनुकंपा करवी, एवं जे कार्योथी अन्यनो उपकार थाय अने विशेष पाप न होय, तथा अंगीकृत धर्ममर्यादाने अनुकूल ज वस्तुनुं ध्यान बन्या रहे, एवा परिणामने 'प्रणिधान' नामे आशय कह्यो छे.

"प्रणिधान"

स्पष्टीकरण—'प्रणिधानं प्रणिधिः' प्रणिधान ते ज प्रणिधि. अहीं प्रणिधानतो सामान्य अर्थ एटलो ज के अंतःकरणनी मक्कमता, एटले पवित्र हृदयनी खास दृढता. आ दृढता पण अनेक प्रकारनी छे तो ते दृढता केवी ? अने क्या क्या प्रकारनी ? अहीं समजवी, एवं आ आर्यामां 'प्रणिधान' ए विशेष्य पद अने ते सिवायना अन्य तेना विशेषण पदो छे. अतः आ 'प्रणिधान' पदना विशेषणपणे अन्य पदोनी व्याख्या करवानुं खास ध्यान राखवुं, एटले प्रणिधान नामे आशय कोने समजवो ? ते विशेषणद्वारा ग्रंथकर्ता समजावे छे.

'तत्समये स्थितिमत्' समयः—अधिकृत धर्मस्थान संबंधी जे प्रतिज्ञा अर्थात् जेनाथी आत्माने धर्मलाभ थाय तेवा प्रकारनी धर्म संबंधी जे प्रतिज्ञा तेमां, जेम 'मांस अमुक काल या जींदगीपर्यंत न खावुं' एवो धर्म जाणी आत्मा प्रतिज्ञा—पच्चख्खाण—सोगन—नियम करे तो आ सोगन धर्मकारक होवाथी धर्म संबंधी प्रतिज्ञा कहेवाय. एटले आ अने तेवी ज अन्य धर्म्य प्रतिज्ञाओ स्वीकार्यां पछी ते ते प्रतिज्ञाओ पालवामां अनुकूल एवा जे विचारो, अथवा स्वीकृत प्रतिज्ञाथी आत्मा गमे तेवा संयोगमां पण चलायमान न ज थाय. उपाध्यायजी महाराज कहे छे के—जे विषय संबंधी प्रतिज्ञा करी तत्विषयनी सिद्धि न थाय त्यां सुधी जेमके—'हुं आजथी चार मास सुधी जिनपूजा कर्या विना भोजन नहीं करीश.' बस आ प्रतिज्ञा स्वीकार्या पछी एवा प्रबल संयोगो आवी लागे छे के पूजा करवानो समय न ज मले; छतां आत्मा पूजाना संस्कारोथी एवो तो टेवाइ जाय के गमे तेटलो टाइम थइ गयो होय अने भूख्या मरवानो समय आवी लागे तथापि भूख्या मरवुं ए स्वीकारी ले परन्तु प्रतिज्ञानो भंग न ज करे. प्रतिज्ञा पूरी न थाय त्यां सुधी आवी दृढता सर्वांशे कायम राखवाना जे शोभन विचारो ते अंतःकरणनी मक्कमता.

"तदधः कृपानुगं चैव"—'प्रतिपन्न धर्मस्थानथी वंचित जनो पर अनुकंपा तत्पूर्वक.' उपर दर्शाव्या प्रमाणे जे जे धर्मविषयक प्रतिज्ञाओ आपणे स्वीकारी होय तेने टका-

वधाने तेवा तेवा अनुकूळ विचारो ज आपवा ;विचारी आत्माने दृढ बनावी तथाप्रकारे धर्म्य प्रतिज्ञामां निश्चलता पामीए. आपणी आ स्थितिना मुकावले आपणाथी अन्य जनता उतरती देखाय त्यारे ते गुणहीन नीची कोटीना छे एम धारी तेना पर यदि द्वेषबुद्धि अथवा घृणा के निंदकपणुं जो अनुभवे तो ते ' प्रणिधान ' नामक आशय न कहेवाय. हेतु ए के-धर्म्य प्रतिज्ञा स्वीकार्या छतां जे आत्मा पोताने ते धर्म्यस्थानना बहाना नीचे गर्वी, द्वेषी बनावी अधिक पाप पेदा करे छे ते धर्मस्थाननी साध्यता चूकी जाय छे. अतः आ 'प्रणिधान ' आशय संबंधी विशेष खुलासो करवा ग्रंथकर्ता अन्य विशेषण दर्शावे छे. आपणाथी धर्मस्थानवंचित या पतित एवी अन्य जनताने देखी तेना पर अनुकंपा धारवी. जेमके-' हुं पूजा कर्या विना भोजन करतो नथी अने तेवी प्रतिज्ञा में लीधी छे. तमे शुं करवाना ? तमारामां क्यां तेवी शक्ति छे ? तमारो तेवो पुण्योदय क्यांथी होय ? तमे अधर्मी पापी छो. तमाराथी थोडो पण धर्म थतो नथी. धिक्कार छे तमारा जन्मने !' ए रीते गर्व के द्वेष न करवो किन्तु ' अहो आ लोको मनुष्यजन्म, बुद्धि, बल, आरोग्यता विगेरे पामवा छतां कांइ पण धर्मसाधन करता नथी. आ लोकोनी शी दशा थशे ? आ लोकोनो कांइ दोष नथी. तेओ तो कर्माधीन छे.' आ प्रमाणे तेओना पर अनुकंपा ज भाववी. आवी अनुकंपा सहित धर्मविषयक प्रतिज्ञामां हृदयनी जे दृढता-परिणति ते ज अत्र ' प्रणिधान ' आशय कह्यो छे.

आ आशयनी प्राप्ति जेओ अतिपापकारी आरंभोमां सर्वदा प्रवर्तनशील होय अने पोतानो ज स्वार्थ मुख्य रीते साधवामां जेओनी प्रधान दृष्टि होय तेओने तो न ज थाय, कारण के आवी दृष्टिवाळामां वहोलताये अनुकंपाबुद्धिनो सर्वथा लोप ज थयो होय छे; अने ज्यां अनुकंपा न होय त्यां धर्म ए खाली नाममात्र ज समजवो. अने अहीं अनुकंपा तो खास मुख्य मानी छे. अतः ग्रंथकर्ता उत्तरार्धथी अधिक खुलासो करे छे के–'निरवद्यवस्तुविषयं, परार्थनिष्पत्तिसारं च' 'परोपकारसिद्धि प्रधान अने निर्दोष पदार्थ संबंधी जे विचार' जे कार्यो करवाथी पोते अंगीकृत धर्ममर्यादानुं पोषण थाय एटले नित्य एवा ज पदार्थनुं ध्यान रहे के स्वीकृत धर्म संबंधी प्रतिज्ञानो कदापि भंग न थाय तथा प्रत्येक कार्यो अने तत्संबंधी विचारोद्वारा अन्यनो मुख्यतः उपकार ज थाय किन्तु पोतानो स्वार्थ मुख्य न सधाय एवी रीते पापनो परिहार करी प्रधान कार्यो करवाने हम्मेशा ध्यान करवुं–विचारो करवा. आवा विचारोने टुंकमां धर्म संबंधी स्वीकृत प्रतिज्ञामां दृढता अने गुणहीन जनो पर अनुकंपाबुद्धिपूर्वक परोपकारप्रधान पापनिर्मुकत वस्तुओनुं हम्मेशा चिंतवन–ध्यान–आने ज शास्त्रकर्ता 'प्रणिधान' आशय जणावे छे.

" 'प्रणिधान' नामे पहेला आशयमां केवल मानसिक सुंदर बुध्धि दर्शावी. हवे आवी बुध्धिनो जन्म पछी तेना फलरूप अने प्रथम आशय पछी जेथी सुंदर

आचरण प्रकटे के जेने प्रत्यक्ष व्यवहारमां देखी शकाय एवो 'प्रवृत्ति' नामे बीजो आशय दर्शावे छे."

तत्रैव तु प्रवृत्तिः
शुभसारोपायसंगतात्यन्तम् ॥
अधिकृतयत्नाति-
शयादौत्सुक्यविवर्जिता चैव ॥३-८॥

मूलार्थः—स्वीकृत धर्म संबंधी प्रतिज्ञामां पवित्र अनें उत्कृष्ट एवा उपायो—साधनो योजवामां अतिशयेन निपुण एवो जोरदार प्रयन्त—उद्यम करवो, तथा मानसिक उत्सुकता अथवा अकाले ते धर्म संबंधी फलप्राप्तिनी वांच्छा रहित एवो जे प्रयन्त करवो तेने अहीं 'प्रवृत्ति' जाणवी.

"प्रवृत्ति"

स्पष्टीकरण—शोभन—अशोभन प्रवृत्तिनुं मूल शोभन—अशोभन विचारश्रेणी सिवाय अन्य नथी. अतः प्रवृत्ति उत्पादक 'प्रणिधान' नामे पहेलो आशय जणाव्या पछी आ आर्यामां 'प्रवृत्ति'नुं स्वरूप दर्शावे छे. अहीं पण 'प्रवृत्ति' ए विशेष्य अने अन्य तेना विशेषण पदो जाणवा. दुनियाना सर्व व्यवहारने लोको प्रवृत्ति ज कहे छे अतः अत्र कया प्रकारनी प्रवृत्ति समजवी? आनो खुलासो आचार्य जणावे छे. 'तत्रैव तु' पूर्वे प्रणिधान नामे आशयना अधिकारमां जे धर्मविष-

यक प्रतिज्ञानी दृढता अने तत्संबंधी विशेष आशयनी शुध्धि दर्शावी ते ज आशयशुध्धिपूर्वक धर्म संबंधी प्रतिज्ञामां 'प्रवृत्तिः' गमन करवुं. परमार्थ ए के–अहीं प्रवृत्ति मात्र शून्यचित्तवाली क्रियारूप न लेवी, किन्तु अभिप्रायपूर्वक बाह्यक्रियारूप आत्मानी विशिष्टि चेष्टा तद्रूप प्रवृत्ति अत्र जाणवी. पूर्वे कह्या प्रमाणे "हुं आजथी हम्मेशा पूजन करीश" आ प्रमाणे प्रतिज्ञा गुरुसमक्ष स्वीकार्या बाद ज्यांसुधी आ प्रतिज्ञानो समय पूरो न थाय त्यांसुधी ते प्रमाणे वर्तन कर्या ज करवुं, परंतु अंतरमां मात्र प्रतिज्ञा लेवानी इच्छा उद्भवी ते इच्छारूपे ज बन्या रहे तेम नहीं अथवा तो लीधा पछी तेना पालन प्रति बेदरकारी या तो एक वेठरूपे पूरी थाय तेवी नहीं परंतु "शुभसारोपायसंगतात्यंतम्" 'शुभ–सुंदर, सार–उत्कृष्ट एवा उपायोवडे अत्यंत युक्त' स्वीकृत धर्म संबंधी प्रतिज्ञाना पालन माटे हम्मेशा जेम बने तेम शोभन अने उत्कृष्ट एवा उपायो बुद्धिबलवडे योजी योजीने आदरपूर्वक अत्यंत क्रियानुं आचरण करवुं. एटले जे जे प्रतिज्ञाओ स्वीकारी होय तेना पालननी वृद्धि माटे क्या क्या साधनोनी अपेक्षा रहे छे ? तेमां केवा विवेकनी जरुर रहे छे ? आवा आवा विचारो करी, धर्मज्ञ पुरुषोने पूछी पूछी तथाप्रकारे सुंदर आचरण करवुं. 'गतानुगतिक' न्याये अथवा पहेलाथी ओघबुद्धिए जेम क्रिया करीए तथाप्रकारे कर्या करवी, अगर तो कोइ सुधारवानुं कहे तो पण न सुधारता पोतानुं ज धार्युं करवुं

आवी प्रवृत्ति अत्र अपेक्षित नथी; कारण के आवी क्रिय तो संमूर्छिम जेवी अंध अने मूढ क्रिया ज कही छे. अतएव उपाध्यायजी स्वकृत टीकामां विशेष खुलासो करे छे-'उपायः प्रेक्षोत्प्रेक्षादिः' अत्र उपाय ते प्रेक्षा-सामान्यथी धर्मप्रतिज्ञा माटे विचारो करवा, आलोचन करवुं, दृष्टिद्वारा जीवोनी तपास करवी. उत्प्रेक्षा-विशेषपणे विचारो करवा, रजोहरण आदि साधनोवडे पडिलेहणा करवी.

फरी-' अधिकृतयत्नातिशयात् ' अंगीकृत धर्ममर्यादानुं पालन करवा माटे प्रयत्न-उद्यम एटलो होय के जेमां लेशमात्र प्रमादने अवकाश न मले अर्थात् प्रमादने दूर करी विशिष्ट रीते प्रतिज्ञा-पालन माटे उद्यम करवो. जेमके-अमुक प्रकारनी धर्म संबंधी प्रतिज्ञा लीधा पछी आनुं पालन करवामां बिल्कुल प्रमाद न करवो, किन्तु दिवसे दिवसे उद्यम अधिक ज जेमां कराय. आथी ज ' औत्सुक्यविवर्जिता चैव ' जे प्रवृत्ति-क्रियामां शीघ्रता-मननी उतावळ न होय अथवा इच्छानो वेग न होय तेवी, एवं बीजा अर्थमां आ क्रिया कर्या पछी अनवसरे आ क्रियाना फलनी इच्छा करवी तेणे करीने जे वर्जित होय. आवी प्रवृत्ति ते अत्र ' प्रणिधान ' नामे आशयना फलरूप सत्य प्रवृत्ति जाणवी. अनवसरे फलनी इच्छा करवी ते पण एक आर्त्तध्यान कह्युं छे-' विपरीतं मनोज्ञानाम् ' ' इष्ट पदार्थोनी इच्छा ते आर्त्तध्यान ' 'निदानं च' विषयसुख माटे जे प्रार्थना ते पण आर्त्तध्यान,

अतएव अहीं फलनी इच्छा रहित एवी प्रवृत्ति जणावी. परमार्थ ए के-कोइ पण धर्मसाधनमां फलनी इच्छा कर्या विना अने मन तथा कायानी उत्सुकताने छोडीने प्रवृत्ति करवी, तो ज ते प्रवृत्ति नामे पवित्र एवो धर्म संबंधी बीजो शुभ आशय कहेवाय; अन्यथा ते धर्म नहीं किन्तु एक जातनी धमाल ज कहेवाय. अत्रे आ सर्व प्रवृत्ति क्रियारूप छतां तेमां आशयनी मुख्यता होवाथी अहीं तेने आशय कह्यो छे.

"प्रवृत्ति नामक आशयपूर्वक क्रियामां प्रवर्तनारने विघ्नो कदाचित् आवे खरा, अतः प्रवृत्तिरूप आशय साथे संबंध राखनार 'विघ्नजय' नामे त्रीजा आशयनुं स्वरूप ग्रंथकर्त्ता दर्शावे छे."

विघ्नजयस्त्रिविधः

खलु विज्ञेयो हीनमध्यमोत्कृष्टः ॥

मार्ग इह कंटक-

ज्वरमोहजयसमः प्रवृत्तिफलः ॥३-९॥

मूलार्थः—प्रवृत्तिरूप आशयना फलने अर्पनार एवो, मार्गमां कंटक, ज्वर तथा मोहजयनी माफक जघन्य, मध्यम अने उत्कृष्ट एम त्रण प्रकारनो निश्चयथी विघ्नजय अत्रे जाणवो.

"विघ्नोनुं बल"

स्पष्टीकरण—पापक्रियामां प्रवर्तनारने कदाचित् विघ्नो न

आवे ज्यारे धर्मक्रियामां गमन करनारने बहुधा जरुर विघ्नो नडे छे खरा. " श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवंति महतामपि।
अश्रेयसि प्रवृत्तानां क्वापि यांति विनायकाः " ॥१॥
एटले जो प्रवर्तनार निर्बळ मननो होय तो ते क्रियाथी पाछो पडी जाय, अतः पोताना साध्यपर्यंत ते पहोंची शकतो नथी; माटे प्रवर्तनारे हिम्मतपूर्वक एवी रीते प्रवर्तवुं जोइए के गमे तेवा विघ्नो आववा छतां ते सर्वनो विजय करी पोताना साध्य प्रति बराबर पहोंची शकाय. ' प्रवृत्ति ' रूप आशयनुं फल विघ्ननो विजय करवाथी ज प्राप्त थाय. अन्यथा ' प्रवृत्ति ' ते अप्रवृत्तिभूत ज गणाय. अतः अहीं प्रवृत्ति नामे आशय कह्या पछी विघ्नजय नामे आशयनुं स्वरूप दर्शाव्युं छे. आ विघ्नजय नामे आशयनुं बल ज्यांसुधी आत्मा प्राप्त न करे त्यांसुधी उपर कहेला बन्ने आशयो नकामा जाणवा. अहीं क्रियामां प्रवर्तनार जघन्य, मध्यम, तथा उत्तम एम त्रण प्रकारना मनुष्यो होय छे. तेमां ' विघ्न आवशे तो ? ' एवा भयथी जेओ क्रिया न करे ते जघन्य, प्रवर्तवा छतां विघ्न आव्या पछी वचमां ज अटकी जाय ते मध्यम अने अनेक विघ्नो आववा छतां अचल रही सर्वनो विजय करी कार्य साधे ते उत्तम. "प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः, प्रारभ्य विघ्नविहता विरमंति मध्याः। विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः, प्रारभ्यमुत्तमजना न परित्यजन्ति" ॥१॥ एवी ज रीते धर्मकार्योमां गति करनारने जे विघ्नो आडा

आवे छे तेने अहीं ग्रंथकार त्रण विभागोमां वहेंची दृष्टांतो साथे घटना करी समजावे छे. 'विघ्नजयस्त्रिविधः' विघ्ननो जय त्रण प्रकारनो 'विज्ञेयः' जाणवो. 'हीन-मध्यमोत्कृष्टः' हीन, मध्यम अने उत्कृष्ट. अत्र आर्याना पूर्वार्धमां 'खलु' ए वाक्यनी शोभा अर्थे आप्यो छे अथवा तेनो निश्चय एवो अर्थ करीए तो अहीं विघ्नो त्रण प्रकारना ज छे, ए प्रमाणे भावार्थ जाणवो. आटलुं कह्या पछी आ भावने समजाववा हवे ग्रंथकर्ता दृष्टांत कहे छे.

" विघ्न प्रकारो "

'मार्गे इह' इष्ट अर्थ माटे घणा मनुष्यो ग्रामांतरे जवा निकळ्या होय त्यां मार्गमां ज कांटाओ, बुखार, आंधी विगेरे कष्टो आवी पडे छे, छतां प्रबल मनुष्य आ सर्वनो विजय करी जेम इष्ट अर्थनी अवश्य सिद्धि करे छे तथाप्रकारे अहीं पण 'कंटकज्वरमोहजयसमः' कंटक समान हीनविघ्न, ज्वर समान मध्यमविघ्न अने आंधी समान उत्कृष्टविघ्ननो विजय करे ते जं स्वसाध्य स्थळे पहोंची शके.

" कंटकविघ्न "

परमार्थ ए के-मार्गे जवा नीकळेल मनुष्यने कदाचित् मार्गमां कांटाओ, कांकराओ, पत्थराओ पगमां खुंचे-लागे छतां कोइक हिम्मती अने समर्थ मनुष्य आ सर्वने अलग करी, सावचेती राखी, जोइ जोइने पग मूकतो जराये खेद न करतो पोताना स्थाने पहोंचे

छे, एवं अहीं पण स्वीकृत धर्मप्रतिज्ञाना पालन करवामां प्रवर्तेना-रने कदाचित् कांटां आदि समान ठंडी, गरमी, क्षुधा, पिपासा, डांस-मच्छर, याचना आदि परीसहो प्राप्त थाय, जे परीसहो आववाथी आत्मा त्रास पामे, कंटाळी जाय, चलितपरिणामी थाय, मेघकुमार मुनिनी माफक आर्त्तध्यान करे. अतएव धर्मस्थानथी आत्माने आ परीसहो यत्किंचित् खसेडनार होवाथी आ परीसहो हीनविघ्न कंटक तुल्य कह्या. हीनता एटला माटे के आ परीसहोनो आत्मा स्हेजे विजय करी शके छे. क स्वार्थ के लालचथी पण लोको आवा दुःखोने गणता नथी. जे लोको आ विघ्नोनो विजय करी आगळ वधे एटले पोतानी धर्मविषयक प्रतिज्ञानुं रक्षण करे, विघ्नोथी कदापि न डरे, किन्तु बहु आनंद साथे तेनी सामे खडा रहे ते ज योग्य छे.

" ज्वरविघ्न

तथा ते ज मनुष्य कांटा आदिथी नहीं डरतो आगळ वधता मार्गमां यदि तेने बुखार आवी जाय तो ते आगळ वधवामां हिम्मत हारी जाय छे. एटले आगल जवानी इच्छा छतां बुखारना कारणथी जइ शकतो नथी, छतां जवाने थोडुंघणुं साहस करे तो पण तेना पग बराबर चालता नथी. एटले कंटकविघ्न जीतवा पूरतुं जे बळ होय तेना करतां पण तीव्र अधिक बल ज्यारे होय त्यारे ज ते आगल वधी शके. एवं अहीं पण धर्मप्रतिज्ञा स्वीकार्या पछी कदापि शरीर संबंधी अनेक

व्याधियो आवी पडे. आथी धर्म आराधवानी इच्छा छतां ते रोगोना कारणे धर्मने पडतो मूके माटे आ विघ्नो विशिष्ट अंतरायभूत होवाथी मध्यम विघ्नो बुखार तुल्य कह्या; किन्तु जे पुरुष गमे तेवा व्याधिना समयमां पण पोतानी धर्मप्रतिज्ञाओ अचल राखी नित्य कर्तव्य नियमोमां खामी आववा न दे अने विशिष्ट उत्साहथी शुभ धर्मनी आराधना करे तो ज दर्शाव्या प्रमाणे कंटकतुल्य हीनविघ्नजय अने ज्वरतुल्य मध्यमविघ्नजय नामे शुभ आशयनो आविर्भाव थयो छे तेवुं जाणी शकाय. आवुं अद्‌भूत बल प्राप्त थवाथी ज प्रथम कह्या प्रमाणे ' प्रवृत्ति ' नामक आशयनी सफलता थाय छे.

" मोहजयविघ्न "

फरी मार्गमां आन्धी, रजोवृष्टि, जलवृष्टि अने धूमस विगेरे होय तो ते उपरना बन्ने प्रकारना विघ्नो जीतवानुं सामर्थ्य छतां घणा माणसो पूर्व–पश्चिम विगेरे दिशाओ भूली जवाथी मार्गमां ज इधरउधर आथड्या करे छे, उलटा मार्ग पर चडी जाय छे अगर तो नाहिम्मत थइ बेसी जाय छे, पाछा फरी जाय छे; किन्तु विवेकी पुरुष आवा संयोगोमां पण विशिष्ट विचारो करी पोतानी निश्चल बुद्धिनी परीक्षाथी निडरपणे आगळ वध्यो जाय छे. अथवा बीजाओथी मार्गनुं ज्ञान करी तेनापर विश्वास राखी तीव्र उत्साहनुं अवलंबन करी मार्ग सन्मुख चाल्यो जाय छे तथाप्रकारे अहीं पण धर्ममार्गमां

चालता थका कदाचित् मिथ्यात्वभावना उदयथी घणा धर्मोमां क्यो धर्म सत्य हशे ? जैनधर्मना प्रवर्तको सर्वज्ञ हता के नहीं ? धर्मनुं फल परजन्ममां मलशे के नहीं ? निगोद विगेरे भावो कह्या छे ते शुं सत्य छे ? आवा आवा मनना विभ्रमो–संशयो पेदा थाय एटले आत्मा तेनाथी व्याकुल थइ धर्ममां अस्थिर परिणामी थइ जाय, सम्यक्तया धर्माराधन करी शके नहीं एटले मिथ्यात्वभावना कारणथी आत्मा धर्मपंथने छोडी अधर्मना मार्गे चडी जाय छे. माटे आ विघ्न अनर्थकारी जाणी तेनो सर्वथा विजय ते ज करी शके के जे सम्यक् धर्ममार्गनी पोतानी अपूर्व शुद्ध–बुद्धिथी परीक्षा करी चलितपरिणामी न थाय या तो अन्य गुर्वादिको जे धर्ममार्ग दर्शावे तेना पर बराबर श्रद्धा–विश्वास राखे अने मनना खोटा असद्भूत संशयोने आधीन न थाय. आ त्रणे प्रकारना विघ्नो आत्माने धर्मथी भ्रष्ट करे छे, तो आत्मानी निश्चळ परिणति स्थिर करी, मनना विभ्रमोनो नाश करी जे धर्माराधन करवानुं अद्भूत बल धारण करे, कोइ पण विघ्नोथी पराभूत न ज थाय ते ज आत्मा धर्ममार्गना इष्ट स्थान प्रति पहोंची शके छे. आवा आशयनुं नाम अत्र ' विघ्नजय ' नामे त्रीजो आशय कह्यो छे.

" परामर्श "

अत्रे आ त्रण प्रकारना विघ्नो पैकी कंटक तुल्य शीत, उष्ण आदि परीसहरूप हीनविघ्नो मात्र धर्माराधनामां आत्माने कायर प्रमादी बनावे छे, अने ज्वर तुल्य रोगादिरूप

मध्यम विघ्नो धर्ममां प्रवृत्ति करवानी आत्मानी इच्छाओने मंद करे छे; किन्तु आत्माने सर्वथा धर्मभ्रष्ट करी मिथ्यात्वना मार्गे घसडी शकता नथी. एटले ते विघ्नो अहीं सामान्य कोटीना जणाव्या ज्यारे मोहजय नामे उत्कृष्ट विघ्न तो आत्माने अवळा मार्गमां उतारी नांखे छे, एटले आ विघ्नने नाश करवानुं सामर्थ्य जेमां होय ते आत्मा कदापि प्रथमना ते प्रकारना विघ्नोथी पराभूत थतो नथी; अने उपरना बन्ने विघ्नोथी जे पराभव पामे ते तो निश्चयेन त्रीजा नंबरना विघ्नथी पराभूत थाय ज. अतएव आ विघ्न जीतवानी शक्ति प्राप्त करवी अधिक आवश्यक गणाय, कारण के प्रथम कह्या प्रमाणे धर्ममां गति करनारने विघ्न तो जरुर आवे; माटे विघ्नोथी डरी धर्ममां गति न करवी या तो धर्म छोडी देवो तेनुं नाम धर्मीपणुं न ज कहेवाय किन्तु खरी रीते विघ्नोनी सामा थइ धर्माराधन करवुं ते ज सत्य धर्मीपणुं कहेवाय अने तो ज ' प्रवृत्ति ' नामक आशयनुं फल प्राप्त थयुं बराबर गणाय. अर्थात् आ 'विघ्नजय' करवो ए अहीं ' प्रवृत्ति ' आशयनुं प्रधान फल गण्युं छे. आथी ज मूलकर्ताए कह्युं ' प्रवृत्तिफलः.' संक्षेपमां–उपर कह्या प्रमाणे जेओ विघ्नोनो विजय करी धर्ममां ' प्रवृत्ति ' करे तेओमां मुख्य रीते ' प्रणिधान, प्रवृत्ति ' अने ' विघ्नजय ' आ आशयोनो आविर्भाव थयो छे एम प्रवृत्तिद्वारा जाणी शकाय.

" ए रीते विघ्ननो जय कर्या पछी अवश्य प्रस्तुत धर्मनी सिद्धि थाय, अतः 'सिद्धि' नामे चतुर्थ आशयनुं स्वरूप ग्रंथकर्ता अत्रे दर्शावे छे. "

सिद्धिस्तत्तद्धर्मस्थाना-
वाप्तिरिह तात्त्विकी ज्ञेया ।
अधिके विनयादियुता
हीने च दयादिगुणसारा ॥ ३-१० ॥

मूलार्थः—पोते अंगीकृत तत् तत् धर्ममर्यादाओनी प्राप्ति ते ज अत्र परमार्थभूत 'सिद्धि' नामे आशय जाणवो. आ आशय त्यारे ज थयो जाणवो के ज्यारे पोताथी अधिक गुणी जनो पर विनय आदि गुणयुक्त होय अने गुणहीन जनो पर अनुकंपादि गुणप्रधान होय.

"सिद्धि-भेदो"

स्पष्टीकरण—आशयो-परिणामोना भेदो पैकी 'सिद्धि' नामे चतुर्थ आशय छे ए वात आगल जणावी गया छीए. 'सिद्धिः'-निष्पत्तिः सिद्धि एटले निष्पत्ति तैयार थवुं. प्रथम तो क्रियामां प्रवर्तवुं, वचमां उद्भवता विघ्नोनो विजय करवो, एटले पछी बराबर क्रियानी सिद्धि-निष्पत्ति थाय. आ रीते आ आशयनो पूर्वोक्त आशयो साथे अनंतर संबंध सुसंगतया बने छे, एटले आशय अधिकारमां आनी 'विघ्नजय' पछी स्थापना बराबर योग्य रीते थाय छे. 'सिद्धि' बे प्रकारनी कही. एक तो परमार्थभूता तात्त्विकी अने बीजी अपरमार्थभूता अतात्त्विकी, अथवा व्यवहारिक कार्यो संबंधी अने

आत्मिक अधिकार संबंधी. जेथी आत्मानुं आलोक तथा पर-लोक उभय लोकमां कल्याण थाय ते तो तात्त्विकी अने जेथी आत्मानुं कदाचित् आ लोक संबंधी ज हित सधाय ते अतात्त्विकी व्यवहार संबंधी. प्रस्तुत अधिकारमां जे सिद्धि नामे चतुर्थ आशय कह्यो छे ते केवल तात्त्विक-आत्मिक कल्याण संबंधी ज आशयवाळो जाणवो, परंतु व्यवहारिक कार्योनी सिद्धिरूप आशय अहीं न लेवो. अतएव ग्रंथकर्त्ताए आ सिद्धिनुं 'तात्त्विकी' ए व्यवच्छेदक विशेषण आप्युं, तथा आ सिद्धिनो सत्य अर्थ आचार्यश्री पोते ज दर्शावे छे.—

" सिद्धि-स्वरूप "

'सिद्धिः-तत्तद्धर्मस्थानावाप्तिः' सिद्धि एटले ते ते धर्मस्थानकोनी प्राप्ति, अर्थात् पूर्वे आत्माए जे जे धर्म संबंधी मर्यादाओ-प्रतिज्ञाओ स्वीकारी होय तेनी अखंड रीते बराबर समाप्ति थवी, आत्माने ते ते धर्मप्रतिज्ञाना संस्कारोथी बराबर वासित करी उत्तम परिणतीवान् बनाववो. जेमके-सामायिक, पूजा आदिना नियमो लीधा पछी निर्विघ्नपणे अखंडतया दोष रहितपणे पूरा पाळवा. टीकाकार अहीं खुलासो करे छे के-" विवक्षितस्य-धर्मस्थानस्याहिंसादेरवाप्तिः प्राप्तिः सिद्धिरुच्यते " विवक्षित-स्वीकृत धर्मस्थान जे अहिंसा आदि तेनी प्राप्ति-लाभ ते सिद्धि कहेवाय छे. एटले आत्मा अहिंसा आदि व्रतोनी बराबर निष्पत्ति जे आशयना बलथी

करे ते आशयनुं नाम ' सिद्धि ' जाणवुं. नितान्त आ आशयना जोरथी आत्मा परमार्थभूत धर्ममां कुशलता प्राप्त करे छे. मात्र लोकदृष्टिए धर्ममां निपुणता करवी ते कांइ सिद्धि न कहेवाय कारण के बीजा प्रकारनी निपुणताथी कांइ आत्मानुं कल्याण थतुं नथी, किन्तु तेनाथी तो मात्र यत्किंचित् सुख के मानप्रतिष्ठा मले छे; माटे ज आ सिद्धिने अतात्त्विकी दर्शावी, ज्यारे पहेली सिद्धिथी निश्चयेन आत्मानुं अद्भुत कल्याण थाय छे. अतएव आने तात्त्विकी ए विशेषण आप्युं. वधुमां परमार्थ तथा धर्ममार्गमां निपुणता प्राप्त थवाथी आत्मा आकरा प्रबल कषायोथी निर्मुक्त थाय छे. हेतु ए के-प्रबल कषायोदयवान् आत्मा कदापि उत्तम धर्ममार्गमां पवित्र आशय साथे प्रवृत्ति करी शकतो नथी, किन्तु जेना कषायो नरम हीन वली थया होय ते ज प्रवृत्ति करी शके, अतः आ आशयना प्रबल प्रतापथी आत्मा जेना साथे नित्यना वैरो होय तेनो पण नाश करे छे. एटले अमुक अंशे मैत्री, प्रमोद आदि भावनाओना संस्कारवालो बने छे माटे पण आ आशयने तात्त्विक आशय कह्यो छे.

" प्रधान सिद्धि "

फरी ग्रंथकर्त्ता आ आशयनी प्राधान्यता देखाडवा उत्तरार्धमां बीजा वे विशेषणो आपी अधिक पुष्टि करे छे. " अधिके विनयादियुता " एटले स्वात्माथी अधिक गुणवान् जे सज्जनो, वडीलो, महापुरुषो पर बहुमान, विनय आदि करवा, अथवा तेवा श्रेष्ठ पुरुषो के

जेमणे सूत्र-अर्थनो अभ्यास कर्यो होय, महाव्रतोनी भावनाओ-नो अभ्यास जेओए कर्यो होय एवा तथा साक्षात् तीर्थ समान गुरुमहाराज आदिनी भक्ति, सेवा, वैयावच्च, विनय आदि करवा. भावार्थ ए के-धर्ममार्गनी सिद्धि आ गुणो सिवाय अपूर्ण ज कहेवाय, एटले सिद्धिनी सिद्धि करवा आं गुणो तो अवश्यमेव आत्माए प्राप्त करवा जोइए. जे आत्मा गुणीजनोनो सत्कार विनय आदि करे छे ते ज आत्मा धर्ममार्गनी सिद्धि पामे छे, अतः विद्वानोए स्वात्माने गुणी बनाववा माटे प्रधानमार्ग ए ज दर्शाव्यो छे के-तीर्थभूत गुरु आदिनो विनय विगेरे करवो. अत्र महाव्रतो तथा दर्शनादिनी भावनानुं स्वरूप आचारांग तथा तत्त्वार्थसूत्रमां कह्युं छे ते विचारवुं.

" व्रत-भावना "

१ " तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच " त० अ०७ सू० ३। जिनभगवंतोए प्रत्येक महाव्रतोनी स्थिरता माटे पांच पांच भावनाओ दर्शावी छे. 'प्राणातिपातविरमण' नामक पहेला महाव्रतनी रक्षा माटे-इर्यासमिति-साडात्रण हाथ जेटली जमीनमां बराबर जोइने चालवुं, मनोगुप्ति-अशुभ विचारोने बंध करवा, एषणासमिति-४२ दोष रहित आहार ग्रहण करवो, आदानभंडमत्तनिक्षेपणासमिति-वस्त्र-पात्र आदि तपासी-पडिलेही पछी ग्रहण करवा के मूकवा, आहारादि तपासीने खावा. ' मृषावादविरमणव्रत ' नामे बीजा व्रतनी रक्षा माटे-हितमितं वचन बोलवुं, क्रोधनो त्याग, लोभनो त्याग, आकस्मिक

आम छतां यदि स्वात्मा अनुकंपाहीन होय, दुःखीओनो बेली परोपकारी न होय तो ते धर्मनी सिद्धि करी शकतो नथी; माटे अहीं ग्रंथकर्ता वधु विशेषण आपी खुलासो करे छे के-'हीने दयादिगुणसारा' पोतानी अपेक्षाए न्यूनगुणी जनो पर अनुकंपा-दयाभाव राखवो, अर्थात् गुणहीन मनुष्योनी प्रवृत्तिओ देखी तेना पर द्वेष न करवो किन्तु तेओना पर दयाना विचारो करवा. एटले ते लोको पण गुणवान बने तेवी भावना

तथा मरणभयथी निडरवा, हास्य आदिनो त्याग करवो. 'अदत्तादानविरमण' व्रतना रक्षण माटे-विचारपूर्वक शुद्ध स्थाननी याचना, जरुर होय त्यारे अवग्रहनी याचना करवी पण पहेलाथी संग्रह न करवो, मानोपेत वस्तुनी याचना करवी, एक गच्छना मुनिओ पासे जग्यानी याचना करवी, गुरु-आज्ञाथी पान भोजन लेवा. 'मैथुनविरमणव्रत' माटे-ज्यां स्त्रीओ, पशुओ, नपुंसको रहेता होय एवा स्थाननो त्याग करवो, स्त्रीयो साथे प्रेमालाप न करवो, कामिनीयोनुं रूप इंद्रियोनुं अवलोकन न करवुं, प्रथम सेवेल भोगादिनुं स्मरण न करवुं, स्निग्ध पदार्थोनो त्याग करवो. 'परिग्रहविरमण' व्रत माटे पांचे इंद्रियोना इष्ट विषयो पर मोह अने अनिष्ट विषयो पर द्वेष न करवो. आ प्रमाणे नित्य भावनाओनो अभ्यास करवाथी आत्मा महाव्रतोने अविचलपणे पाली शके छे ने लेश पण विघ्नो उद्भवता नथी माटे ज आने महाव्रतोनी भावनाओ कही. पुनः पुनः अभ्यास करवो, विचारवुं, ध्यान करवुं तेनुं नाम

राखवी, आटलुं ज नहीं परंतु आपत्तिग्रस्तनो उद्धार करवा प्रयत्न करवो, दुःखीयोने दान आपवुं, तेओनुं दुःख दूर करवुं विगेरे चेष्टा करवाथी आत्मा योग्य रीते धर्मनी सिद्धि करी शके छे. अहीं अधिकगुणी तथा हीनगुणीनुं ग्रहण करवाथी मध्यमगुणीजनोनुं पण ग्रहण थइ जाय छे, अतः मध्यमगुणी जनो पर पण अनुकंपा, उपकार विगेरे करवा. आ रीते अधि-

---

भावना. आनुं विशेष स्वरूप तत्त्वार्थटीका अने आचारांगना भावनाध्ययनमां बहु सारी रीते दर्शाव्युं छे, तथा प्रशस्त अने अप्रशस्त ए रीते भावना बे प्रकारनी पण कही छे. दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वैराग्य संबंधी जे वारंवार अभ्यास करवो ते प्रशस्त भावना अने क्रोध, लोभ, मोह आदि पापोनो वारंवार अभ्यास करवो ते अप्रशस्त भावना.

" दर्शन—भावना "

दर्शन आदि भावनानुं स्वरूप खास विचारवा योग्य होवाथी अमे अहीं टिप्पणीमां आपवुं उचित धार्युं छे—" तीत्थगराण भगवओ पवयणपावयणिअइसइड्ढीणं । अभिगमणनमण-दरिसणकित्तणसंपूअणाथूणणा ॥ १ ॥ जम्माभिसेयनिक्खम-णचरणनाणुप्पया य निव्वाणे । दियलोअभवणमंदरनंदी-सरभोमनगेरसुं ॥ २ ॥ अट्ठावयमुज्जिंते गयग्गपयए य धम्म-चक्के य । पासरहावत्तनगं चमरुप्पायं च वंदामि ॥ ३ "

" तीर्थंकर भगवंतो, द्वादशांगधारी आचार्यो, केवलज्ञानी, मनःपर्यायज्ञानी, अवधिज्ञानी, चौदपूर्वधरो, आमौषधी

कगुणीनो विनय विगेरे, मध्यमगुणी तथा हीनगुणी पर दया-भाव करवाथी आत्मा धर्ममार्गनी बराबर सिद्धि करवाने समर्थ बने छे. आवी चेष्टाओद्वारा धर्मी आत्मामां सिद्धि नामनो चतुर्थ आशयनो जन्म थयो छे एम जाणी शकाय. टुंकमां-

---

आदि लब्धिधरो आदिनी सामा जवुं, तेओना दर्शन, गुणानुवाद, शुभद्रव्योथी पूजा--नमस्कार आदि करवा. आम करवाथी नितान्त स्वसम्यक्त्वनी शुद्धि थाय छे; तथा जिनेश्वरोना जन्म, दीक्षा, केवल, निर्वाणभूमिना देवलोक, मेरुपर्वत, नंदीश्वरद्वीप, पातालभुवन, आदिना शाश्वत चैत्योना, अष्टापद, रैवताचल, गजाग्रपद, तक्षशिला बाहुबलीजीनी राजधानी, धरणेन्द्र महाराजे ज्यां पार्श्वनाथजीनो महिमा कर्यो हतो ते स्थानमां, रथावर्तपर्वत, जे स्थलेथी वीरभगवाननुं शरण लइ चमरेन्द्रे उत्पात कर्यो हतो, आ सर्व स्थानोना दर्शन, स्पर्शन, पूजा, नमस्कार करवाथी पण समकित निर्मल थाय छे" पुनः "गणियं निमित्त जुत्ती संदिट्ठी अवितह इमं नाणं। इय एगंतमुवगया गुणपच्चइया इमे अत्था ॥ १ ॥ गुणमाहप्पा इसिनामकित्तणं सुरनरिंदपूया य। पोराणचेइयाणि य इय एसा दंसणे होइ" ॥ २ ॥ "पवित्र बुद्धिमान् आत्मा-आ आचार्यभगवंत बीजगणित तथा निमत्तशास्त्रोना पारंगत छे दृष्टिवादमां उक्त नानाप्रकारना द्रव्यसंयोगो--चूर्णो बहु सरस रीते जाणे छे. अचल समकित अने अविसंवादि निर्दोष ज्ञानना धरनार छे इत्यादि रीते आचार्योनी गुणप्रशंसा करवाथी, तथा

ज्यारे आ प्रकारनो सिद्धि नामनो आशय प्राप्त थाय त्यारे ज पूर्वना त्रणे आशयो सफल थाय, अन्यथा ते नकमा जेवा गणाय; माटे उपरोक्त त्रण आशय पाम्या पछी आ आशयने पामवा प्रयत्न सेववो उचित गणाय. तथा सिद्धिना अंगना जे जे गुणो आर्यामां आचार्यश्रीए दर्शाव्या ते ते गुणोनी प्राप्ति थाय त्यारे ज सिद्धि नामना आशयनी सिद्धि थइ जाणवी.

पूर्व महात्माओनुं नामस्मरण, देवेंद्र नरेंद्रोए करेल पूजा आदिनी स्तुति, प्राचीन मंदिरोनी पूजा विगेरे करवाथी पोतानुं समकित बराबर निर्मलतर करे छे."

"ज्ञान-भावना"

तत्तं जीवाजीवा नायव्वा जाणणा इहं दिट्ठा। इह कज्ज-करणकारगसि कारगसिद्धी इह बंधमुक्खो य ॥१॥ बद्धो य बंधहेउ बंधण बंधप्फलं सुकहियं तु। संसारपवंचोवि य इह यं कहिओ जिणवरेहिं ॥ २ ॥ नाणं भविस्सई एवमाइया वायणाइयाओ य। सज्झाए आउत्तो गुरुकुलवासो य इय नाणे ॥३॥ "आ भूतलमां सत्य पदार्थनुं स्वरूप प्रतिपादन करनार केवल जिनप्रवचन ज छे, तेम ज साची श्रद्धा तेनाथी ज आ-त्माने मले छे कारण के जीव अजीव आदि पदार्थनुं परमार्थ स्वरूप तेमां दर्शाव्युं छे; तथा मोक्षरूपी कार्य अने तेने साधनार सम्यक्त्व ज्ञान-चारित्ररूपी कारण, पुनः तेमां प्रवर्तनार साधु ए रीते कार्य, कारण तथा कारकनुं स्वरूप पण आर्हत प्रव-चनमां ज देखाड्युं छे. कर्मनो बंध, कर्मोनो नाश, आत्मा आठ

ए प्रमाणे सिद्धिनुं स्वरूप कह्या पछी तेना फलभूत 'विनियोग' नुं स्वरूप कहे छे.—

कर्मथी बद्ध छे, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योगो ए रीते कर्मबंधना हेतुओ, कर्मनुं स्वरूप, चार गतिरूप कर्मनुं फल, संसारप्रपंचनुं स्वरूप अने आत्महितकारी पंथो ए सर्व अहीं जिनप्रवचनमां ज दर्शाव्युं छे, किन्तु बौद्ध, सांख्य, वेदान्त आदि कोइ पण मतमां दर्शाव्युं नथी. आवा आवा विचारो करवाथी आत्माने जरुर तत्त्वज्ञाननी प्राप्ति थाय छे, तथा वारंवार अभ्यास करवाथी पण ज्ञाननो लाभ थाय छे. सूत्र–अर्थनो स्वाध्याय करवाथी अने गुरुकुलमां वास करवाथी ज्ञाननी प्राप्ति थाय छे."

" चारित्र-भावना "

" साहुमहिंसा धम्मो सच्चमदत्तविरई य बंभं च। साहुपरिग्गहविरई साहु तवो बारसंगो य ॥ १ ॥ वेरग्गमप्पमाओ एगग्गे भावणा य परिसंगं। इय चरणमणुगयाओ भणिया इत्तो तवो वुच्छं " ॥ २ ॥ " अहिंसा मुख्य धर्म, सर्वथा शुद्ध सत्य, अदत्तनो एकान्त त्याग, नववाडे शुद्ध ब्रह्मचर्य, मूर्च्छारूप अपरिग्रहनो त्याग, बार भेदवाळी तपस्या–ए सर्व अत्र जिनमतमां ज कह्युं छे. वैराग्यनी भावना–संसारसुखनी गर्हा, अप्रमाद मांस–मदिरा विगेरे कर्मबंधना कारणो कह्या छे. एकाग्रभावना–ज्ञान दर्शनमय मारो आत्मा

सिद्धेश्चोत्तरकार्यं
विनियोगोऽवन्ध्यमेतदेतस्मिन् ।
सत्यद्वयसंपत्त्या
सुन्दरमिति तत्परं यावत् ॥ ३-११ ॥

शाश्वतो तथा एकलो ज छे अने सिवाय अन्य बाह्य पदार्थो अशाश्वत–विनाशी होय छे–आवा आवा विचारो करवाथी आत्मा चारित्रभावनी पुष्टि करी शके छे.

" तप–भावना "

किह मे हविज्जऽवंज्झो ? किं वा पहू तवं काउं । को इह दव्वे जोगो खित्ते काले समयभावे ॥ १ ॥ उच्छाहपालणाए इतिं तवे संजमे य संघयणे । वेरग्गोऽणिच्चाई होई चरित्ते इहं पगयं " ॥ २ ॥ तपस्यावडे मारो दिवस सफल क्यारे थशे ? हुं कइ तपस्या करी शकीश ? क्युं क्षेत्र अने द्रव्य आदिमां हुं तपस्या करी शकुं ? अत्र तप माटे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्रयी विचार करवो. द्रव्य–वाल, चणा विगेरे ज लेवा, क्षेत्र–ज्यां स्निग्ध पदार्थो वधारे मले, काल–शीत अगर गरमीनो समय, भाव–अखेदपणे–ए रीतनो विचार करी तपोवृद्धि थाय तेम तप संबंधी भावनाओ विचारवी. फरी अणशण माटे स्वात्माने उत्साहित करवो. पूर्वे लीधेल नियमोनुं बराबर पालन करवुं. संयम–इंद्रिय मन आदिना निग्रहरूप, संहनन–अंगीकृत तप आदिनो निर्वाह

मूलार्थ—सिद्धिनुं उत्तरकार्य अर्थात् फल विनियोग एटले जे धर्मस्थानोनी सिद्धि थया पछी अन्य जनोने ते धर्मस्थानो योग्यतया पमाडवा. आ विनियोग नामक लक्षण पाम्या पछी 'अहिंसा, दान' आदि धर्मो कदापि निष्फल थता नथी, किन्तु परंपराए अहिंसा आदि धर्मस्थानो सुंदरताने पामी उत्कृष्ट रूपने धारण करे छे. भावार्थ निश्चयतया मोक्षने अर्पे छे.

स्पष्टीकरण—

पूर्वना श्लोकमां 'सिद्धि'ना उपायो बताव्या. अहिं सिद्धि कर्या पछी 'विनियोग' नामक धर्मनुं पांचमुं लक्षण आचार्य दर्शावे छे. प्रथम तो आत्माने अमुक अमुक धर्मोनी योग्यतावाळो संपूर्णतया बनाववो. तेम थया पछी अन्यने पोताना समान करवा प्राप्तधर्मो अन्यमां विनियोग–स्थापन करी धर्मस्थानोनी अविच्छिन्नता करवी, जेथी स्वात्मा जन्मांतरमां सुगमतया ते ज धर्मो पामी अखंड कल्याणनो अनुभवी बने. ए ज भाव अहीं आचार्य स्पष्ट समजावे छे.

करनार वज्रऋषभनाराच आदि, वैराग्यभावना–अनित्य आदि द्वादश भावना, आ सर्व विचारो तथा भावनाओ आत्मानी शुद्धि अर्थे कही छे. संक्षेपमां आ सर्व विचारो जिनेश्वरोए कर्मनिर्जरा अने कल्याण अर्थे जणाव्या छे माटे उपर कह्या प्रमाणे अर्थी अने धर्मी मनुष्ये तेनो वारंवार अभ्यास करवो जेथी महाव्रतोनी अचलता अने दर्शन–ज्ञान–चारित्रनी नितान्त पुष्टि थाय.

प्रथम पदार्थनी सिद्धि—उत्पत्ति अने पछी ज तेनो व्यापार कराय, अतएव सिद्धिनुं उत्तरकार्य—फलकार्य ' विनियोग ' व्यापार—स्थापन नामे पांचमो आशय सिद्धिना फलरूपे कह्यो. एटले अहिंसा, सत्यवाक्, ब्रह्मचर्य, दान, पूजा विगेरेनी पूर्ण कुशलता आव्या पछी ज अन्य आत्माने ते ते कार्योमां जोडवा प्रयत्न करवो. भावार्थ ए के—स्वआत्मामां प्रत्येक धर्मस्थानो प्राप्त थया पहेला, योग्यता आव्या पहेला, बराबर परिणम्या पूर्वे, विधि ज्ञान अने स्वरूप समज्या विना अन्यने उपदेशवा प्रयत्न करवो ते विना रसवतीए भोजननो आग्रह करवा बरो-बर कहेवाय. एवं अपूर्ण धर्मस्थान अवस्थामां अन्यने उपदेश करवाथी स्व अने पर बन्नेने हानिकारक थाय छे. आ विनि-योग नामे आशय आव्या पछी अहिंसा आदि धर्मस्थानो कदापि निष्फल बनतां नथी एटले अहिंसादि धर्मस्थाननुं मुख्य फल निर्जरा करवा साथे आत्मा नितान्त धर्ममय बने छे, तेमज अन्यने उपदेशवाथी ते ते धर्मो अविच्छेदरूपे कायम बन्या रहे—नाश न पामे. भावार्थ ए के—विनियोगकर्ता जो कदाचित् धर्मभावथी खसी पण जाय तथापि कनककलशभंग ए न्याये फरी धर्म संस्कारोनी जागृति थवाथी जन्मांतरनी परंपराए ते धर्मो कायम स्थिर रहे छे अने परिणामे उंच धर्मस्थाननी सरहद भूमि पर आत्माने दोरी जइ यावत् मोक्ष-रूप उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करावे छे अतएव प्रथम धर्मनी बराबर प्राप्ति करवी अने त्यारबाद स्वपरना उपकार माटे अन्यने

स्वसमान बनाववा जरूर धर्मस्थाननो विनियोग करवो जेथी धर्मस्थानोना संस्कारो जन्मांतर माटे वन्ध्या रहे. धर्मसिद्धि थया पछी जरूर 'विनियोग' नामे आशय प्रगटे अने त्यारे ज पंचांगपूर्ण धर्म प्राप्त थयो कहेवाय. प्राप्तधर्मनुं मुख्य फल स्व समान परने करवो ए ज छे अने 'विनियोग' नुं लक्षण पण ते ज कहुं छे. आ 'विनियोग' आशय आव्या पछी धर्मी आत्मा माटे कांइ पण बाकी रहेतुं नथी.

अहीं 'विनियोग' नुं स्वरूप देखाडवाथी धर्मना पांच आशयोनुं स्वरूप संपूर्ण थयुं. आ पांचे आशयो क्रियाद्वारा ज जणाय छे, माटे आशयनी ज महत्ता बतावता ग्रंथकर्ता जणावे छे—

आशयभेदा एते
सर्वेऽपि हि तत्त्वतोऽवगन्तव्याः ।
भावोऽयमनेन विना
चेष्टा द्रव्यक्रिया तुच्छा ॥ ३-१२ ॥

मूलार्थ—पहेला कह्या ते सर्वे परमार्थथी निश्चयतया आशय-अंतकरणना विचारभेदो-प्रकारो जाणवा. आने ज शास्त्रकारो 'भाव' कहे छे, आना विना केवल मन-वचन-कायानी चेष्टा-व्यापार असार द्रव्यक्रिया जाणवी.

स्पष्टीकरण—

द्रव्य अने भाव एम बे प्रकारे क्रिया शास्त्रोमां

कही छे, आ बन्ने क्रियानुं स्वरूप पांच आशयनुं स्वरूप ध्यानमां उतरवाथी सहजतया समजाय तेवुं छे, अतएव श्रीमान् हरिभद्रसूरिजीए 'एते सर्वेऽपि' ए पदथी पूर्वे कहेल प्रणिधान, प्रवृत्ति, विघ्नजय, सिद्धि, विनियोग, ए पांचे परमार्थथी आशय–अभिप्रायना भेदो–प्रकारो जाणवा एम कह्युं. मूलमां आपेल 'तत्त्वतो' ए वाक्यनो भाव आ छे के–जो के प्रणिधान आदि सर्व केटलेक अंशे क्रिया–प्रवृत्तिरूप ज छे तो पण अंतःकरणनो भाव क्रिया विना ओळखी न शकाय एटले क्रियानुं कारण अंतःकरणनो भाव ज होवाथी ए सर्वे 'तत्त्वतो' 'परमार्थथी' आशयभेदो जाणवा. अहीं आशय अने भावमां शुं तफावत छे ? एना उत्तरमां मूलकर्त्ता ज 'भावोऽयम्' ए वाक्यथी स्पष्टपणे आ आशयभेदो भाव ज छे एम कहे छे. आ उपर बतावेल भावो–आशयो विना जे कांइ कायाद्वारा शुभक्रियानो व्यापार कराय तेनुं ज नाम द्रव्यक्रिया समजवी अर्थात् तेवी क्रियाथी आत्मकल्याणरूपी फल मलतुं नथी माटे अने 'अप्पहाणे दव्व सद्दो' ए वचनथी द्रव्य शब्द अप्रधान अर्थनो वाचक होवाथी भाव विनानी द्रव्यक्रिया तुच्छ जाणवी अर्थात् जे क्रियामां कर्त्ताने क्रियानुं ज्ञान अने 'भावे उपयोगः' आ वाक्यथी ते ज क्रियानुं पवित्र ध्यान–उपयोग ते क्रिया स्वफल–मोक्षसाधक होवाथी तेने आचार्योए प्रधान भावक्रिया अने एथी विपरीत क्रियाने भाव–उपयोगना अभाववाली होवाथी अप्रधान द्रव्यक्रिया कही छे.

जे कारणथी द्रव्यक्रियाने तुच्छ गणी भावनी प्राधान्यता कही ते कारण श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी बतावे छे—

अस्माच्च सानुबन्धा-
च्छुद्ध्यन्तोऽवाप्यते द्रुतं क्रमशः ।
एतदिह धर्मतत्त्वं
परमो योगो विमुक्तिरसः ॥ ३–१३ ॥

मूलार्थः—उपरोक्त भावनी परंपराथी ज क्रमे क्रमे शीघ्र अन्तःकरणनी शुद्धिनो वधारो प्राप्त थाय छे एटले अविच्छिन्न भावनी परंपरा चाले छे, तेमज उपरोक्त भाव ए ज धर्मनुं खास तत्त्व छे अने भाव ए ज परम योग छे–भाव ए ज विशिष्ट मुक्तिनो रस छे.

स्पष्टीकरण—

पूर्वे कहेल पांच आशयोनो वारंवार अभ्यास करवाथी भावनी दृढता वधे छे. आत्मामां शुभ संस्कारो स्थापवा शुभक्रियानो वारंवार अभ्यास करवो एम शास्त्रो उपदेशे छे. अतएव 'प्रणिधान' आदि भावोनो अभ्यास करवाथी तेनी दृढता थाय अने तेथी अनुबंध प्राप्त थाय छे. पछी तेनी अविच्छिन्न परंपरा चाले जेथी अतःकरणनी तीव्र-शुद्धि शीघ्र दीर्घकालना विलंब वगर पमाय छे. अन्तमां आ जन्म अथवा अन्य जन्ममां तीव्रशुद्धि थवाथी अधिक कर्मक्षय आत्मा करे छे. अहीं आ भाव ज धर्मतत्त्व छे के अन्य कांइ

धर्मतत्त्व छे ? एना उत्तरमां ग्रंथकर्ता 'एतदिह धर्मतत्त्वं' ए पदथी पूर्वे कहेल पांच आशयो-भावो ए ज सत्य रीते धर्मनुं तत्त्व छे अर्थात् भाव वगर अन्य कांइ पण धर्मतत्त्व नथी; भाव विनानो धर्म उपरनी टापटीप ज कहेवाय. 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' मनना विचारो-विकल्पनो रोध करवो ते ज 'योग' कह्यो छे. आ योगनी प्राप्ति शुभ अनुष्ठाननो व्यापार करवाथी ज बने, एटले मनने शुभध्यान, अभ्यास, इश्वरगुणस्मरण आदिमां जोडवाथी अन्य विकल्पो बंध थाय छे अने परिणामे निर्विकल्प दशामय मन बने छे. अहीं उपरना आशय-भावने पामवाथी चित्तनी शुद्धि ने छेवटे संपूर्ण कर्मक्षय थवाथी "मोक्षेण योजनाद्योगः" 'मोक्षनी साथे जे संबंध करावी आपे ते ज वास्तविक योग कहेवाय' ए प्रमाणेनो योग-शब्दार्थ आ भावोने लागु पडवाथी आ पांच भावोने ज शास्त्रकार 'परमयोग' पणे संबोधे छे; तथा आ भावमां ज विशिष्ट कर्मक्षयरूप मुक्ति आपवानी शक्ति-प्रीतिविशेष रस होवाथी भाव ए ज 'विमुक्तिरसः' जाणवो. परमार्थ ए के-भाव ए ज धर्मतत्त्व, परमयोग अने विमुक्तिरस छे. आ हेतुथी प्रथम तत्त्वज्ञोए उपरना आशयो प्राप्त करवा ए ज फलितार्थ अने धर्मतत्त्वनो मथितार्थ छे.

उपर 'पांच आशयद्वारा मननी तीव्रशुद्धि थाय' एम कह्युं अने प्रथम 'शुद्धि पापना क्षयथी थाय' ए प्रमाणे कहेवायुं. हवे पाप तो अतीत-अनादि कालमां वारंवार

अनेकधा आत्माए सेव्युं, तो पापस्वभावभूत आत्मा पापनो त्याग करी 'पांच भावनी' ज अभिलाषा करे अने पापने बहुमान भावथी न माने ए केम बने ? अर्थात् पूर्व कालथी जेनी साथे गाढ संबंध-तन्मयता छे एवा पापभावने मूकी शुभ आशयोनी प्राप्ति आत्माने क्यांथी थाय ? परमार्थ ए के न ज थाय, ए शंकाना निरसन माटे आचार्य हरिभद्रसूरिजी कहे छे—

> अमृतरसास्वादज्ञः
> कुभक्तरसलालितोऽपि बहुकालम् ।
> त्यक्त्वा तत्क्षणमेनं
> वाञ्छत्युच्चैरमृतमेव ॥ ३–१४ ॥

सूलार्थः—अमृतना भोजननो स्वाद जाणनार लांबा कालथी तुच्छ भोजनना रसथी पुष्ट थयेल होय तो पण अमृत जे वखते मले ते ज क्षणे तुच्छ भोजनने त्यजी दइ केवल अमृतना भोजननी ज इच्छा राखे छे.

स्पष्टीकरण—

स्पष्टिकरण—जेम कोइ मनुष्य दरिद्र कुटुंबमां जन्म पाम्यो तेने जन्मथी ज तुच्छ मकाइ, जुवार आदिना भोजन मले, तेनाथी ज ते मोटो थयो होय; परंतु अन्य स्वादिष्ट उत्तम भोजन देख्या पण न होय तो पछी तेणे देवताओनुं भोज्य अमृतभोजन तो क्यांथी देख्युं होय ? आ मनुष्य पर कोइ

देवादि तुष्ट थाय अने अमृतभोजननो स्वाद, तेना गुणो, तेनुं स्वरूप अने तेनी दुर्लभता तेने बतावे, एटले तुरत ज आ पेलो मनुष्य लांबा कालनुं पोतानुं तुच्छ भोजन छोडी दइ ते ज उत्तम-दुर्लभ देवभोज्य अमृत भोजननी इच्छा करे छे, पण दीर्घ कालना कुभोजननी चाहना करतो नथी.

तथाप्रकारे—

एवं त्वपूर्वकरणात्–

सम्यक्त्वामृतरसज्ञ इह जीवः ।

चिरकालसेवितमपि

न जातु बहुमन्यते पापम् ॥ ३–१५ ॥

सूलार्थ—एवी रीते अपूर्वकरण नामे उत्तम अध्यवसा-यथी सम्यक्त्वरूपी अमृतरसनो ज्ञाता आत्मा अहीं दीर्घ कालथी अनुभवेला एवा पण पापोने कदापि काले बहुमाननी दृष्टिथी मानतो नथी–इच्छा करतो नथी.

" स्पष्टीकरण "

यथाप्रवृत्तिकरणना बलथी आत्मा शुद्ध परिणतिमय बनी ग्रंथिभेदनी भूमिका पर आवीने उभो रहे छे, एटले विशुद्धतर परिणामना बलथी ग्रंथिभेदनी क्रिया करे छे. त्यारपछी अनादिथी अप्राप्त अने अतएव अपूर्व–नवीन एवा अपूर्वकरण नामे अध्यवसायविशेषथी शुद्ध तत्त्वमार्गनी रुचिरूप सम्यक्त्वना

अपूर्व लाभने पामे छे, जेथी अहीं आत्मा हिंसा–अहिंसा, सत्य–असत्य, त्याज्य, आदेय, ज्ञेय, भोज्य–अभोज्य, ग्राह्य–अग्राह्य, देव–कुदेव, गुरु–अगुरु, धर्म–अधर्म, तत्त्व–अतत्त्व, पापकारणो–पुण्यकारणो विगेरे सर्वे पदार्थोने यथार्थतया निरीक्षे छे, अने पछी विवेकने आदरी अपूर्व आनंदने अनुभवे छे एटलुं ज नहीं किन्तु क्रोधादिनो उपशम, संसार पर अप्रेम, विषयोथी कंटाळो, दीन–हीन–दुःखी पर दयालु, तत्त्वमां ज प्रेम अने अतत्त्व पर अश्रद्धा प्राप्त करी, संसारना कारणोनी अरुचि लावी एकान्त निःश्रेयसभावना कारणो प्रति आत्मा आत्माने प्रेरे छे. एटले आ प्रकारे अपूर्वकरण अध्यवसायना बळथी सम्यक्त्वरूपी अमृतनुं पान कर्या पछी, अथवा सम्यक्त्वनुं बराबर स्वरूप जाण्या पछी दीर्घ कालथी आसेवेल विपरीत मान्यता, ज्ञान, ज्ञानी, धर्म, देव आदिनी निन्दा, नाश, आशातनारूप पापोने बहुमानभावथी कदापि ते आत्मा मानतो नथी.

अहीं अमृतरस ते सम्यक्त्व अने पाप ते मिथ्या रुचि अथवा प्रवचन–संघ प्रथम गणधर, द्वादशांगी विगेरे, तेनी निंदा, उपघात, आशातना विगेरे. पूर्वना श्लोकमां आ विषय समजवा माटे ग्रंथकार प्रथम दृष्टांत कही गया एटले आ दार्ष्टान्तिकनुं स्वरूप अहीं जणाव्युं. पूर्वे दीर्घकालिक जेम कुभोजनने अमृतनो स्वाद जाणनार इच्छतो नथी तेम अहीं कुभोजन समान दीर्घकालिक अभ्यस्त मिथ्यात्वादि पापोने अमृतभोजन तुल्य

ना स्वरूपने जाणनार कदापि इष्टपणे मानतो नथी.
थं ए के–मिथ्यात्वादि पापोनी इच्छा ज्यां सुधी समकि-
स्वरूप यथार्थ जाण्युं नथी त्यां सुधी ज आत्मा करे छे,
समकितने ओळख्या पछी करतो नथी.

'सम्यक्त्वरूपी अमृतरसने जाणनार आत्मा
पि पापने इच्छतो नथी' एम कह्युं, तो पछी जेने कोइ
ारना सामान्य विशेष व्रतो–नियमो नथी एवो सम्यक्त्वधारी
ः जगतमां पाप करे छे एम प्रत्यक्ष अनुभवाय छे तेनुं शुं ?
प्रश्ननुं समाधान कर्या पछी आचार्यश्री आ प्रकरणनी
ति करे छे.

यद्यपि कर्मनियोगात्
करोति तत्तदपि भावशून्यमलम् ।
अत एव धर्मयोगात्
क्षिप्रं तत् सिद्धिमाप्नोति ॥ ३–१६ ॥

मूलार्थ—जो के कर्मना संयोगथी ते ते पापकर्मो सम-
`त्वधारी आत्मा करे छे, तो पण ते आत्मा ते ते पापो विना
वथी करतो होवाथी कालांतरे धर्मसंयोगना साधनो द्वारा
ा सर्व पापोनो अल्प काळमां नाश करी सिद्धि–मोक्षने
त करे छे.

'स्पष्टीकरण"

केवल नितान्त सम्यक्त्वधारी यदि निकाचित चारित्र-

मोहनीय कर्मना उदयथी देशथी अथवा सर्वथी व्रतो स्वीकारी न शकवाथी आरंभ, समारंभ, परिग्रहादि पापोने सेवे छे, तो पण ते सर्व पापो अकर्तव्यबुद्धिए अशक्यपणाथी ज करतो होवाथी तेने पापकार्योमां आसक्ति—तीव्रता—गाढ प्रेम न राखवाथी तेने विशिष्ट निकाचित पापबंध थतो नथी; कारण के—पापना तीव्र अगर मंद बंधनो मुख्य आधार अध्यवसाय पर ज होय छे. एटले आसक्तिपूर्वक करनारो तीव्र बंध करे अने आसक्ति—भावविना करनारो मंद बंध करे छे. कह्युं छे के—"**सम्मदिट्ठी जीवो जइ वि हु पावं समायरे किंचि। अप्पो सि होइ बंधो जेण न निद्धंधसं कुणइ**" ॥ १ ॥ हेतु ए के—सम्यक्त्वधारीनी प्रवृत्ति '**तप्तलोहपदन्यास**' 'तपेला लोढापर जेम पग स्थापन कराय ए न्यायथी पापकार्योमां सभयपणे ज होय छे. आ कारणथी ते आत्मा पापने बहुमानथी मानतो नथी, जेथी छेवटे धर्मना योगथी धर्ममां अति उत्साह धारण करी तुरतज धर्मनी संपूर्ण सिद्धि पामे छे, अर्थात् समकिती जीव पापनो अल्पबंध करे छे ने धर्मना यथार्थ फलो पामे छे. एटले तीव्र बंध न थवाथी संसारभ्रमण तेने दीर्घ कालपर्यंत करवुं पडतुं नथी.

अहीं '**समकिति जीव पाप करे छे?**' ए प्रश्ननुं समाधान करीने ग्रंथकर्ताए धर्मसिद्धि पामवानी योग्यता केम पमाय ए विषयनुं विस्तृत कथन कर्या पछी '**धर्मसिद्धि**' नामे आ अधिकारनी संपूर्णता जणावी.



(४) धर्मेच्छुलिंगषोडशकम् ।

गत प्रकरणमां “ अस्य स्वलक्षणमिदं धर्मस्य० ” ए श्लोकोथी धर्मनुं लक्षण, धर्मनुं स्वरूप अने तेना पांच आशयो तथा तेनुं स्वरूप, तेम ज धर्मसिद्धिना अधिकारी विगेरे जणाव्या. हवे ए रीते सिद्ध थयेल धर्म धर्मीमां छे के नहीं ते लिंग–चेष्टा, क्रिया, लक्षणो विना ओळखी शकाय नहीं, तेम ज ‘ धर्मसिद्धि ’ कार्यद्वाराए ज जाणी शकाय छे अतएव ‘ धर्मसिद्धि ’ नामे अधिकार कह्या पछी ते ज धर्म-तत्त्वना विस्तारथी लिंग–चेष्टाओ. हेतुओ दर्शाववा माटे श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी चतुर्थ षोडशकनामा प्रकरण कहे छेः—

सिद्धस्य चास्य सम्यग्-
लिंगान्येतानि धर्मतत्त्वस्य ।
विहितानि तत्त्वविद्भिः
सुखावबोधाय भव्यानाम् ॥ ४–१ ॥

मूलार्थ—रुडा प्रकारे सिद्ध थयेल धर्मतत्त्वने [illegible] माटे योग्य पुरुषो तत्त्वथी समजी शके ते हेतुथी आ धर्मतत्त्वना

अविपरीत यथार्थ लिंगो-लक्षणो तत्त्वज्ञपुरुषोए आ प्रमाणे कह्या छे.

"स्पष्टीकरण"

गत प्रकरणमां जे कह्युं ते प्रमाणे वर्तवाथी जरुर धर्मनुं यथार्थ स्वरूप अने तेनी सिद्धि आत्मा पामी शके ए संदेह रहित छे. आ धर्मसिद्धिने योग्य पुरुषो-जेने धर्मनुं तत्त्व अने तेनी सिद्धि करवानी अपेक्षा होय एवा जनो-अल्प प्रयत्नथी केम जाणी शके एवा उद्देशथी धर्मतत्त्वना लिंगो-लक्षणो तत्त्वदर्शी जनोए कह्या छे, जे लिंगो अहीं बतावाशे. लक्षणोथी 'धर्मसिद्धि' जाणी शकाय तेमज 'धर्मसिद्धि'ना अर्थीओ लक्षण जाण्या विना धर्मसिद्धि पामी शके नहीं एटले आ अधिकारमां ते ज लक्षणो परमार्थज्ञाता पूर्वपुरुषोए जे प्रमाणे कह्या छे ते ज लक्षणो आचार्य अहीं दर्शावे छे.

आ लक्षणो प्रथम ग्रंथकार स्वरूपमात्रथी शरुआतमां दर्शावे छे.

> औदार्यं दाक्षिण्यं
> पापजुगुप्साथ निर्मलो बोधः ।
> लिंगानि धर्मसिद्धेः
> प्रायेण जनप्रियत्वं च ॥ ४-२ ॥

मूलार्थ—उदारता १, दाक्षिण्यता २, पापनी निंदा ३,

सुंदरबोध ४ अने बहुलताए लोकप्रिय ५ ए प्रमाणे आ पांच लक्षणो ' धर्मसिद्धि ' ना पूर्वपुरुषोए कह्या छे.

"स्पष्टीकरण"

औदार्य–विशाल चित्तनी वृत्ति, दाक्षिण्य–सर्वने अनुकूळ वर्तन, पापजुगुप्सा–पापनो त्याग, पापनो खेद, निर्मलबोध–यथार्थ तत्त्वज्ञान, जनप्रियत्व–लोकोनो प्यार. आ पांचे धर्मसिद्धिना चिन्हो–लक्षणो जाणवा. आथी धर्मनी सिद्धि बराबर जाणी शकाय छे. पूर्वोक्त प्रत्येक लक्षणनुं स्वरूप ग्रंथकार पोते ज आगल दर्शावे छे एटले अहीं तेनो विस्तार करवो अनुचित जणाय छे. अहीं लोकोनो प्यार गमे तेटला सुंदर सद्वर्तनथी सर्वथा प्राप्त करवो अशक्य छे, कारण के दुर्जनस्वभाव कोइथी जीताय तेवो नथी एटले सर्वज्ञो पण सर्वना प्रेमने पामवा असमर्थ बन्या छे, तो सामान्य सज्जनप्रकृति केम सर्वथा लोकप्यार पामी शके? अतएव ग्रंथकर्ताए मूलमां ' प्रायेण ' ए वाक्यथी बहुधा लोकप्रियता ए गुण दर्शाव्यो.

" औदार्य ' नामे प्रथम लक्षणनुं विस्तारथी स्वरूप दर्शावे छे. "

औदार्यं कार्पण्यत्यागा-
द्विज्ञेयमाशयमहत्त्वम् ।

गुरुदीनादिष्वौचित्य-
वृत्ति कार्ये तदत्यन्तम् ॥ ४-३ ॥

मूलार्थ—'औदार्य' ए गुण कृपणभावना त्यागथी-तुच्छ स्वभाव छोडवाथी हृदयनी जे विशालता प्रगटे तेनुं नाम छे, तथा गुर्वादिको अने अनाधारवंत लोको पर औचित्यता-उत्तम सद्भाव राखवो तेम ज विशिष्ट कार्योमां अति उदारता करवी ए पण उदारता ज कही छे.

"स्पष्टीकरण"

प्रथम कहेल 'धर्मसिद्धि' ना पांच लक्षणनो अर्थ क्रमशः एकेक श्लोकथी विस्तारथी दर्शावे छे. प्रथम 'औदार्य' नामे ए लक्षणनुं स्वरूप आ प्रमाणे छे. 'धर्मश्चित्तप्रभवो' चित्तनी विशुद्धि ए ज धर्म. 'आ धर्म चित्तथी प्रगटे छे' एम कही आव्या एटले चित्तनी विशुद्धि विना बाह्य क्रियामात्रथी धर्म पामवो अशक्य छे, अने ज्यांसुधी तुच्छ स्वभाव-अधम वृत्तिओ होय त्यां सुधी चित्तविशुद्धि दुर्लभ कही छे. आ हेतुथी धर्मार्थीए प्रथम तुच्छ स्वभाव त्याग करवो आवश्यकीय छे. अतएव अहीं ग्रंथकारे 'औदार्य कार्पण्यत्यागात्' धर्मनिष्पत्तिनुं पहेलुं लक्षण-चिन्ह 'औदार्य' बताव्युं. अहीं औदार्य-उदारता एटले कृपणभावनो-कंजुसाइनो त्याग. भावार्थ ए के-पैसानी उदारता करवी तेनुं ज नाम शास्त्रकार उदारता नथी बतावता, किन्तु तुच्छ-

पणानो त्याग ते ज उदारता कही छे. अन्यथा धनवान ज धर्म पामी शके, धनहीन धनना अभावे उदारता क्यांथी करी शके ? तेथी करीने कदापि धनहीन धर्म न ज पामे ए सिद्ध थयुं, ए मान्यता अनिष्ट छे. आ हेतुथी ग्रंथकार 'औदार्य' ए पदनी विस्तृत व्याख्या करतां जणावे छे के-तुच्छ स्वभावना त्यागथी हृदयना आशयनी विपुलता एटले टुंक विचारो, हलकी दृष्टि, मारा-तारापणानो अति आग्रह, लोभबुद्धि, जडता, अविनयपणुं-आ सर्व दुर्गुणो कंजुसाइना आधारे रहे छे, कंजुसाइ छुटवाथी ते दुर्गुणोनो पण नाश थाय अने विपुल विचारदृष्टि जागवाथी औचितबुद्धि-विवेकमति धर्मकर्ममां, दीर्घबुद्धि प्राप्त थाय छे ने छेवटे तेनाथी धर्मने ज आदेयपणे तथा व्यवहारने गौण मानी स्वबुद्धि, धन, विचारशक्ति विगेरेनो धर्मना माटे होम करी शके छे अने गमे ते कार्योमां तुच्छताने मूकी गंभीरबुद्धिवाळो बने छे ते ज उदारता साची उदारता अहीं आपेक्षिक छे. तथा मानयोग्य जनो साथे उचित वृत्ति एटले उचित आचरण-अनुकूल वर्तन राखवुं. अहीं मानयोग्य जनो "माता पिता कलाचार्य एतेषां ज्ञातयस्तथा । वृद्धा धर्म्मोपदेष्टारो गुरुवर्गः सतां मतः" ॥ १ ॥ 'माता, पिता, कलाचार्य-उपाध्याय, तथा ज्ञाति स्वजनो, वृद्धो अने धर्मोपदेशको ए सर्वे सज्जनोनो गुरुवर्ग कह्यो छे.' तेमंज दीनजनो, आधार विनाना दुःखी लोको तेने विषे पण उचितता-उदारता धारण करवी, अने कार्यविशेष दानादिमां उचित बुद्धि अतिशय राखवी ए सर्वे

उदारताना कार्यो जाणवा. परमार्थ ए के-मानयोग्य जनो अने दीन, दुःखी, अपंग, अंध, कृपण जनो साथे उचित सद्‌भाव राखवो, हृदयनी विशाल भावना धारण करवी, कंजुसाइने मूकी सर्वे धर्मकार्योमां अति उचित बुद्धि, गंभीर अंतःकरण धारवुं आनुं नाम "औदार्य" नामे धर्मनुं प्रथम लक्षण शास्त्रकार कहे छे.

क्रम प्राप्त 'दाक्षिण्य' नामक गुणनुं स्वरूप दर्शावे छे.

दाक्षिण्यं परकृत्येष्वपि
योगपरः शुभाशयो ज्ञेयः ।
गांभीर्यधैर्यसचिवो
मात्सर्यविघातकृत्परमः ॥ ४-४ ॥

मूलार्थ—अन्य जन संबंधी कोइ पण कार्य होय ते कार्य करी आपवामां अडग उत्साहथी सामेल थवुं एवो जे शुभ अध्यवसाय, ते पण गांभीर्यता अने धैर्यतानी साथे मत्सर-भावनो नाश करीने ज प्रवर्ते त्यारे परम उत्कृष्ट आ शुभ दाक्षिण्य गुण आव्यो कहेवाय.

"स्पष्टीकरण"

'दाक्षिण्यता' नो टुंक अर्थ एटलो ज के-सर्वने अनुकूल पोतानुं वर्तन राखवुं. अर्थात् हीन, मध्यम अने उच्च एवा त्रणे वर्ग पैकीना कोइ पण मनुष्य साथे एवुं वर्तन राखवुं

के जेथी स्वनिमित्ते ते ते आत्माओने नकामो क्लेश अथवा अधर्म न थाय, अथवा जे कार्यो अगर क्रियाओ करवाथी अन्यना कार्योनी हानि थाय तेवा कार्यो बंध करवा. अहीं टीकाकार आ गुणनी विशिष्ट व्याख्या आपतां बहु उंडाणमां उतर्या छे. प्रथम कह्या प्रमाणे वर्तन राखनारो होय, अने विशेषतया ज्यारे अन्यजनोना कार्यो पोतानी दृष्टिए देखवामां आवे त्यारे त्यारे ते लोको पोतानी सहायता याचे अथवा न याचे तो पण पोतानी शक्तिने लोप्या वगर मनसा, वाचा अने काया ए त्रणे योगथी ते कार्यो संपूर्णतया विना चुकशाने साधी आपवामां उत्साहित दिल धारवुं, आनुं नाम तात्त्विक 'दाक्षिण्यता' कही छे. 'दाक्षिण्यता' नो केटलीकवार लोको एवो अर्थ करे छे के-कोइने पण खोटुं न लगाडवुं, कोइना दिलोने न दुःखववा. आथी सर्वने राजी राखवा, जूठ, प्रपंच अने खोटी खुशामतो करवी, आनुं नाम 'दाक्षिण्यता' मानी तेवुं वर्तन पोते राखे छे अने अन्यने राखवा तेवो उपदेश पण आपे छे. यदि बीजाओ आ उपरनी मान्यता न कबूले अने न सेवे तो तेने हलको गणवो, उतारी पाडवो, पोताना टोळाथी ते व्हार छे, दुर्गुणी अने आचारहीन छे, व्यवहारने समजतो नथी इत्यादि प्रकारे निंदे छे. आथी वस्तुतः खरी 'दाक्षिण्यता' नुं स्वरूप मरी जवाथी अने आ गुणने अन्यथापणे लोको समजी जइ तेवा टोळामां सामेल बने छे. वर्तमानमां आ मान्यतानो आशय मोटा जनसमूहमां

अने प्रतिष्ठित साधुसमुदायमां पण घर करी गयो छे, परंतु वस्तुतः ए 'दाक्षिण्यता' नामक गुण नथी किंतु 'दाक्षिण्यता'ना व्हाना नीचे मानलोलुपीपणुं, पूजावानी लालसाओ अने विना गुणे गुणीपणामां खपवानी प्रपंची तृष्णाओने पोषवानो एक मार्ग छे. खरुं दाक्षिण्यपणुं सूरिजीए जे कह्युं ते ज कहेवाय अर्थात् जेओ अन्यना कार्योनी हानि कर्या वगर पोताना प्रत्येक कार्योने साधे अने अन्यना कार्योनी वखते पोताना लाभोने पण मूकी दइ ते कार्यो पेला पार पहोंचाडवाने अहर्निश कटिबद्ध रहे.

अहीं केटलीकवार केटलाको अन्यना कार्यो साधी आपे छे तेना माटे अपूर्व पोताना भोगो पण आपे छे, परंतु अमुक समये जनसमूहमां ते ते कार्योने प्रकाशमां लावी कही बतावे छे के 'अमुक वखते अमुकनुं कार्य में कर्युं हतुं' इत्यादि अथवा ते ते कार्यो करी आपी जींदगी सुधी सामानी जींदगीने पोताना गुलाम तरीके करवानो प्रयत्न करे छे. केटलाको आ गुणना कार्य नीचे दबाइ जइ अति दुःखने अनुभवे छे. अतएव प्रज्ञासिन्धु आचार्य-'गांभीर्यधैर्यसच्चिवो' ए पदथी विशिष्टता जणावे छे के-दाक्षिण्यताप्रिय उपकारबुद्धिए अन्यना गमे तेवा कार्यो करी आपे अने गमे तेवा सामाना गुप्तभेदो जाणे तथापि कालांतरे पोताना पर महान् विपत्तिनो समय आवे त्यारे पण ते ते करेला उपकारो के कार्योनी गंध सरखी अन्यना कर्णा पर न लावे. एटले के आंतरनो भेद

खाले नहीं. आवा प्रकारनुं जे वर्तन तेनुं नाम 'गंभीरता' कहेवाय. आ गंभीरतावाळो आशय उपरोक्त गुणवंतमां जो होय तो ज सत्य दाक्षिण्यपणु प्रकट्युं कहेवाय अर्थात् गंभीर आशय विशिष्ट दाक्षिण्यपणुं राखनारना हस्ते उपर कहेला जुल्मो के अनर्थो थवा पामे नहीं. गंभीर आशयनुं वर्णन अन्यत्र आ प्रमाणे कह्युं छे—"यस्य प्रभावादाकाराः क्रोधहर्षभयादिषु। विकारा नोपलभ्यंते तद्गांभीर्यमुदाहृतं" ॥ १ ॥ "जे गुणना प्रभावथी व्यक्तिगत चेष्टाओ अने हृदयना विकारो क्रोध, हर्ष अने भय आदिना अवसरे पण न जणाय तेनुं नाम. गांभीर्यपणुं कह्युं छे." गंभीरप्रकृतिवाळो अने परना कार्यो करवामां दाक्षिण्यतावाळो कष्ट, दुःखो के लोकभय अथवा जनापवाद विगेरे आवी पडे तो अन्यना कार्यो करी आपवा माटे पोतानी पीठ घणी वखत फेरवी नांखे अथवा तो वचमांथी पडता मूके आवो अनुभव आपणने थाय छे. अतएव मूलकर्ता भगवान् उपरोक्त गुणवाळो केवो होय तेना माटे फरीने 'धैर्यसच्चिव' ए पदथी धैर्यतानी साथे ज दाक्षिण्यता धारनारो अहीं जणावे छे. परमार्थ ए के-जेना हृदयनी अविचल वृत्ति एवी होय के-गमे तेवा उपद्रवो आवी पडे तो पण 'न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः' ए नियमानुसारे न्यायमार्गनुं कदापि उल्लंघन करे नहीं, तेमज आरंभेल कार्यो वचमां पडता मूके पण नहीं. ए रीते गांभीर्यता, धैर्यता ए बन्ने पवित्र आशयनी साथे जेमां दाक्षिण्यपणुं होय तो ज तेनुं सत्य दाक्षिण्यपणुं कहेवाय;

अन्यथा ते बन्ने आशय विनानुं दाक्षिण्यपणुं भद्रिक आत्माने मारनारुं कातिल शस्त्र जाणवुं. आटलुं छतां जो पोताथी अधिक गुणवंतनी प्रशंसा—कीर्ति आदिने सहन न करी शके तो, अथवा अन्य लोकोए करेल पोतानी प्रशंसा—गुणस्तुति सहन न करी शके अने मदमां चडी जाय तो उपरोक्त गुण छतां पण ते आत्माओ जगतने घणी वखत आपभूत थाय छे, आथी ज ग्रंथकर्ता फरी—' मात्सर्यविघातकृत्परमः ' चरणथी उपर कथित गुणनी व्याख्यामां वधारो करे छे. ' मात्सर्यः ' एटले अधिक गुणनी प्रशंसा अथवा स्वगुणनी प्रशंसा श्रवण करीने जे असहिष्णुपणुं अगर अभिमान उद्भवे ते. आ दोषने मूलमांथी ज उखेडी नांखी अधिक गुणीपरनो प्रेम अथवा पक्षपातवाली जेनी दृष्टि छे, तेमज स्वगुणनो जेने मद न होय एवो उत्कृष्ट पवित्र सुदाक्षिण्यस्वभाव जेनो होय तेनुं नाम ' दाक्षिण्य ' नामे बीजो शुभाशय जाणवो.

उपरोक्त सुगुण यदि पापकार्यो प्रति घृणानी बुद्धि न प्रगटे तो दुर्गुणपणे परिणमे, अने जेने लोको छलप्रपंच के मारवणीयावालो आ गुण माने छे तेवा रूपमां ज आ गुणनी व्याख्या पर्यवसित थाय, तेम ज पापकार्यो प्रति तिरस्कारदृष्टि विनानो उपरोक्त गुण नकामो ज गण्यो छे; माटे क्रमप्राप्त "पापजुगुप्सा" नामे त्रीजा गुणनुं वर्णन ग्रंथकार करे छे.

पापजुगुप्सा तु तथा
सम्यक्परिशुद्धचेतसा सततम् ।

पापोद्वेगोऽकरणं
तदचिन्ता चेत्यनुक्रमतः ॥ ४-५ ॥

मूलार्थ—'पापजुगुप्सा' एटले पापनो त्याग अर्थात् यथार्थ शुद्धचित्तवडे निरंतर पूर्वे करेल पापकार्योनी वारंवार निन्दा आववी, अने वर्तमानकालमां पापो नहीं करवा तेम ज भविष्यकालना पापकार्योनो कदापि विचार करवो नहीं, अथवा अनुक्रमे कायाथी पापो आचरवा नहीं, वचनथी करवा नही अने मनथी चिंतववा नहीं ए प्रमाणे 'पाप-जुगुप्सा' नामे त्रीजुं धर्मतत्त्वनुं लिंग जाणवुं.

"स्पष्टीकरण"

अहीं धर्मतत्त्वना बे लिंगो कह्या पछी त्रीजुं लिंग 'पापजुगुप्सा' नामे जणावे छे. 'पापजुगुप्सा' ए पदमां पाप अने जुगुप्सा ए बे शब्दो छे, तेथी पाप एटले दुष्ट व्यापारो जेवा के—चोरी, जूठ, हिंसा, मैथुन आदि तेनी जुगुप्सा एटले निन्दा, पश्चात्ताप, खेद, फरी नहीं करवा माटेनी धारणाओ करवी अर्थात् अतीतकालमां पोताना आत्माए जे जे पापकार्यो कर्यां होय तेने याद करी वारंवार पश्चात्ताप कर-वो, जेथी पोतानो आत्मा भविष्यमां फरी तेवा कार्यो करवा ललचाय नहीं. आ स्थले टीकाकार 'पापजुगुप्सा' एटले 'पापपरिहाररूपा' पापनो त्याग करवो एवो अर्थ करे छे. परमार्थ ए के—करेल पापनो पश्चात्ताप एवो करवो के भविष्यमां

फरीने तेवा पापो बने नहीं, अन्यथा 'कुंभारना मिथ्यादुष्कृत'नी माफक पश्चात्ताप कर्या पछी पण ते पापो सेवाय तो ते पश्चात्ताप दंभ ज गणाय. आ पश्चात्ताप पण 'लक्ष्मणा साध्वी'नी माफक अशुद्ध मनथी न करवो, किन्तु 'सम्यकपरिशुद्धचेतसा' ए पदथी अंतःकरणनी सर्वथा पवित्रवृत्तिथी ज करवो. ते पण एकाद वखत करवामां आवे अने पछी विसरी जवाय तो संमार्जन कर्या वगरनुं शस्त्र जेम काट खाइ जाय तेम ते करेल पश्चात्ताप पण नकामो थाय. आ हेतुथी कर्ताए मूलमां 'सततम्' ए पद आप्युं छे, अर्थात्-शस्त्रार्थी पोताना हथियारनी नित्य संभाल करे छे तेम पापथी बचवा माटे पूर्वना पापोनी नित्य शुद्ध मनथी गर्हा कर्या करवी. आनुं कारण ए के—अनादिथी आत्मानी टेव विपरीत कार्यों करवानी अने पोतानुं अहित करनार पदार्थोना संयोगोमां रहेवानी पडेली छे, आथी जो तेने थोडो पण अवकाश मले तो पापना परिचयमां आवता विलंब न थाय. भगवान् वर्द्धमान् प्रभुए गौतमस्वामी प्रति ए ज कारणथी 'समयं गोयम मा पमायए' ए उपदेश कर्यो. मूलमां 'तु' अने 'तथा' ए शब्दो तथाप्रकारे पापनो निषेध बतावनार मुख अने हस्तादिनी विशिष्ट चेष्टाद्वाराए स्पष्ट जणातो एवो पापनो निषेध—त्याग करवो ए भावने ध्वनित करवा माटे आप्या छे. पापोनी गर्हा केवी रीते करवी? तेनो प्रकार ग्रन्थकर्ता ज श्लोकना उत्तरभागथी व्यक्त करे छे. पूर्वकाले जे जे पापो सेव्या होय तेनी गर्हा करवी, एटले में पूर्वे अज्ञान-

वशपणे बहु खोटा कार्यो कर्या, अधन्य छे मारा ते आत्माने! हवे हुं फरीने तेवा कार्यो नहीं करीश, 'मिथ्या मे दुष्कृतं भूयादपुनः क्रिययान्वितं' 'मारा करेला पापो फरीने नहीं करवापणे मिथ्या–निष्फल बनो.'

व्यवहारमां वैद्यो रोगीना रोगनी शान्ति माटे प्रथम विरेचन आदि आप्या पछी वर्तमान दर्दोनी शान्ति करवाने अन्य अन्य औषधीओ आपे छे तेमज अहीं आत्मशुद्धि विषयमां पण ज्यां सुधी पूर्वना पापोनी गर्हा–निन्दा आदि प्रकारथी पापनो संबंध अल्प न थाय त्यां सुधी नवा नवा पापोनो बंध पण अलगो न ज थाय. अतएव ग्रंथकर्ताए अहीं प्रथम पूर्वना पापोनो क्षय करवा माटे गर्हा करवानुं बताव्युं. त्यारपछी विशेष शुद्धि माटे हवे 'अकरण' ए पदथी वर्तमाननी शुद्धि दर्शावे छे एटले वर्तमानमां पापो सेववा नहीं. पूर्वना पापोनो संस्कार अल्प थाय त्यारे ज नवा पापो थता अटके, तेमज भविष्यना पापो बंध करवानो उपाय ए ज के–'तदचिन्ता' कोइ पण क्षणे पापकार्यो करवानो संकल्प मात्र पण न थवा देवो, कारण के पापवृत्ति प्रेरनारा प्रथम संकल्पो–स्मरणो ज प्रगटे छे, अने पछी ज तेनो अनुराग तथा ग्रहण करवानी तीव्र लालसाओ जन्मे छे. एटले जेनुं मूल ज कापी नाख्युं होय तेनुं वृक्ष क्यांथी वधे ? न ज वधे. ज्यां स्मरण थयुं त्यां अवश्य अनुराग उपजे अने अनुराग थया पछी लेवाने मन ललचाय

छे. "लोभमूलानि पापानि" ए नीतिवाक्य यथार्थतया सुघटित थाय छे. आ माटे ज उपमितिमां कह्युं छे "पापानां कथयाप्यलं" "पापोनी वार्ता करवाथी पण पाप बंधाय छे." पापकार्योमां कोइ अजब एवी जादुइ शक्ति छे के-जेम भूत-डाकणनी सामे स्निग्ध दृष्टिए देखवा मात्रथी देखनारने ते चोंटे छे तेम पापो पण तेने याद करनारने वळगे छे. आ हेतुथी ग्रंथकार कहे छे के-तेनी चिन्ता पण कोइ समये करवी नहीं. ए रीते कालत्रयपणे पापोनी सामे तिरस्कारनी दृष्टिथी देखवुं अर्थात् सर्वथा पापोनी उपेक्षा करवी अथवा अन्य प्रकारे टीकाकार 'पापजुगुप्सा' ए पदनी व्याख्या करे छे. कायाथी पापनो त्याग करवो एटले कायाथी स्वयं पापो सेववा नहीं अने वचनथी पापो करवा नहीं, तेमज मनथी पाप करवानो विचार सरखो पण करवो नहीं, ए रीते अनुक्रमे काया, वचन तथा मन ए त्रणे योगथी पापोनो त्याग करवो. आ प्रमाणे 'पापजुगुप्सा' नो गुण प्रगटे एटले प्रथमना 'औदार्य' अने 'दाक्षिण्यता' ए बन्ने गुणो योग्य रीते सार्थक गणाय. अहीं आगल आगलना गुणो उत्तर उत्तरना गुणो साथे निकट संबंध धरावे छे. एटले उत्तरना गुणो प्रगटवाथी उपरना गुणोमां वधारे तात्त्विकता आवे छे. अहीं 'धर्मतत्त्वना' ना गुण तरीके 'पापजुगुप्सा' नामे जे त्रीजो गुण वर्णव्यो छे तेनो अर्थ 'कालत्रयपणे अथवा त्रिकयोगथी सर्वथा पापनो अभाव करवो' एवो न करवो, किन्तु जे जे मोटा पापकार्यो

होय तेना पर अप्रेमभाव–नही सेवन करवानी बुद्धि ए ज अर्थ जाणवो; अन्यथा सर्वथा पापनो अभाव तो शैलेशीकरणना अन्तिम समयमां ज थाय छे.

प्रथम 'पाप' आदिनुं यथार्थ स्वरूप समजवामां न आव्युं होय तो 'पाप' नी गर्हा केम बने ? तथा समजण विनानी निन्दा पण घणी वार अधिक पापबंध करावनारी बने छे तेम ज शास्त्रवचन पण 'ज्ञात्वा' आदि वाक्योथी प्रथम तो ज्ञाननी जरुरीयात स्वीकारे छे, अतएव 'पापजुगुप्सा' ए गुणनी अधिक दृढता करनारो चतुर्थ गुण 'निर्मलबोध' नामे शास्त्रकर्ता दर्शावे छे.

निर्मलबोधोऽप्येवं
शुश्रूषाभावसंभवो ज्ञेयः ।
शमगर्भशास्त्रयोगा–
च्छ्रुतचिन्ताभावनासारः ॥ ४–६ ॥

मूलार्थ—'निर्मलबोध' एटले शुद्धबोध. शम–शान्तिरसप्रधान एवा जे शास्त्रो तेने श्रवण करवानी इच्छाथी ज आ निर्मलबोध–शुद्धबोध प्रगटे छे अर्थात् वैराग्य, प्रशम आदि रसोनुं पोषण करनार शास्त्रद्वाराए जे बोध प्रगट्यो होय ते 'निर्मलबोध' नामे चोथुं धर्मतत्त्वनुं लिंग जाणवुं.

आ 'निर्मलबोध' श्रुतसार १, चिन्तासार २ अने भावनासार ३ एम त्रण प्रकारनो होय छे.

"स्पष्टीकरण"

'निर्मलबोध' एटले विमलबोध अर्थात् जे ज्ञानमां अज्ञाननो-विकारभावनो मल न होय, कारण के बोध बे प्रकारनो होय छेः एक तो व्यवहारिक तत्त्वनो अने बीजो धार्मिक तत्त्वनो. व्यवहारिक तत्त्वनो बोध केवल उपाधि वधारनार अने समारंभादि वधारनार होवाथी शास्त्रकर्ताए तेने अशुद्ध बोध कह्यो छे. धार्मिक तत्त्वनो बोध पण बे प्रकारनो कह्यो छे. जेमां राग, द्वेष के अज्ञानताथी आग्रहविशिष्ट पुरुषोना वाक्यो होय एवा शास्त्रो श्रवण के अभ्यास करवाथी जे बोध उद्भवे ते, अने वीतरागकथित केवल त्याग-वैराग्य प्रशमरसने ज पोषनारा शास्त्रो श्रवण तथा अभ्यास करवाथी जे ज्ञान उद्भवे ते. आ बे प्रकारना बोधमां प्रथमनो बोध आत्माने खोटा मार्ग पर लइ जनार होवाथी सर्वथा उपेक्षा योग्य छे, तथा बीजा बोधमां पण वीतरागना नामे क्लेशादि उत्पन्न करनारा तथा आग्रही पुरुषोना कहेला जे जे वचनो होय ते पण उपेक्षाने ज पात्र छे. आ हेतुथी ज ग्रंथकर्ताए मूलमां सामान्य 'बोध' ए पद न मूकता "निर्मलबोध" ए विशिष्ट पद मूक्युं छे अने टीकाकारे तेनी व्याख्या 'विमलबोध' एवी करी छे. भावार्थ ए के-' विगतः मलः यस्मात् स

विमलबोधः ' जेमांथी मल विशेषपणे गयो छे एवो जे बोध ते विमलबोध जाणवो. आ विमलबोधनी प्राप्तिनो मार्ग शास्त्रकर्ता ' शुश्रूषाभावसंभवः ' ए वाक्यथी जणावे छे. ' श्रोतुं इच्छा शुश्रूषा ' ' शास्त्रो श्रवण करवानी इच्छा ' शास्त्रोनां श्रवण विना अभ्यास न थाय तेम ज बोध पण न ज बने, माटे अहीं शास्त्रश्रवणभाव ' विमलबोध ' प्राप्तिनो मार्ग कह्यो. आ इच्छा परम अने अपरम ए बे प्रकारे वर्णवी छे. जे शास्त्रश्रवण करवामां विनय, भक्ति, आदर अने श्रद्धा होय ते परम, तथा जे कुतूहल, मान आदिनी बुद्धिथी श्रवण कराय ते अपरम इच्छा. आनुं विशिष्ट स्वरूप ग्रंथकर्ता एकादश षोडश प्रकरणमां कहेवाना छे एटले अहीं अमे विशेष नथी जणावता. ' निर्मलबोध ' नामे गुण केवा शास्त्रो श्रवण करवाथी उद्भवे ते ग्रंथकर्ता जणावे छे. ' शमगर्भशास्त्रयोगात् ' जे शास्त्रोमां प्रशम, वैराग तथा त्यागभावनुं स्वरूप यथार्थतया वर्णव्युं होय तेवा शास्त्रो श्रवण करवाथी श्रोताना हृदयमां ' निर्मलबोध ' गुण प्रगटे छे, कारण के अन्यथा प्रकारना शास्त्रो श्रवण करवाथी मलिन वासनाओनुं अधिक पोषण थाय माटे विमलबोध इच्छकोए केवल शृंगार, वीर के हास्यरसने बतावनार शास्त्रो सांभलवा नहीं. आ 'निर्मलबोध' श्रुतसार, चिन्तासार अने भावनासार एम त्रण प्रकारे कह्यो छे. आ त्रणेनुं स्वरूप अने प्रत्येकनी भिन्नता 'शास्त्रकर्ता ज आगल विस्तारथी दर्शावशे. नितान्त अहीं समजवानुं

एटलुं छे के—आ ' निर्मलबोध ' गुणनी जागृति थया पछी ' पापजुगुप्सा ' नामे त्रीजा गुणनुं स्वरूप बराबर ख्यालमां आवी शके छे अने तेने प्रवृत्तिमां योग्य रीते मूकी शकाय. नितान्त ए गुण माया रहितपणे शुद्ध तात्त्विक भावनाने पामी शके छे. अतएव ग्रन्थकर्ताए ' पापजुगुप्सा ' नी अनंतर उपरोक्त ' निर्मलबोध ' नामे चतुर्थ गुण बताव्यो.

प्रथम दर्शावेल औदार्य, दाक्षिण्य, पापजुगुप्सा अने निर्मलबोध ए गुणना अभावथी ज लोकनिन्दा, अपयश, मानहानि, अपकीर्ति आदि दुर्गुणो आत्माने लागु थाय छे अने ते गुणो आव्या पछी आ दुर्गुणो सत्वर नाश पामे छे. परमार्थ ए के—उपरोक्त चतुर्गुणी आत्मा अवश्य आदेयवाक्य तथा जनप्रिय बने, माटे अहीं ग्रंथकर्ता उपरना चार गुणोनुं कथन कर्या पछी तेना ज फलरूप ' जनप्रिय ' नामे पांचमुं धर्मतत्त्वनुं लिंग सातमा श्लोकमां दर्शावे छे.

अथवा प्रथम कथित चतुर्गुणी आत्मा बन्या पछी पण यदि तेनी केटलीक प्रवृत्ति लोकोने रुचे तेवी न होय, अगर औचित्यता, विनय, नम्रता के सभ्यजनपणु न होय तो प्रथमना चारे गुणो धर्मतत्त्वनुं बराबर कार्य साधवामां निष्फल बने. आ हेतुथी पांचमुं ' जनप्रिय ' नामे लिंग दर्शावे छे.

युक्तं जनप्रियत्वं

शुद्धं तद्धर्मसिद्धिफलदमलम् ।

धर्मप्रशंसनादे-
बीजाधानादिभावेन ॥ ४-७ ॥

मूलार्थ—पोते आचरित धर्मनी लोको प्रशंसा करे, तेमज अन्य लोको तेनुं अनुकरण करे जेथी अनुक्रमे पुण्यानु-बंधीपुण्यरूप फल धर्मीजनने प्राप्त थाय, अर्थात् आ रीते अतिशे पोते करेल धर्मसिद्धिनुं फल जेनाथी प्राप्त थाय छे एवुं शुद्ध—निर्मल अने योग्य 'जनप्रिय' नामे पांचमुं धर्मतत्त्वनुं लिंग जाणवुं.

" स्पष्टीकरण "

ग्रंथकर्त्ता शरुआतमां ज 'जनप्रिय' नामे धर्मतत्त्वनुं लिंग बराबर उचित ज छे एम 'युक्तं' पदथी ध्वनित करे छे, पण अनुचित नथी एवुं भार मूकीने जणावे छे; कारण के खरो 'जनप्रिय' ते ज होइ शके के दंभ विना धर्माचरण करतो होय तथा लोक निंदे तेवुं आचरण न करतो होय. 'जनप्रिय' थवाना कारणो आ प्रमाणे कह्या छे. प्रथम 'जनप्रियपणुं' दांभिक जूठ—कपटभावथी उपजावेलुं न होवुं जोइए, केमके घणा लोको जनतामां पोतानुं सारुं देखाडवा माटे अने सर्वने प्रिय थवा सारु अनेकधा खोटी मीठाशो तथा असत्य कपटभावो आदिने सेवे छे. आ हेतुथी ज श्लोकमां 'शुद्धं' ए विशेषण आप्युं छे. एटले जे 'जनप्रिय'पणुं राग-द्वेष विनानुं अने दंभ रहित निर्मल होय ते ज अहीं आपे-

क्षिक छे. आवा मनुष्यो ज परिणामे स्व तथा परने अत्यंत धर्मसिद्धिना फलने अर्पण करे छे. निदान ए के-दंभ अने झुठवर्तन वगरना मनुष्यो जे कांइ अल्प पण धर्म आचरे ते निर्मलभावथी सेवे छे, आथी तेओ थोडा धर्माराधनथी पण घणा ज फलने पामे छे, तथा अन्य आत्माओ तेवाओनी क्रिया देखी प्रशंसा-अनुमोदना करी अंतमां ते ते क्रियाओ तेओ स्वीकारे छे. एटले वस्तुतः तेओ धर्म ज पामे छे, कारण के-

यद्यदाचरति श्रेष्ठः, तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते, लोकस्तदनुवर्तते ॥ १ ॥ " प्रतिष्ठित जन जे जे कार्योने आदरे ते ते कार्योनुं अनुकरण इतर-प्राकृतजन करे, तथा तेओ जेने प्रमाणतया माने तेने ज इतरजनो अनुसरे." सामान्यतः अल्पज्ञजनो पोतानाथी अधिक बुद्धिमानना कार्यो तरफ वधारे विश्वास राखे छे. हेतु ए छे के-तेओमां विशेष बुद्धि, हिम्मत अने लाभालाभनो विचार करवानी शक्ति अल्प होय छे, तथा बहुधा आवा लोकोनी दृष्टि अन्यनुं अनुकरण करवानी वधारे टेवायेली होय छे. एटले अन्यना अनुमोदनीय कार्यो अवलोकी आवा लोको पोतानी सरल मतिथी तेनुं अनुमोदन करी तेवा उंचा कार्योमां धर्मीओनी पाछल पाछल थोडी थोडी गति करे ने परिणामे अल्पज्ञजनो पण उत्तम जनोना वर्तनना आधारे पोतानुं हित परंपराए सिद्ध करे छे. अतएव उपदेशको, गुरुजनो अने प्रख्यात कीर्तिनायको माटे शास्त्रकर्ताए कथन कर्युं छे के यदि आ लोको जो कोइ

पण विपरीत आचरण करे तो तेओ अनंत दुःखना भागी बनवा साथे असंख्य लोकोने अनंत दुःखना भागी बनावे छे, माटे उपदेशक गुर्वादिकोए तेवुं वर्तन करवुं के जे स्वपरने हितावह होय. निदान ए के–उपरोक्त जनप्रियपणानी प्राप्ति अर्थे शुद्ध निर्विकारी वर्तन अने धार्मिक निर्मल क्रियाओ करवी, तथा अन्य सामान्य जनो सदाचारी धर्मीलोकोना वर्तननी प्रशंसा करी पोताना आत्माने अनुक्रमे धर्मी बनावे छे एवुं समजी गुर्वादिको पोतानी महत्तानी जोखमदारी बरावर ख्यालमां लइ पोताना चारित्रने उच्चत्तर बनावे, कदापि दोष लागवा दे नहीं, एटले धर्मप्रशंसा धर्मीजनो अने इतर जननी हृदयभूमिमां धर्मबीजनी उच्च शुद्ध वावणी करे छे. एम त्यारथी थया पछी जेम बीज उत्तम भूमिमां पड्या पछी अनुकूल वायु अने जलवृष्टिना संयोगद्वाराए पत्र, पुष्प तथा फलादिने उपजावे छे तेम अहीं धर्मप्रशंसा नामक बीज पण परिणामे स्वपरने मोक्षरूप फल आपनारुं थाय छे. अत्रे मूळमां कहेल "धर्मप्रशंसादेः" ए पदनी टीकामां उपाध्यायजी आदि पदथी धर्म करवानी इच्छा, इच्छानो अनुबंध, धर्मना उपायो शोधवा. धर्ममां प्रवृत्ति करवी. गुरुसंयोग मेळववो अने छेवटे सम्यक्त्वनी प्राप्ति एटली वस्तुओ सूचवे छे. आटला पदार्थो आदि पदथी लेतां धर्मप्रशंसाने बीजनी उपमा सुष्ठुतया लागु थाय छे. अन्यथा तेने बीजपणुं घटाववामां कल्पनानो आश्रय लेवो पडे छे, तेमज मूलकर्ताए आपेल आदि पद पण

सार्थक बने छे. यशोभद्रसूरिजीए आदि पदनी व्याख्याने टूंकावी नांखी छे तेनुं कारण एटलुं ज के विस्तारमां न उतरवुं.

फरी मूलना "बीजाधानादि" ए पदनी टीकामां आदिपदथी अंकुर, पत्र, पुष्प अने फल ए चार पदार्थो सूचित करे छे. अंकुरादिनुं स्वरूप ललितविस्तरामां आ प्रमाणे छे–" वपनं धर्मबीजस्य, सत्प्रशंसादितद्गतम्। तच्चिंताद्यंकुरादि, स्यात्फलसिद्धिस्तु निर्वृतिः ॥१॥ चिंतासच्छुत्यनुष्ठान–देवमानुषसंपदः। क्रमेणांकुरसत्कांड–नालपुष्पसमा मताः" ॥ २ ॥ " सत्पुरुषोनी प्रशंसा ते बीज, धर्मनुं चिंतवन–विचार करवो ते अंकुर विगेरे अने सिद्धिनी प्राप्ति ते फल". अथवा–" धर्मनुं चिंतवन ए अंकुरा समान, धर्मनुं श्रवण करवुं ए कांडा समान, धर्मनुं आचरण ए नाल समान तथा परंपराए ते धर्मसाधनथी देव, मनुष्यनी सिद्धि पामवी ए पुष्पतुल्य मानेल छे." मोक्ष ते फलतुल्य जाणवुं. अहीं बीज बे प्रकारनुं होय छे. जेने रोपवाथी फलादि प्राप्त थाय ते अने जेने रोप्या पछी निष्फल जाय ते, तेम 'धर्मप्रशंसा' नामक बीजमां पण अद्भुत शक्ति होवाथी उत्तरोत्तर फल विगेरे प्राप्त थाय छे, कारण के–आ 'धर्मप्रशंसा' ने शास्त्रकर्त्ता पुण्यानुबंधीपुण्यनुं कारण कहे छे. "पुण्यमनुबध्नातीत्येवं शीलमिति पुण्यानुबंधि तच्च तत्पुण्यं च पुण्यानुबंधिपुण्यं ॥" जे पुण्य कर्या पछी अनुक्रमे पुण्यकर्मोनो प्रवाह चाल्या करे, यावत् जे पुण्य

सर्वथा कर्मोनी निर्जरा करावी पछी ज आत्माथी अलग थाय. आ प्रमाणे पुण्यानुबंधी पुण्यपदनी व्याख्या कही छे, एटले धर्म अने सदाचारनी प्रशंसा करवाथी प्रशंसा करनार उत्तरोत्तर पुण्यकार्योनी परंपरा ज हस्तगत करे छे. आ ज हेतुथी सूरिजीए शुद्ध एवा ' जनप्रियत्व ' नामक पांचमा गुणने धर्मसिद्धिना फल आपनार तरीके वर्णव्यो. पुण्यानुबंधीपुण्य माटे ज हरिभद्रसूरीश्वरजी वदे छे के-" शुभानुबन्ध्यतः पुण्यं, कर्तव्यं सर्वथा नरैः । यत्प्रभावादपातिन्यो, जायते सर्वसंपदः " ॥ १ ॥ सुंदर महेलमां रहेनार अधिक सुंदर महेलमां निवासार्थे जाय तेम ज पुण्यना प्रभावथी मनुष्यो उत्तरोत्तर अधिक समृद्धिओने पामे छे. अतएव गुणानुबंधी एवुं पुण्य भविक आत्माओए सर्वथा उपार्जन करवुं उचित छे, कारण के ए ज पुण्यना प्रभावथी नाश नहीं पामनारी एवी सर्व संपत्तियो प्राप्त थाय छे. " पुण्यानुबंधीपुण्यना कारणो ग्रंथकर्ताए अष्टकमां आ प्रमाणे कह्या छे-" दया भूतेषु वैराग्यं, विधिवद्गुरुपूजनम् । विशुद्धा शीलवृत्तिश्च, पुण्यं पुण्यानुबन्ध्यदः " ॥ १ ॥ एकेंद्रियथी पंचेंद्रिय पर्यंत जीवोपर दया, वैराग्य, विधिपूर्वक गुरुजनोनी पूजा, विशुद्ध एटले पवित्र सदाचारो-आ कारणोथी पुण्यानुबंधीपुण्य बंधाय छे. "

ए रीते परंपराए धर्मसिद्धि अने तेना फलो आपवाथी ' जनप्रियत्व ' नामे पांचमो गुण ' धर्मतत्त्व ' ना लक्षण

तरीके योग्य अने सुसंबद्ध कह्यो. भावार्थ ए के-उपर कहेल चारित्रवंतनी क्रियाओ प्रशंसापात्र बनवाथी सदाचारी शुद्ध-वर्तन होवाथी लोकोने हानि न थाय तेवी प्रवृत्ति आदरवाथी हास्य अने निंदा न बने तेवुं आचरण करवाथी पोते 'जन-प्रिय' बनवा साथे परने अनुकरणीय चारित्रद्वारा स्वपर उभयने धर्मसिद्धिकारक बने छे. अतएव आ लक्षणथी धर्म पामेल धर्मी आत्मामां 'धर्मतत्त्व' नी प्राप्ति थइ छे के नहीं एवुं अनुमान सुंदर रीते करी शकाय छे.

उपर कह्या प्रमाणे 'धर्मतत्त्व' ना पांच लक्षणो पांच श्लोकथी ग्रंथकर्ताए विस्तारथी बताव्या, जे परथी तेनुं स्वरूप समजाव्या पछी विवेकी कोइ पण आत्मा धर्मीओनी परीक्षा करवा जरुर समर्थ थाय एमां संदेह नथी, तथापि विशिष्ट परीक्षा माटे फरी ग्रंथकर्ता तेना धर्मी आत्मामां विशिष्ट दोषो जेवा के विषयतृष्णा विगेरेनो जरुर अभाव होय ते समजाववा माटे दृष्टांतपूर्वक आदि दोषोनुं विस्तृत स्वरूप दर्शावे छे—

आरोग्ये सति यद्वद्
व्याधिविकारा भवन्ति नो पुंसाम्।
तद्वद्धर्मारोग्ये
पापविकारा अपि ज्ञेयाः ॥ ४-८ ॥

मूलार्थ—आरोग्यता-रोगनो अभाव थया पछी जेम मनुष्यने कांइ पण व्याधि संबंधी विकारो उद्भवता नथी

तेमज धर्म संबंधी आरोग्यता मल्या पछी पापरूप विकारोनो जन्म थतो नथी.

"स्पष्टीकरण"

आरोग्यता एटले तंदुरस्तीपणुं, रोगनो अभाव, एटले तंदुरस्तीपणामां व्याधिओ जन्मे तो तंदुरस्तीपणुं न कहेवाय, कारण के तंदुरस्तीपणुं तथा व्याधियो ए बंनेने परस्पर प्रतिबंधक प्रतिवध्यभाव छे, ते ज प्रमाणे प्रथम जणावेल पांच लक्षण विशिष्ट 'धर्मतत्त्व' पाम्या पछी पापविकारो जेनुं स्वरूप ग्रंथकर्ता नीचे जणावे छे ते कदापि उद्भवे नहीं अर्थात् ए पापविकारोने बंध करनार उपरोक्त धर्मतत्त्वरूप आरोग्यता जाणवी. आ श्लोकना पूर्व भागमां ग्रंथकर्ताए दृष्टांत आप्युं अने उत्तरभागमां दार्ष्टान्तिकनी घटना करी छे. परमार्थ ए के—आरोग्यतानी सामे धर्मारोग्यता अने व्याधिविकारोनी सामे पापविकारो ए प्रमाणे दृष्टांत दार्ष्टांतिकनी घटना समजवी.

धर्मतत्त्वना प्रभावथी जे जे पापविकारोनो नाश थाय अथवा उद्भवे नहीं तेनुं स्वरूप ग्रंथकर्ता विस्तारथी दर्शावे छे.

> तन्नास्य विषयतृष्णा
>
> प्रभवत्युच्चैर्न दृष्टिसम्मोहः ।
>
> अरुचिर्न धर्मपथ्ये
>
> न च पापा क्रोधकंडूतिः ॥ ४-९ ॥

सूत्रार्थ—आ धर्मतत्त्व पामेल मनुष्यने अतिगाढ विषय-तृष्णा उद्भवती नथी तेमज दृष्टिसंमोह पण पराभव करी शकतो नथी, अने धर्मरूपी पथ्य पर अरुचि आवती नथी, एवं पापीष्ट क्रोधनी खुजलीओ के जेनाथी धर्म–धननो नाश थाय ते पण आविर्भाव पामती नथी.

"स्पष्टीकरण"

आ श्लोकथी मूलकर्ता धर्मतत्त्व पाम्या पछी तेना प्रभावथी शुभ आत्माने क्या क्या पापविकारो उद्भवता नथी तेनो केवल नामनिर्देश दर्शावे छे, कारण के नाम-निर्देश कर्या पछी विशेष स्वरूप कहेवानी सुगमता थाय. उपर धर्मतत्त्वना प्रभावथी पांच विशिष्ट गुणोनो लाभ थाय एवुं विधिमुखे प्रतिपादन कर्युं, हवे निषेधमुखे दोषो न उद्भवे ते अहीं जणावे छे. जो के गुणप्राप्ति जणाव्या पछी दोषाभाव थवानुं अर्थापत्तिथी ज लभ्य छे, एटले फरी दोषाभावनुं स्वरूप कहेवुं काकदंत परीक्षा जेवुं ज गणाय; परंतु अहीं विशिष्टता आ समजवी के ज्यां गुण अने दोषोनो परस्पर प्रतिबंधक प्रति-बध्यभाव सुघटित होय त्यां ज उपरोक्त न्याय लागु थाय. दृष्टान्त तरीके शील अने व्यभिचार, दान तथा कृपणता विगे-रेने तथाप्रकारे अहीं पण उपरोक्त पांच गुणो अने आगल कथन करातां पापविकारोने परस्पर प्रतिबंधक प्रतिबध्यभाव नथी, अर्थात् उपरोक्त गुणप्राप्ति थया पछी गुण आगल कथन करातां पापविकारो जागृतिने पामे छे. अतएव ग्रंथकर्ताए 'दोषाभाव' स्वरूप व्यतिरेकमुखथी विस्तृतया भत्राभिप्राणे

स्पष्ट कथन करे छे. अन्यथा आ 'दोषाभाव' नुं भिन्न स्वरूप दर्शाववानी जरुर नथी. आ पापविकारो गाढ विषयतृष्णा १ दृष्टिसंमोह २, धर्मपथ्यमां अरुचि ३ अने क्रोधकंडूति ४ जाणवा. आ चारे विकारोनुं विशेष स्वरूप ग्रंथकर्ता पोते ज विस्तारथी दर्शावशे एटले अमे अहीं नाम मात्रनुं ज सूचन कर्युं.

प्रथम विषयतृष्णानुं लक्षण जणावे छे.

गम्यागम्यविभागं
त्यक्त्वा सर्वत्र वर्तते जन्तुः।
विषयेष्ववितृप्तात्मा
यतो भृशं विषयतृष्णेयम् ॥ ४-१० ॥

मूलार्थ—शब्द, स्पर्श, रस, रूप अने गंध ए पांच विषयो छे. आ विषयोथी जेओनो आत्मा संतोष नथी पाम्यो तेवाओ गम्य अने अगम्यनो विवेक विचार्या वगर चारे तरफ फांफां मारे छे माटे अन्य विषयवासनानी अपेक्षाए आ गाढ तृष्णा भान भूलावनार होवाथी आनुं नाम विषयतृष्णा नामे पापविकार विद्वानोए कह्यो.

"स्पष्टीकरण"

विषयतृष्णा नामे प्रथम पापविकारनुं स्वरूप अहीं जणावे छे तेमां संसारीने अंगे विषयेच्छानो सर्वथा अभाव मानवो अकल्पनीय छे. अनादिनी उदयगत विषयेच्छा पूर्ण करवाने ज संसार संसारीओ रचे छे, आथी अहीं

विषयतृष्णाने बे विभागमां वहेंची शकायः एक साधारण विषय-तृष्णा अने बीजी असाधारण अतिविषयतृष्णा. अद्यपि बन्ने विषयेच्छाओने पाप ज मानी छे तथा जे विषयेच्छानी पूर्णता करवाने आत्मा पोतानो विवेक अने मर्यादा तोडवापर्यंत नीची दशामां उतरे नहीं तेमज इहलोक परलोकना अकार्योथी सभय-पणे प्रवृत्ति आदरे तेने साधारण विषयतृष्णा जणावी पापवि-कारना लक्षणथी वहिर्भूत मानी छे, कारण के आ विषयेच्छा व्रतधारी जैनो तथा सम्यक्त्वधारी आत्माओ पण एकाएक त्यागी शकता नथी अने परिणामे स्वहित साधवाने समर्थ थाय छे. सम्यक्त्व पाम्या पछी भरतचक्रवर्ती चोसठ हजार राणीयो साथे भोगविलास करता हता. चेडाराजा, उदायी महा-राज, कृष्णवासुदेव अने श्रेणिकराजा विगेरेना दृष्टांतो शास्त्रमां प्रसिद्ध छे. परमार्थ ए के-धर्म अने आत्महितनुं साध्य भ्रष्ट न थवुं जोइए. आ विषयेच्छा पण आसक्ति अने अनासक्ति भेदोथी बे प्रकारनी जाणवी. तीर्थंकर विगेरेना जीवो मति-श्रुत-अवधिज्ञानवंत छतां जे अमुक वर्षो पर्यंत गृहवासमां रही राज-भोग, भोगविलासो सेवता हता ते मात्र उदयगत कर्मोना फलोनी विचित्रता जाणीने तेना अनुभवार्थे ज भोगवता अर्थात् अना-सक्तिपणे रह्या हता. अने ज्यारे कर्मोदय शांत थयो एटले तुरतज वस्त्रांचले लागेल तृणनी माफक सर्व भोगनो त्याग करता. तेमज नेमनाथ प्रभुए कर्मोदय न होवाथी गृहवास सेव्यो नहीं, ए ज अनासक्त विषयेच्छानी अवधि जाणवी. वासुदेव,

चक्रवर्त्ती अने राजाओ विगेरे धर्मस्वरूप जाण्या पछी, व्रत अने समकित पाम्या पछी जे विलासादि सेवता ते अनासक्ति नहीं किन्तु आसक्ति ज हती. आ परथी समजवानुं के जेओ निश्चयनी वातो करी, अध्यात्मनो डोळ घाली, तिथि के अतिथि, रात्रि के दिवस, खाद्य के अखाद्य, गम्य के अगम्यनो विचार बाजु पर मूकी विषयेच्छाओ–तृष्णाओ पूर्ण करवामां ज लीन बनी, अन्यने अमने आसक्ति नथी, मात्र कर्मोदयना लीधे ज आ अमारी प्रवृत्तिओ चालु छे, जो आसक्तिपूर्वक चेष्टा होय तो ज पुनः कर्मनो बंध थाय अतएव जिनेश्वरोए शास्त्रमां अध्यवसाए बन्ध मान्यो छे ए प्रमाणे समजावे छे तेओ प्रति अहीं अमे विशेष नथी कहेवा मागता; पण आ लोकोए उपरना भेदो विचारवा तेमज पोतानी चेष्टाओ अनासक्तिपणानी छे (!) ए वात उपर दर्शित स्वरूपनी साथे विचारवी जेथी बेवडा पापबंधथी पोताना आत्माने बचावी लेवाय.

अत्रे चालु श्लोकमां केवल अतिविषयतृष्णानुं स्वरूप ग्रंथकर्ता जणावे छे, जे विषयेच्छाना बलथी कोइ पण आत्मा मूढ अने विवेकमर्यादा रहित थाय. "कामान्धा न पश्यंति" ए न्याये कामीजनो कांइ पण जोइ शके नहीं, एवं परिणीत, अपरिणीत, बालविधवा, कन्या, रंडा तथा वेश्या गमे त्यां गमन करे, स्वजाति तथा परजातिनो पण विचार जे करे नहीं, रात्रि–दिवसनो विभाग, तिथि–अतिथिनो विभाग पण जे जाळवे नहीं, नितान्त

ध्यानवृत्तिए विषयान्ध बनी विषयेच्छापूरक शब्द, स्पर्श, रस, रूप अने गंधादि पदार्थोनी प्राप्ति अर्थे अति तृष्णाथी चेष्टाओ करे छे. अतएव आ तृष्णाने शास्त्रकर्ताए प्रथमनी तृष्णाथी अलग पाडी अतिविषयतृष्णा एवुं नाम आप्युं, कारण के आ तृष्णाना उदयथी आत्मा पोतानुं हित अने इहलोक-परलोकनुं कल्याण विचारी शकतो नथी, एवं धर्म पण करी शकतो नथी. एक कविए बराबरज कह्युं छे के:-"दिवा पश्यति नो घूकः, काको नक्तं न पश्यति । अपूर्वः कोऽपि कामान्धो, दिवा नक्तं न पश्यति" ॥ १ ॥ "घुवड दिवसे देखतुं नथी अने कागडो रात्रीए देखतो नथी त्यारे कामान्ध दिवस अने रात्रिए पण देखतो नथी." तेमज-"दृश्यं वस्तु परं न पश्यति जगत्यन्धः पुरोऽवस्थितं, कामान्धस्तु यदस्ति तत्परिहरन् यन्नास्ति तत्पश्यति । कुन्देन्दीवरपूर्णचन्द्रकलसश्रीमल्लतापल्लवा-नारोप्याशुचिराशिषु प्रियतमागात्रेषु यन्मोदते" ॥२॥ "जगतमां अन्ध मनुष्य समीपे रहेल दृश्य पदार्थो देखतो नथी ए वात कांइ आश्चर्य करे तेवी नथी, पण कामान्ध जन तो पासे रहेल होय अने दृश्य होय तेनो त्याग करी जे समीपे अने दृश्य पण न होय तेवा पदार्थोने देखे छे, कारण के स्त्रीओना प्रत्येक अवयवो अशुचि तथा बीभत्स छतां नेत्रमां कमलनो, मुखमां पूर्णचन्द्रनो, स्तनमां कलशनो, भुजामां लतानो आरोप करी स्त्रीना अवयवो देखी प्रसन्न थाय छे." आवी स्थितिए पहों-

चेल मनुष्यने धर्मना साधनो तथा धर्म क्यांथी उपलब्ध थाय ? हेतु ए के—तेने स्वप्ने पण स्वहितनो विचार आववो अशक्य छे.

आ स्थले रावणनुं चरित्र हितार्थीने मनन करवा जेवुं छे. रावण एक समर्थ राजाधिराजनुं पद धारवा साथे विधाताने पण टकोर करनार महाप्रज्ञाशाली हतो. जेनां बुद्धि—चातुर्य आगल ब्रहस्पति सरीखाओ पण सेवक समान मनाया हता, जेनी दक्षता अने बलिष्ठता पासे दैत्यो तथा राक्षसो थरथर कंपित थता हता, जे नीतिशाली होइ प्रजानुं वात्सल्यभावथी पालन करतो हतो, आवो समर्थ अने चतुर छतां ज्यारे सीता प्रति तेनुं मन ललचायुं त्यारे ते सर्व भान भूली गयो, स्वस्त्री के परस्त्री, कार्य के अकार्यनो विचार रह्यो नहीं, नितान्त तेना ज ध्यानमां दुर्बळ थवा लाग्यो. छेवटे पापनो, अनीतिनो, लोकलज्जानो, अपकीर्त्ति विगेरेनो भय त्याग करी सीताने पोताने त्यां उठावी लाव्यो अने तेनी साथे पोतानी वासना तृप्त करवाने घणाये गोथा खाधा. अंतमां वासना पूरी थइ नहीं, कोइनुं मान्युं नहीं, सर्वथा भ्रष्ट थयो अने पोतानी पाछळ जगत पर सदाने माटे अपकीर्तिनो पुंज राखी गयो.

आ सर्व स्थितियो उपर कहेल अतिविषयतृष्णानुं ज कार्य समजवुं. अतएव ग्रंथकार आ तृष्णाने ‘ पापविकार ’ गणी धर्मी आत्मामां आनो अभाव जणावे छे, तेम ज खास श्लोकमां जणाव्युं छे के—‘ विषयेष्ववितृप्तात्मा ’ आ

तृष्णाना उदयथी समर्थ आत्मा पण सर्वदा विषयोमां अतृप्त ज रहे छे, एटले गमे तेवा सुंदर अप्राप्य अने अलौकिक भोग्य पदार्थो उपलब्ध थाय तो पण अन्य अन्य विषयो मेळववाने अभिलाषा ज रहे छे. आ हेतुथी ज आ तृष्णा त्याज्य गणी अने आ तृष्णाना उदयमां उपरोक्त 'धर्मतत्त्व' पामवो दुर्लभ वताव्यो.

हवे दृष्टिसंमोह नामे बीजा पापविकारनुं स्वरूप प्रगट करे छे.

गुणतस्तुल्ये तत्त्वे
संज्ञाभेदागमान्यथादृष्टिः ।
भवति यतोऽसावधमो-
दोषः खलु दृष्टिसंमोहः ॥ ४–११ ॥

मूलार्थ—जेनुं फल एक सरखुं होय एवा बे तात्त्विक पदार्थो छे, छतां बन्ने पदार्थोने नामभेदथी अथवा पोतपोताना आगममां बतावेल प्रकारथी अन्यथापणे माने एवा प्रकारनो दोष जेना बलथी प्रगटे तेने निश्चयतया विद्वानो 'दृष्टिसंमोह' नामे बीजो पापविकार माने छे.

" स्पष्टीकरण "

प्रथम पापविकार 'विषयतृष्णा' जणावी. हवे 'दृष्टिसं-मोह' नामे पापविकार जणावे छे. अहीं 'विषयतृष्णा' ना स्वरूप पछी 'दृष्टिसंमोह' नुं स्वरूप कथन कर्युं पण प्रथम

'दृष्टिसंमोह' तुं अने त्यारबाद विषयतृष्णानुं स्वरूप एवो अनुक्रम केम न जणाव्यो ? ए प्रश्न सहजतया पेदा थाय छे. उत्तरमां समजवानुं के-जे अहीं चार पापविकारो जणाव्या तेमां उत्पत्तिक्रमनी अपेक्षाए विचार करीए तो प्रथम क्रोधकंडूति, बीजो धर्मपथ्यमां अरुचि, त्रीजो दृष्टिसंमोह अने चतुर्थ विषयतृष्णा ए प्रमाणे पापविकारो उपजे छे. क्रोधथी धर्ममां अरुचि, अरुचिथी दृष्टिनो मोह अने दृष्टिमोह थया पछी विषयेच्छा प्रगटे-आ क्रम छतां ग्रंथकर्ताए यथाप्राधान्य न्याये एटले सर्वथी प्रधान पदार्थोनो प्रथम न्यास करवो अने पछी प्रधान प्रधाननो अनुक्रमे न्यास करवो ए रीति स्वीकारी छे.

मूलना 'दृष्टिसंमोह' नामे पदनी टीकामां-" दृष्टिः दर्शनं-आगमः जिनमतं तत्र संमोहः संमूढता अन्यथोक्तस्यान्यथा प्रतिपत्तिः दर्शनसंमोहः" " दर्शन एटले आगम-जिनमत तेमां मूढता अर्थात् आगममां कहेल वस्तुने अन्यथापणे स्वीकारवी तेनुं नाम दर्शनसंमोह जाणवुं " ए प्रमाणे कह्युं छे. आथी दृष्टि एटले मान्यता-वस्तुप्रतिपत्ति तेमां मतिनी व्याकूलता ते ज दृष्टिमोहनुं खरुं स्वरूप समजवुं. अहीं दृष्टिमोह वस्तुबोधमां मुंझवण करावी वस्तु-स्वीकारना रागमां खेंची जाय छे, अने दृष्टिराग अमुक व्यक्तिमां राग उपजावी व्यक्तिप्रेम तरफ खेंची जाय छे. आथी जे प्रेम बन्या पछी अनेक अनर्थो तथा आत्मअहित वेठवा छतां आ रागने समजु मनुष्य पण छोडी शकतो नथी.

" दृष्टिरागस्तु पापीयान्दुरुच्छेदः सतामपि " अतएव आ बन्ने दुर्गुणो अलग अलग समजवा, पण बन्नेनी ऐक्यता करवानी उतावळ करवी नहीं. आ दृष्टिमोह पोताना उपजवा पछी आभिनिवेशिक नामे मिथ्यात्वभावने अवश्य उपजावे छे अर्थात् आभिनिवेशिक मिथ्यात्व विना केवल दृष्टिमोह रही शकतो नथी, माटे दृष्टिमोह आभिनिवेशिक मिथ्यात्वनुं खास उपादान कारण मान्युं छे. अतएव मूलकारे अहीं मूलमां 'अधमो दोषः' ए पदथी आ दोष अधम-निकृष्ट छे एम कह्युं, आटलुं ज नहीं पण ' खलु ' ए पद खास वधारे भार मूकवाने आप्युं छे अर्थात्-आ दोष खरेखर अधम ज छे, आत्मानो घातक नितान्त आ दोष छे. हवे श्लोकना पूर्वार्धथी आ दोषनुं स्वरूप समजावे छे. 'गुणतस्तुल्ये तत्त्वे संज्ञाभेदागमान्यथादृष्टिः ' गुणनो अर्थ उपकारफल तेने आश्रीने तुल्य एटले समान अने तत्त्वनो अर्थ पदार्थ. 'तत्त्वे' अहीं द्विवचन होवाथी बे पदार्थो लेवा. परमार्थ ए के-बे पदार्थो एवा होय के जेनुं फल बराबर एक सरखुं ज होय, छतां मात्र बन्नेना नामो भिन्न भिन्न होय तेथी अने पोतपोताना मानेल आगमोमां भिन्न प्रकार बताव्यो होय तेथी आ बन्ने कारणोथी ते बन्ने पदार्थोने वस्तुतः एक छतां भिन्नरूपे मानवा. जेमके-' मा हिंस्यात् सर्वभूतानि ' ए वाक्यथी भूतहिंसामां पाप मान्युं तो पण अमुक जीवनो कोइ माणस मांसना लोभथी अथवा अन्य कारणथी वध करे एटले आ वध करवामां

जेम पाप मान्युं तेम वैदिको वेदवाक्यथी यज्ञना माटे अमुक जीवोने वध करे आ वधमां पाप नथी मान्युं. हवे अहीं पोताना स्वार्थ निमित्ते करेल वधमां दुष्टचित्त मारवाना क्लिष्ट परिणामो अने स्वार्थनी तृप्ति तेमज मांसास्वाद आदि फलो वधकर्ता अनुभवे छे आ हेतुथी प्राणीवधमां पाप मान्युं. ते ज रीते यज्ञ माटे जे हिंसा थाय त्यां पण हिंसाकर्तामां दुष्टचित्त मारवानी बुद्धि, स्वार्थलोभ अने यज्ञशेषानो भोग विगेरेनो अवश्य सद्-भाव छे, तथापि आ हिंसामां वेदवचनथी दोष न मानवो आनुं ज नाम शास्त्रकर्ता दृष्टिसंमोह जणावे छे, कारण के उपरोक्त बन्ने हिंसाओ परमार्थथी हिंसा ज छे, बन्नेनुं फल पण एक सरखुं छे; किन्तु यज्ञहिंसा वेदमां कर्तव्य तरीके जणावी एटले तेने वैदिकोए हिंसा न मानी अने बीजी हिंसामां अधर्म मान्यो. ए ज रीते अमुक संप्रदायमां आचार्य गृहवासी अने शिष्यसमु-दाय त्यागी तथा ब्रह्मचारी आचार्यनी पालखी वहन करे, चामर ढाले, जे गृहसंसार अन्यने माटे पापरूप मान्यो त्यारे आचार्य प्रभुनो अवतार मनावी भोगविलासो करे अने तेमां पापनो अंश मात्र नथी परंतु ए तो इश्वरनी लीला छे एम वदे, तेम ज गुंसाइओ पण कृष्णावतार मनावी भोगविलासो करे तथा पाप न माने, जैनमतमां पण केटलाक शुष्क अध्यात्मवा-दीओ अमुक अमुक पापोनुं सेवन करे छतां ' ए तो शरीरनी प्रवृत्ति छे ' एम कही पाप नथी मानता ए सर्व चेष्टाओ दृष्टिसंमोह नामे दुर्गुणनी उपजावेली समजवी के जे दुर्गुणना

उदयथी ते ते आत्माओ पापने पापरूप न मानता कर्तव्यधर्म माने छे. आ ज दोषना वलथी उंच भूमिकाए पहोंचेल आत्माओ उंधे मुखे पडी अधोमार्गगामी बन्या छे. जमाली महावीर प्रभुथी उलटो थयो, त्रैराशिकमत प्ररूपक संघ आचार्य अने भगवंतना सिद्धान्तथी उलटो चाल्यो विगेरे 'दृष्टिसंमोहना' साम्राज्यनो ज प्रभाव कह्यो छे.

अथवा प्रकारांतरे दृष्टिमोहनुं स्वरूप जाणवुं. 'गुणतः' ए पदनो भाव अध्यवसाय ए अर्थ लेवो, अर्थात् ए क्रियाओ तुल्य होय, तेना कर्ताओ बन्ने जण एकसरखा परिणामवाला होय अगर बन्ने क्रियाओ समान भाववाली होय छतां तेमां नामभेदथी अथवा आगमवचनथी पूर्वे कहेल वैदिकोनी यज्ञ- हिंसानी माफक एकने पापरूप मानवी अने अन्यने कर्तव्य- कर्म तरीके मानवी आ लक्षण जे प्रवृत्तिमां सुघटित थाय ते दृष्टिसंमोह जाणवो. अने जे क्रिया उपलक दृष्टिये सरखी होय, तेमां प्रवर्तन करनार पण उपलक दृष्टिये पाप आचरण करतो देखाय छतां परिणामनी धारा भिन्न ज–अलिप्त होय, ते क्रियामां पोतानो यत्किंचित् स्वार्थ न होय तेमज क्रियाजन्य फलनी इच्छा पोताना माटे राखतो न होय किन्तु धर्मसंरक्षण बुद्धि ज होय तो ते क्रिया पापरूप देखावा छतां तेना कर्ताने नितान्त कर्म- निर्जरा अने शुभबंध ज थाय; परंतु पाप लागे नहीं. दृष्टांत तरीके एक माणस, कुटुंब, स्त्री, पुत्र अने धन आदिनी लालसाथी व्यापार, खेती, व्याज, ग्रामसंरक्षण आदि करतो होय, अने

एक मनुष्य केवळ धर्मना माटे हाट, हवेली, व्याज, ग्राम-संरक्षण अने सुवर्णादिनो संचय करतो होय—आ बेमां पहेलांने स्वार्थ, तृष्णा, लोभ अने पापबुद्धि होवाथी तेने आरंभजन्य पापबंध अवश्य थाय छे; कारण ए के स्वार्थने माटे स्त्री आदिना मोहना लीधे आरंभादि सेवनारमां कदापि ते ते आरंभादिमां शुभ परिणाम संभवतो नथी, ज्यारे बीजामां स्वार्थ, लोभ अने दुष्ट परिणामो न होवाथी केवल धर्म तथा शासननी अपूर्व भक्ति होवाथी शुभ परिणाम संभवे छे. एटले तेने शुभबंध ज थाय ए ज वात शास्त्रोमां विस्तारथी ज प्रश्नोत्तर पूर्वक जणावी छे.

फरी आ विषयमां अहीं श्रीमान् यशोविजयजी उपाध्यायजी त्रीजो प्रकार दर्शावे छे.—' गुणतः शब्दार्थतस्तुल्ये तत्त्वे हिंसादीनां ' गुणथी—शब्दार्थथी हिंसादिनुं स्वरूप समान होय परंतु नामभेदथी पोतपोताना शास्त्रोमां भिन्न भिन्न शब्दोथी दर्शावेल होय. भावार्थ ए के—सर्व दर्शनकारोए पोतपोताना मतोमां हिंसादिनुं स्वरूप स्पष्ट जणावी तेनो निषेध दर्शाव्यो छे, एवं जैनो पण हिंसादिनुं स्वरूप स्पष्ट कर्या पछी तेना त्याग माटे महाव्रत शब्द, पातंजल अकरण शब्द, बौद्धो नियम शब्द कहे छे. एटले मात्र अहीं नामभेद सिवाय अन्य कांइ तत्त्व नथी. वस्तुतः महाव्रत, अकरण अने नियम ए त्रणेनो एक ज भाव शब्द—व्युत्पत्ति करवाथी उपस्थित थाय छे, तथापि महाव्रत कथनकर्ता अमारुं जैनागम सुंदर छे; अक-

रया तथा नियम दर्शावनार अन्य शास्त्रो समीचीन नथी ए प्रकारे आग्रहविशिष्ट वस्तु स्वीकार करवाथी उपाध्यायजी कहे छे के ते दृष्टिमोह ज गणाय. निदान ए के—यद्यपि अन्य शास्त्रो समीचीन मान्या नथी तो पण जे अंशमां सर्वज्ञमतने अनुसरता होय अने नितान्त नामभेदथी ज अलग पडता होय ते अंशने असमीचीन अने असत्य स्थापवाथी विपरीत मान्यता ज गणी शकाय. अतएव आ दृष्टिने दृष्टिमोह जणाव्यो तेमज अन्य मतमां जे सर्वज्ञवचननुं अनुसरण देखाय छे ते सर्वज्ञमतना वाक्योना आलंबन लीधा पछी ज संभवे; अन्यथा अंश मात्र मात्र पण सत्य वस्तुबोध अन्य मतमां क्यांथी घटे ? कहुं पण छे के उपदेशपदमां प्रस्तुतः ग्रंथकर्ताए "सव्वप्पवायमूलं दुवालसंगं जओ जिणक्खायं । रयणागरतुल्लं खलु तो सव्वं सुन्दरं तम्मि " ॥ १ ॥ " द्वादशांगीमांथी अमुक अमुक वचनो स्वीकार्या पछी प्रत्येक मतो उपस्थित थया छे. आ हेतुथी आ द्वादशांगी रत्नाकर समान होवाथी सर्व मतोनुं मूल जिनकथित द्वादशांगी कही छे, एटले परमतना शास्त्रोमां जे जे सुंदर होय ते ते द्वादशांगी अंतर्गतनुं जाणवुं." टुंकाणमां एटलुं ज समजवानुं के ज्यां नामभेद सिवाय वस्तुतः पदार्थभेद न होय, परमार्थतया एक ज होय, छतां नामभेदना लीधे आग्रहमां खेंची जइ पोतानुं ते सारुं अने अन्यनुं सारुं छतां खोटुं मानवुं ते दृष्टिमोहनुं लक्षण छे. अहीं एक अंश मात्र सत्य पदार्थ जणावनार अन्य मतने सुंदर मनाववानो

उपाध्यायजीनो आशय नथी, किन्तु नामभेद जाणी वस्तुनो विचार नहीं करवो अने नामना मोहमां खेंचाइ जवुं ए खोटुं छे, अहितकर्ता छे, सत्य वस्तुनी परीक्षाथी ठगावानुं छे ए ज बतावबानो मनोरथ उपाध्यायजीनो छे. आ त्रणे प्रकारो 'दृष्टिमोह' नुं स्वरूप जणावे छे अने 'दृष्टिमोह' मिथ्यात्व-भावजनक होवाथी ग्रंथकर्ताए तेने अधम–निकृष्ट दोष जणावी धर्मार्थी आत्माने सर्वथा त्याग करवा योग्य छे एम मानी आ प्रमाणे विस्तृत स्वरूप कह्युं.

ए रीते 'दृष्टिसंमोह' नुं स्वरूप जणाव्या पछी 'धर्मपथ्यमां अरुचि' ए त्रीजा दोषनुं स्वरूप जणावे छे.

> धर्मश्रवणेऽवज्ञा
>
> तत्त्वरसास्वादविमुखता चैव ।
>
> धार्मिकसत्त्वासक्तिश्च
>
> धर्मपथ्येऽरुचेर्लिंगम् ॥ ४–१२ ॥

मूलार्थ—धर्मव्याख्यानोनां श्रवणमां अनादर, परमार्थभूत पदार्थ संबंधी जे रस तेना स्वादमां विमुखपणुं, धर्मिष्ठजनोनी संगति नहीं करवी ए सर्वे धर्मपथ्यना अरुचि चिह्नो छे.

" स्पष्टीकरण "

धर्मपथ्यनी अरुचिना प्रकारो दर्शावे छे. धर्मशास्त्रो अने धर्मव्याख्यानो ज्यां वंचाता होय त्यां तेने सांभलवानी रुचि

न थाय, प्रमाद आडो आवे अथवा निद्रा विगेरे अनेक विघ्नो खडा थाय तेमज निवृत्ति नथी, व्यवसाय बहु छे एम कही धर्मश्रवण न करे अने शृंगाररसनी, विकथानी, हास्यनी, विलासोनी ज्यां कथाओ थती होय त्यां उत्साहथी जाय, निद्रा के प्रमाद नडे नहीं, व्यवसायनो पण विचार आवे नहीं, वळी नाटको, सिनेमोटोग्राफ आदि देखवा माटे पैसानो व्यय करी गाढ प्रेमथी गमन करे, ज्यारे धर्मश्रवण करवाने कोइ प्रेरणा करे तो 'एमां शुं सांभळवानुं छे? आपणे जाणीए छीए तेमां कांइ नवुं नथी' अथवा 'अत्यारे धर्मश्रवणनो समय नथी, अवस्था थया पछी घणुं सांभलीशुं' इत्यादि कथन करी धर्मश्रवणमां अनादरभाव उपजवो ते; वळी रमणीरस मोजशोखमां लीनता राखवी अने तत्त्वभूतप दार्थोमां, आत्महितमां, निःश्रेयसमार्गमां जे प्यार उपजवो जोइए ते न उपजे किन्तु ते रसना आस्वादनभावमां परांगमुखपणुं प्रगटवुं ते धर्मपथ्यना अरुचिना प्रकारो छे. फरी जेनी संगति करवाथी आत्माना गुणो आविर्भूत थाय, अनादिनी कुटेवो मटी जाय, टुंकमां जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यं, मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति। चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्त्तिं, सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्? ॥१॥ " बुद्धिनी जडतानो नाश करे, वाचामां सत्यरसनुं सिंचन करे, मानयोग्य उन्नत दिशानुं दर्शन करावे, पापने दूर करे, चितनी प्रसन्नता करे अने चोतरफ कीर्त्तिनो वधारो करे एवी सज्जनसंगति मनुष्योने शुं शुं लाभो नथी करती?"

भावार्थ ए के–सत्संगति जगतना उंचामां उंचा सर्व लाभो प्राप्त करावे छे. आवी सज्जनसंगतिना संसर्गमां रहेवाने चित्त प्रेराय नहीं, किन्तु जेना संगथी दुर्गुणो, पापमति, कुव्यसनो अने निकृष्ट परिणामो मळे तेवी संगति करवाने चित्त राजी थाय–आ लक्षणोने शास्त्रकर्ता ' धर्मपथ्यनी अरुची ' नामे त्रीजो पापविकार गणावे छे. आ पापविकारना बलथी आत्मा धर्मामृतनुं पान कदापि अनुभवी शकतो नथी अने तेथी आत्महित समजवाने हतभाग्य रहे छे. आ श्लोकमां उपर कह्या प्रमाणे धर्मश्रवणमां अनादरभाव, तत्त्वरसास्वादमां विमुखता, सज्जनोनी असंगति जे दर्शाव्या ते ' धर्मपथ्यनी अरुचि ' विवेकीओने ओळखवा माटे आ त्रण लिंगो जणाव्या छे, कारण के आ लिंगोने जाण्या पछी स्वआत्मा अने परमात्माना अंगे ' धर्मपथ्यनी अरुचि ' विवेकीओ वरावर विचारी शके, तेमज तेनो विचार कर्या पछी आत्माने हितमार्गथी भ्रष्ट थतो बचावी शके.

हवे ' क्रोधकंडूति ' जाणवानो उपाय जणावे छे—

सत्येतरदोषश्रुति-
भावादन्तर्बहिश्च यत्स्फुरणम् ।
अविचार्य कार्यतत्त्वं
तच्चिह्नं क्रोधकंडूतेः ॥ ४–१३ ॥

मूलार्थ—सत्य अने असत्य दोषो एटले यथास्थित

दोष अथवा असद्भूत दोषो परमुखथी श्रवण करी अंतःकरणमां जे विकार उद्भवे अने पछी बाह्य आकृतिद्वारा ते विकारो प्रत्यक्ष देखाय तेमज आ विकारथी परमार्थ कार्यतत्त्वनो विचार बाजु पर रहे ते माटे आ विकारने क्रोधकंडूतीनुं चिह्न कह्युं छे.

" स्पष्टीकरण "

जे कारणोथी आत्मानी समधारण प्रकृति–मध्यस्थभावनो विकार थाय अने आत्मा स्वभावथी उलटो चाले के जे समये शरीरना प्रत्येक अवयवो आवेशमय जणाय ते विकारने शास्त्रकर्ता क्रोधविकार जणावे छे. आ विकार उद्भववाना अनेक गौण–मुख्य कारणो गणाव्या छे. घणी व्यक्तिओ चीडियालु स्वभावना लीधे जे वखते कोइ पण चीडियापणानुं कारण उभुं करे एटले चीडाइने आवेशमय सविकारी बने छे, ज्यारे बीजाओ पोतानी मानलोलुपी बुद्धिना लीधे मानप्राप्तिमां अंतराय आवतो देखे एटले सविकारी थाय छे. अन्य व्यक्तिओ अणसमजना कारणोथी क्रोधी बने छे. केटलाको हास्यस्वभावथी, केटलाक कौतुकपणाने लीधे एम विचित्र कारणो आवेश उद्भववाना अनुभवाय छे. अहीं क्रोधकंडूतीना जे कारणो कहेशे ते मात्र कांइक समजु अने विवेकीजनने जे कारणोथी क्रोध प्रगटे ते ज जाणवा. अविवेकी तथा अक्कल विनाना लोकोने उपरोक्त कारणोथी क्रोध उद्भवे छे, तो पण अहीं जे कारणो दर्शावे छे तेमां ते कारणोनो अंतर्भाव थनाथी उपरोक्त कारणो अहीं दर्शाव्या नथी, अने ग्रंथदर्शित

कारणो एवा छे के जे कारणो बाल, मध्यम अने प्राज्ञ ए त्रणे वर्गमां घटी शके, तेमज 'डमरूक मणि' न्याये प्रथम गुणस्वरूप कह्या पछी दोषस्वरूप अने त्यारपछी फरी विशिष्ट गुणस्वरूप जणाव्युं होवाथी आ दोष त्रणे वर्गमां लागु थइ शके छे. आथी उपरोक्त क्रोधना कारणो अहीं केम न जणाव्या तेनो खुलासो थइ गयो. मध्यम जनोने क्रोध शाथी उपजे ते आ प्रकारे जाणवुं–'सत्येतरदोषश्रुति-भावादन्तर्बहिश्च यत्स्फुरणं' सद्भूत दोषो सांभळवाथी अने आरोपित दोषो सांभळवाथी अंतरंगमां जे विकारो उद्भवे ने तेथी बाह्याकृतिमां विकारो तरी आवे. परमार्थ ए के–कर्मदोषथी अगर अनादि अभ्यासबलथी अथवा अमुक संयोगोथी सुंदर प्रवृत्ति छोडी थोडुं या वधारे जे कांइ असुंदर आचरण कर्युं होय अथवा अन्यने नुकसान थाय तेवी क्रिया सेवी होय, जे परथी बाळजीवो, प्राकृत लोको लोकसमूहमां अगर अमुक व्यक्ति समीपे ते ते दोषो जाहेर करे, निंदा करे, मानहीन करे आ हेतुथी विवेकीओ पोताना दोषनो विचार अने प्राकृत जनस्वभाव न विचारता–श्वान पोताने मारनारने न करडता ढेफाळाने या पत्थरने करडवा दोडे तेम–प्राकृत बाल-जीवोनी सामे मध्यस्थभाव मूकी उग्रतानुं रूप हृदयमां धारण करे. पछी असद्भूत् वर्तन, आवेशनी नजर, शरीरना प्रत्येक अवयवोमां तेजस्वीपणुं अंगीकार करे तेमज पोतानामां कोइ विरुद्ध दोष न होय, मिथ्या आचरण थयुं न होय तेमज

अन्यने नुकशान थाय तेवी क्रिया तेओए आचरी न होय छतां पण समजवानी खामीना कारणथी, ईर्ष्याबुद्धिथी, बालस्वभावने लीधे विवेकीओनी सुंदर क्रियाने पण असुंदर क्रिया मानी वधुमां खोटा दोषो आरोपी बालजीवो विवेकीओने निंदे, तेओ पर ईर्ष्या करे, हलका पाडवा माटे अनेक प्रपंचो करे. अतएव भर्तृहरिए वैराग्यशतकमां कह्युं छे के–' गुणे खलभयं ' सज्जनोने स्वगुणना अंगे नित्य खलजनोनो भय रहे छे, तेमज अन्यत्र पण कह्युं छे–" न विना परवादेन, हृष्टो भवति दुर्जनः । काकः सर्वरसान्, पीत्वा, विना मेध्यं न तृप्यति " ॥ १ ॥ " दुर्जनो सज्जनोनी निंदा विना प्रसन्न थता नथी, कारण के कागडो सर्व रसनुं आस्वादन कर्या पछी विष्टाभक्षण विना तृप्त थतो नथी. " आ ज हेतुओथी विवेकीओ हृदयमां खीन्न थइ बाह्यआकारोमां क्रोधनुं रूप धारण करे छे अने वस्तुतत्त्वनो विचार पण भूली जाय छे. क्रोधनो ए स्वभाव ज छे के पोताना उदयथी विवेकीओने पण भानभूल्या करे छे. परिणामे आ क्रोध वधतां सर्वथा विवेकीओ विवेकभ्रष्ट थवा साथे वस्तुतत्त्वना विचारथी विहीन थाय छे, यावत् यशोविजयजी महाराज आ उद्भूत क्रोधना चिह्नोने आत्मानुं अत्यंत अहित करनार, दुर्गतिना कटुक फलने अर्पनार अने अकार्योने जन्म आपनार एवा क्रोधना दुष्टविकारो उपरोक्त कारणोथी शरीरना प्रत्येक भागमां मध्यमजनोने उपजे छे एम स्पष्ट जाहेर करे छे.

ए रीते अहीं मध्यम जनोने क्रोध उद्भववाना सद्भूतदोषश्रवण १, आरोपितदोष अथवा असद्भूतदोषश्रवण २ अने कार्यतत्त्वनो निर्विचार ३ ए त्रण कारणो दर्शाव्या छे, तेमां बालजीवोने जे जे कारणोथी क्रोध उद्भवे छे ते कारणो बहुधा अहीं दर्शित कार्यतत्त्वनो निर्विचार नामना त्रीजा कारणमां अंतर्गत थइ शके छे.

उपर दर्शित कारणोथी अने प्रथम दर्शित कोइ पण कारणोथी छद्मस्थभावने लीधे अथवा वस्तुबोधनी खामीना लीधे क्रोधविकारो जनताने उद्भवे ए साहजिक छे, तथापि क्रोधना उदयने दाबवा माटे अने उद्भव थवा न पामे ते सारु तेमज पश्चात्ताप करवा अर्थे शास्त्रकर्ताए अनेक मार्गो कह्या छे. आ कारणो अमे आगळ उपर पांच प्रकारनी क्षमाना स्वरूप वखते विस्तारथी कह्या छे, ते विवेकीओए खास विचारवा अने तेनुं अनुकरण करवाने दत्तचित्त थवुं ए वधारे उचित छे.

ए रीते विषयतृष्णा १, दृष्टिमोह २, धर्मपथ्यमां अरुचि ३ अने क्रोधकंडूति ४ ए चार पापविकारोनुं विस्तृत स्वरूप कही धर्मी आत्मामां आ विकारो न होय एम व्यतिरेक मुखथी तेनो अभाव जणाव्यो. हवे अहीं उपसंहार करतां ते ज वातनो निर्देश करी फरी धर्मतत्त्व पाम्या पछी धर्मनी उच्च भूमिकाए आरूढ थयेला आत्माओने धर्मतत्त्वना प्रभावथी विशिष्ट

मैत्र्यादि गुणो प्राप्त थाय छे, ए वातनो सामान्य निर्देश ग्रंथकर्ता कहे छे.

> एते पापविकारा
>
> न प्रभवंत्यस्य धीमतः सततं ।
>
> धर्मामृतप्रभावाद्
>
> भवंति मैत्र्यादयश्च गुणाः ॥ ४-१४ ॥

मूलार्थ—उपर जे पापविकारो जणाव्या ते पापविकारो धर्मतत्त्व पामेल आ बुद्धिवान् आत्माने निरंतर उद्भवता नथी, तेमज, धर्मरूपी अमृतपानना प्रभावथी मैत्री १, प्रमोद २, करुणा ३ अने मध्यस्थ ४ ए चार गुणो अवश्य उत्पन्न थाय छे.

" स्पष्टीकरणं "

विशिष्ट रसायण खाधा पछी रोगादि विकारो खानारने उत्पन्न थता नथी, एवं पूर्वे कह्या प्रमाणे गुर्वादिकना उपदेशथी अथवा यथाभव्यत्वना परिपाकथी 'धर्मतत्त्व' नो आविर्भाव थया पछी आगल जे पापविकारोनुं विस्तृत स्वरूप अमे कही गया ते अनादिना अभ्यस्त पापविकारोनुं कटुक फल अने तेनुं यथास्थित स्वरूप समजवाथी, तेमज तेनो अनुभव स्मरण जागृत होवाथी, अतएव मारुं अप्राप्य दुर्लभ एवुं धर्मतत्त्व 'फरीने विनाश न पामो' ए रीते सभयपणे आ धर्मी आत्माओ

प्रवृत्ति करे छे. आ कारणथी आ मतिमान् आत्माने ते पापविकारो फरीने कदापि उद्भवता नथी, यावत् धर्मामृतपानना प्रभावथी मैत्री आदि चार भावनाओ अवश्य उपजे छे. अहीं अमृत खाधा पछी खानारने जन्म-मरण करवा पडता नथी तेम 'धर्म' ने पण अहीं अमृत समान गण्यो छे, कारण के 'धर्म' आत्मामां उतार्या पछी अने आत्मा धर्म साथे अभेदभाव पाम्या पछी जन्म-मरणादि प्रपंचोने करतो नथी माटे धर्मने शास्त्रकर्ताए अमृतरूपे जणाव्यो. एवं अमृत खानारने अनेक नूतन उत्तम गुणो पण प्राप्त थाय छे तेम धर्म पामनार पण अहीं तेना प्रभावथी पोतानी सुंदर मान्यताने-तत्त्वप्रतीतिने स्थिर बनावनार मैत्री आदि चार पवित्र बुद्धिओने प्राप्त करे छे, आ ज हेतुथी शास्त्रकर्ताए अमृत साथे धर्मनी तुल्यता करी यथोचित उपमालंकार बताव्यो. श्रीमान् यशोविजयजी उपाध्यायजी स्वकृत टीकामां मैत्री आदि चार गुणोने धर्मना अभ्यासगुणरूप लिंगो जणावे छे, अर्थात् विशिष्ट धर्माभ्यासद्वाराए आत्माने एकांत धर्ममय बनावनारा आ चार गुणो छे. निदान ए के-आ गुणो उद्भव्या पछी आत्मा कदापि धर्मभ्रष्ट बनतो नथी. उपरोक्त दोषनो अभाव थवाथी धर्मतत्त्व आत्मा पाम्यो एवुं अनुमान बुद्धिमानो करी शके अने पामेला धर्मतत्त्वनी उच्चता तथा वृद्धि करवाने अवश्यमेव मैत्री आदि गुणोनो अभ्यास धर्मीए करवो जोइए. आ हेतुथी आ गुणो आभ्यासिक गुणो छे एवो श्रीमान् उपाध्यायजीना

कथननो भाव छे अथवा बाल, मध्यम, बुध ए त्रण धर्मना अधिकारी वर्गो शास्त्रकर्ताए कह्या छे. बालजीवो धर्म पाम्या पछी औदार्यता आदि सद्गुणोने प्राप्त करे छे अने मध्यम जनो औदार्यतादि गुणो पामवा साथे विषयतृष्णा आदि पाप-विकारोने दूर करे छे. अर्थात् मध्यम जनो बालजीवोनी अपेक्षाए धर्मनी उच्च भूमिकाए पहोंची गया होवाथी गुणनी श्रेणी पण तेओने वधे ज छे, ज्यारे बालजीवो धर्म पाम्या पछी तेना प्रभावथी औदार्यता आदि गुणो पाम्या होय पण विषय-तृष्णा आदिनो नाश न थयो होय एटले तेओ अद्यापि धर्मनी प्रथम भूमिकाए ज स्थिर छे; अने बुद्ध जनो बन्ने भूमिकाने पसार करी त्रीजी भूमिकाए पहोंची जाय छे माटे तेओ बन्नेनी अपेक्षाए विशिष्ट धर्मतत्त्व पाम्या होवाथी विशिष्ट धर्मतत्त्वना लिंग तरीके मैत्री आदि उच्चतर आभ्यासिक गुणो प्राप्त करे छे. निदान ए के—जेम जेम लाइन वधती जाय तेम तेम उत्तरोत्तर गुणनी स्थिति पण एक पछी एक उच्चतर बनती जाय छे. आ प्रकारे बाल, मध्यम अने बुध ए त्रण वर्ग संबंधी धर्मतत्त्वनो विषय-विभाग पाडवाथी प्रथम सामान्य गुणो, पछी विशिष्ट दोषाभाव अने त्यारपछी प्रकृष्ट गुणो ए प्रमाणे ग्रंथकर्ताए जे अनुक्रम दर्शाव्यो छे तेनुं तत्त्व यथार्थतया समजाशे.

'मैत्री' विगेरे चार गुणोनुं लक्षण हवे जणावे छे.

परहितचिन्ता मैत्री

परदुःखविनाशिनी तथा करुणा ।

परसुखतुष्टिर्मुदिता
परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥ ४-१५ ॥

मूलार्थ—अन्य आत्माओ पोतानुं हित केम पामे एम विचारवुं ते मैत्री १, तथा अन्य आत्माओ दुःख रहित केम थाय ए विचारवुं ते करुणा २, अन्यनुं सुख देखी प्रसन्न थवुं ते मुदिता ३ अने अन्यना दोषो देखी तेनी उपेक्षा करवी ते उपेक्षा ४.

" स्पष्टीकरण "

आ श्लोकनो भाव घणो ज स्पष्ट होवाथी तेमज आगल उपर आ चारे भावनानुं विशिष्ट स्वरूप कहेवामां आवशे ए कारणथी अत्रे अमे चारे भावनानुं स्वरूप विचारवामां वधु उतर्या नथी.

ए प्रकारे अभ्यासरूप मैत्री आदि गुणोनुं स्वरूप कह्या पछी ' धर्मतत्त्व ' ना लक्षणोनो उपसंहार करवानी इच्छाथी ग्रंथकर्ता चतुर्थ षोडशक प्रकरणनी समाप्ति सूचन करे छे.

एतज्जिनप्रणीतं
लिंगं खलु धर्मसिद्धिमज्जन्तोः ।
पुण्यादिसिद्धिसिद्धेः
सिद्धं सद्धेतुभावेन ॥ ४-१६ ॥

मूलार्थ—धर्मनी यथार्थ सिद्धि जे आत्मा पाम्यो होय

तेने ओळखावनार आ "औदार्य" आदि पूर्वे कहेल जिनप्रणीत लिंग जाणवुं, तेमज उत्तरोत्तर पुण्यना उपायो प्राप्त करावी पुण्यादिना निष्पत्तिसाधनमां अबाधित–अवंध्यफळजनक प्रतिष्ठित कारण पण आ "औदार्यादि" ज लिंगो छे.

"स्पष्टीकरण"

आ प्रकरणनी आदिमां ज कही चूक्या के–धर्मी आत्माओने व्यवहारथी ओळखवाना खरा साधन तरीके "औदार्य" आदि अंतःकरणमां उछळता पवित्र आशयो छे, कारण के मनुष्य मात्रनुं खरुं–खोटुं स्वरूप समजवा माटे तेना व्यवहारो पर ज आधार राखी शकाय, अने व्यवहार–पवित्रता हृदयनी उच्च–नीच वासना पर अवलंबी रहे छे. अतः ग्रंथकर्ताए अहीं पूर्वे जणाव्या प्रमाणे धर्मसिद्धिमान् आत्मानी परीक्षा माटे "औदार्य" आदि पांच आशयो बताव्या. आ आशयोनुं विस्तृत स्वरूप समज्या पछी गमे तेवो सामान्य जन पण पोतानी अने परनी, स्वपरना व्यवहार परथी, धर्मीपणानी कसोटी निकाली शके तेमज पोताने खोटी रीते अथवा अज्ञानताथी धर्मी मानतो होय तो ते मान्यताने बदली शके. आ हेतुथी "औदार्य" आदि पांच आशयोने धर्मना लिंगो–चिह्नो कह्यां. अहीं ग्रंथकर्ताए 'जिनप्रणीतं' ए पदथी सर्वज्ञोए आ लिंगो–चिह्नो जणाव्या छे, एम कही सर्वज्ञकथनना आधारे आ सर्व स्वरूप कह्युं छे; पण स्वमतिथी उपजावीने कांइ पण कथन कर्युं नथी ए भाव दर्शावे छे. फरी आ "औदार्य" आदि भावो धर्मीप-

णाने ओळखावे छे तेम आत्माने धर्मी पण बनावे छे; कारण के—आ " औदार्य " आदि भावोनी प्राप्ति थया पछी उत्तरोत्तर क्रमशः पुण्यप्राप्तिना साधनो प्राप्त करावे छे, जेथी उत्तरोत्तर पुण्यनो प्रवाह चाल्या करे छे तेमज ज्ञानयोगना साधनोनी पण अनेकधा प्राप्ति थाय छे. अतएव आ लिंग—चिह्न स्वजन्य फलप्राप्ति कराववा माटे अवंध्य—अबाधित सत्कारणभूत छे, अर्थात् ज्ञानयोगनी अने पुण्यबंधना साधनोनी प्राप्ति " औदार्य " आदि गुण विना सर्वथा असंभाव्य तथा अशक्य ज छे. हेतु ए के—" दया भूतेषु वैराग्यं, विधिदानं यथोचितम् । विशुद्धा शीलवृत्तिश्च, पुण्योपायाः प्रकीर्तिताः " ॥ १ ॥ " सर्व भूतो पर दया, वैराग्यभाव, यथोचित विधिपूर्वक दान अने अकलंक शीलवृत्ति—ए चारे पुण्यप्राप्तिना उपायो कह्या छे." आ श्लोकोक्त पुण्यना साधनो एकत्र करवा माटे अवश्यमेव पूर्वे जणावेल " औदार्य " आदि भावोनी अपेक्षा रहे छे. आथी ज पुण्यप्राप्तिनी साधनसिद्धिनुं अने ज्ञानयोग साधनप्राप्तिनुं अवंध्य कारण जिनेश्वरोए उपरोक्त लिंग दर्शाव्युं. पुनः 'सिद्धं' ए पदथी आ दर्शित चिह्न प्रतिष्ठित एटले प्रमाणोपपन्न छे एम कही जेओने स्व आत्माने धर्मी बनाववो होय तेओए प्रथम उपर कहेल गुणो प्राप्त करवा दृढ संकल्प साथे दृढ प्रयत्न करवानी खास आवश्यक्ता छे, ए भाव ध्वनित करी ते गुणो प्रति ग्रंथकर्ता भव्य आत्मानुं खास ध्यान खेंचे छे.

आ प्रमाणे ग्रंथकर्ताए आ चतुर्थ षोडशक प्रकरणमां धर्मना लिंगरूपे " औदार्य " आदि पांच आशयोनुं विस्तृत स्वरूप, पापविकारोनुं कथन अने मैत्र्यादि चार भावोनुं दर्शन करावी बाल, मध्यम तथा बुधने धर्मप्राप्ति थया पछी उत्तरोत्तर गुणनी स्थिति जेम वधती चाले तेने दर्शावी आ अंतिम श्लोकथी आ प्रकरणनो उपसंहार कर्यो. श्लोकमां ' खलु ' ए शब्द मात्र वाक्यने सुशोभित करवा माटे ज आप्यो छे, तो पण तेनो निश्चय अर्थ करी " निश्चयेन धर्मसिद्धिमान् आत्माने ओळखावनारुं आ जिनप्रणीत लिंग–चिह्न छे " एवो अर्थ करवामां कांइ असंगतता देखाय छे खरी ? छतां टीकाकारोए ते अर्थ केम न स्वीकार्यो तेनुं समाधान अमाराथी केम बने ? ग्रंथकर्ता प्रकरणनी समाप्तिमां ' सिद्धं ' ए पदथी संपूर्ण प्रकरणने मंगलमय जणावी उत्तर प्रकरणनी साथे आ प्रकरणनो संबंध दर्शावे छे अर्थात् प्रकरणनी समाप्तिमां जे खास वाक्य आवे ते ज वाक्यथी ग्रन्थकर्ता उत्तर प्रकरण खास प्रारंभ करे छे, आथी ग्रन्थकर्ता केवा प्रौढ कवि हशे ते तेमनी वाक्यरचना परथी विद्वानोए समजवानुं छे.



(५) लोकोत्तरतत्त्वप्राप्तिषोडशकम्



आगला प्रकरणमां धर्मतत्त्वोना जे जे लिंगो कह्या तेथी आत्मा सामान्य प्रकारनो धर्म पाम्यो एटलुं ज जाणी शकाय, एवं सामान्य गुणो पण आत्मा पाम्यो छे ए पण ओळखी शकाय. निदान ए के-उपरना प्रकरणमां धर्मतत्त्व पाम्या पछी जे गुणो प्राप्त थाय ते ज गुणसमूह नीतिथी चालनाराओ पामी शके छे, परंतु एटला मात्रथी आ आत्माओ तात्त्विक धर्म पाम्या एवो निर्णय केम करी शकाय? कारण के नीति अने लौकिक धर्म पामेल आत्माओमां पण "औदार्य" आदि भिन्न भिन्न भावो घणा अंशे होय छे. एटले सामान्य दृष्टिए "तात्त्विक धर्म" अने "लौकिक धर्म" पामेला आत्माओनो भेद पाडवो असाध्य छे, अतएव प्रभु हरिभद्रसूरिजी आ पांचमा प्रकरणमां "तात्त्विक धर्म" पामेल आत्माओ "तात्त्विक धर्म" ना प्रभावथी क्या विशिष्ट गुणो प्राप्त करे अने क्या विशिष्ट गुणोथी आत्मा "तात्त्विक धर्म" पाम्यो छे ए जाणी शकाय एवं क्या विशिष्ट गुणो विना "तात्त्विक धर्म" नो अभाव छे एम निर्णय करी शकाय इत्यादि भावो समजाववा माटे विस्तारथी "लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति"नुं स्वरूप दर्शावे छे.

एवं सिद्धे धर्मे

सामान्येनेह लिंगसंयुक्ते ।

नियमेन भवति पुंसां
लोकोत्तरधर्मसंप्राप्तिः ॥ ५-१ ॥

मूलार्थ—ए प्रमाणे "औदार्यादिक" चिह्नो सहित लौकिक धर्मनी सिद्धि थया पछी अथवा सामान्य धर्म (लौकिक धर्म) पाम्या पछी 'भव्यात्माओने' निश्चयथी "लोकोत्तरतत्त्व" नी प्राप्ति थाय छे.

"स्पष्टीकरण"

उपाध्यायजी कहे छे के—आगळना प्रकरणमां लिंग सहित सामान्य प्रकारे धर्मसिद्धि बतावी, आनुं फळ ए ज के विशेष गुणो अने विशिष्ट धर्म प्राप्त थाय. खरुं ए छे के—सामान्य गुणो अने सामान्य धर्म पाम्या पछी विशेष धर्म तथा विशेष गुणोनो लाभ थाय, ए ज वात अहीं दर्शावे छे.

चोथा प्रकरणमां लौकिक धर्म अने नीतिनिपुणता पामवानो जे प्रकार दर्शाव्यो ते प्रमाणे वर्तन करवाथी अवश्य आत्मा सामान्य धर्म तथा "औदार्य," "दाक्षिण्यता" आदि लिंगो पामी शके छे, परंतु आ धर्मरुचिमां लौकिक अने लोकोत्तर धर्मनो विभाग न होवाथी तेने शास्त्रकर्ता सामान्य धर्म दर्शावे छे. एनुं कारण एटलुं ज के आ परिणामथी आत्मतत्त्वनुं भान उपजी शकतुं नथी किन्तु लौकिक सुखनी वासनाओने ज ते तृप्त करे छे, तो पण आ परिणामद्वारा आस्ते आस्ते आत्मा धर्मना उंडा स्वरूपमां उतरी शके छे. अतएव ग्रंथकर्ता

'सामान्य धर्म' नी सिद्धि थया पछी "नियमेन" ए पदथी निश्चयथी "लोकोत्तरतत्त्व" प्राप्त थाय छे एम भार-पूर्वक कहे छे. अर्थात् जे आत्मा अद्यापि 'धर्म' शुं छे ? एटलुं पण जाणतो नथी ते आत्मा लोकोत्तर धर्मने क्यांथी जाणे ? माटे तेवा आत्माए प्रथम लौकिक धर्म जाणवो जोइए-सिद्ध करवो जोइए एटले कालांतरे लोकोत्तर धर्म पण पामी शके. अहीं "लोकोत्तर धर्म" ना अधिकारी कोण होइ शके ए वातने टीकाकारो स्पष्ट करे छे के जेओ स्वस्व धर्मग्रन्थोमां कहेल मुमुक्षुजन योग्य अनेक प्रकारना आचारो, क्रियाओ अने अवस्थाओनी अपेक्षाए शुद्ध होय अर्थात् तेमां रंगाया न होय तेमज परिणामनी अपेक्षाए स्वच्छपरिणामी होय तथा स्वतंत्र व्यवहारमां अपुनर्बंधकपरिणामवाळा होय एवं सम्यक्त्वशाली दृष्टिवंत होय एवो हरकोइ आत्मा ते "लोकोत्तरतत्त्व" नी प्राप्ति करवा भाग्यशाली थाय छे. सामान्य लोको जे तत्त्वना परमार्थने जाणी शकता नथी-विचारी शकता नथी अने दृष्टिनी बहार छे एवा तत्त्वने शास्त्रकर्ताओ "लोकोत्तरतत्त्व" कहे छे. भावार्थ ए के-परमार्थ धर्मने पामवाने उपरोक्त अधिकारी आत्माओ ज योग्य छे.

आ "लोकोत्तरतत्त्व"नी प्राप्ति जे स्वरूपमां थाय ते अने क्या कालमां थाय ते वातने ग्रंथकर्ता दर्शावे छे.

आद्यं भावारोग्यं

बीजं चैषा परस्य तस्यैव ।

अधिकारिणो नियोगा-

चरम इयं पुद्गलावर्त्ते ॥ ५-२ ॥

मूलार्थ—शुद्ध धर्मना लाभ पहेलां अनादिथी अप्राप्त आशय-पवित्रतारूप आरोग्यतानो जे लाभ थाय अर्थात् समकितनो लाभ थाय तेने "लोकोत्तरतत्त्व" प्राप्ति कही छे. आ "लोकोत्तरतत्त्व" प्राप्ति परम मोक्षरूप आरोग्यतानुं बीज छे, अने आ बीज (समकित) नो लाभ क्षीणप्रायः संसारी एवा भवी आत्माने निश्चयथी अंत्य पुद्गलपरावर्त कालमां ज थाय छे.

" स्पष्टीकरण "

व्याधिविकारो शान्त थया विना आरोग्यता दुर्लभ होय छे, एवं अनादिथी आत्माने लागेला पापविकारो शान्त न थाय त्यां सुधी आशयनी आरोग्यता क्यांथी थाय? अतएव ग्रंथकर्ता "आदौ भावारोग्यं" ए पदथी "लोकोत्तरतत्व" नो लाभ देखाडे छे. पूर्वे अनादि कालमां नहीं थयेल माटे आदि एटले शरुआतमां ज जे अंतःकरणनी पवित्रता थाय के जेना वलथी तीव्र पापविकारो शान्त थाय आवुं नाम "भाव-आरोग्य" जाणवुं. बीजा शब्दमां " समकित " कहुं छे. भावार्थ ए के-लौकिक धर्ममां समकित नथी होतुं अने तेथी ते धर्म तात्त्विक धर्म न कहेवाय. एटले देशन्यून ओगणोत्तेर कोटाकोटी सागरोपम प्रमाणे मोहनीयकर्मनी स्थितिनो ह्रास थया पछी ज आ

भाव आरोग्यता—समकितनो लाभ आत्माने थाय छे. अने समकितनो जे लाभ तेने ज शास्त्रकर्ता लोकोत्तरतत्त्व प्राप्ति कहे छे. एवं प्रधानतर भाव—आरोग्यतानुं मुख्य बीज आ "लोकोत्तर तत्त्व" समकितप्राप्ति सिवाय बीजुं कइं नथी. भावार्थ ए के—आदि भाव—आरोग्यता, समकितप्राप्ति अने परम आरोग्यता ते सकलकर्मक्षयरूप मोक्ष छे. अने मोक्षप्राप्ति समकित सिवाय असाध्य छे. आथी समकितने बीजकारणनी गणनामां गण्युं छे तो जेम तीव्र पापविकारोनी शांति पछी आदि भाव—आरोग्यता उपलब्ध थाय तेम संपूर्ण आरोग्यनी प्राप्ति पहेलां राग, द्वेष, मोह अने तेना कारणभूत जन्म—जरा—मरणादिरूप भावरोगोनी सर्वथा शांति—क्षय करवानी परम आवश्यकता छे, अर्थात् आ भावरोगोनी शांति तेनुं नाम निःश्रेयस—मोक्ष कह्युं छे. हवे आ आदि भाव आरोग्यता—समकितना अधिकार अने तेनी प्राप्तिनो समय उत्तरार्द्धथी ग्रंथकर्ता दर्शावे छे. जेओनो संसार घणा भागे क्षीण थयो छे अने मात्र अन्तिम पुद्गलपरावर्तकाल संसारमां रही मोक्ष पामवाना होय तेओ ज आ समकितने निश्चयथी पामी शके, अने अधिक काल जेओ संसारमां रहेवाना होय तेओ कदापि आदि भाव—आरोग्यता पामी शके नहीं, एटलुं ज नहीं पण उपाध्यायजी आगळ वधीने त्यां सुधी पण कहे छे के—सर्व दर्शन संबंधी अपुनर्बंधक्रिया एटले शान्त, दान्त, जिज्ञासु, मुमुक्षु आदि भावो पाम्या पछी आत्मा अपुनर्बंधपणाने पामे ते क्रियाओ पण अन्त्य पुद्गलपरावर्तकाल सिवाय अन्य पुद्गलपरावर्तकालमां पामी शकाय नहीं, यावत्

"मोक्खासओ वि न तत्थ०" इत्यादि श्लोकथी पण जणाववामां आवे छे के–"मोक्ष पामवानी जिज्ञासा पण अन्य कालमां होय नहीं." ज्यारे मोक्षनी जिज्ञासा न होय तो पछी मोक्षना बीजभूत समकितप्राप्ति त्यां क्यांथी संभवे ? अतएव ग्रंथकर्ताए तेनो निषेध कर्यो. अन्त्य पुद्गलपरावर्त्तकाल शाथी थाय ? आ प्रश्ननां समाधान अर्थे ग्रंथकार आ प्रमाणे अहीं जणावे छे.

स भवति कालादेव
प्राधान्येन सुकृतादिभावेऽपि ।
ज्वरशमनौषधसमयव–
दिति समयविदो विदुर्निपुणम् ॥५–३॥

मूलार्थ—जेम औषध ज्वरनो नाश करनार छतां पण समयपरत्वे ज ज्वर शान्त थाय छे एवं कर्म, पुरुषकार, नियति विगेरे कारणो छतां पण आ अंत्य पुद्गलपरावर्त प्रधानतया कालपरिपाकथी ज स्वरूपतः बने छे, एम समयज्ञो निपुणतया जाणे छे.

"स्पष्टीकरण"

"मोक्ष प्रति इच्छा पण अंत्य पुद्गलपरावर्तकाल सिवाय न थाय" एम प्रथम कही गया एटले आत्माने संसारमां अनादिथी पर्यटन करतां ज्यारे अंतिम–एक ज पुद्गलपरावर्त काल बाकी रहे त्यारे ज तेने मोक्षनी अभिलाषा जागे अर्थात्

तदुपरांत काल होय तो आ अभिलाषा न थाय. आथी ज्यारे आ अभिलाषा थाय त्यारे चरम पुद्गलावर्तकाल छे एवो निर्णय थाय, अने चरम पुद्गलपरावर्तकाल होय त्यारे आ अभिलाषा बने एवो निर्णय करी शकाय. अतएव अहीं शिष्य प्रश्न करे छे के—मोक्षनी अभिलाषा चरम पुद्गलावर्तकालमां ज थाय अने अन्य काले न थाय, तेमज चरम पुद्गलपरावर्तकाल शाथी थाय ? आनो उत्तर ग्रंथकर्ता आपे छे के—जेम कोइ माणसने ज्वर आवतो होय, तेनी शांति माटे औषध आप्युं होय तो पण प्रारंभमां तो ते औषध उलटुं ज पडे छे, पण ज्वरनो समय पाक्या पछी ज्वर शांत थाय छे अने औषध लाभदायक बने छे परंतु समय पाक्या पहेलां ते औषध कांइ पण गुण उत्पन्न करतुं नथी, एवं आत्मा पण संसारमां आथडता आथडता दुःख, क्लेश, तापथी कंटाळे अने सुखनो अभिलाषी बने एटले स्वभावतः काले करीने तेनी स्थिति परिपक्व थइ जाय. आ समये आत्माने मोक्ष अभिलाषा जागे एटले तीव्र पापोनो नाश थवाथी अधिक काल पर्यंत संसारमां आथडवानुं बंध थइ जाय छे. अतएव आ समयने महर्षिओ अंतिम पुद्गलपरावर्त भवस्थितिकाल एवुं उपनाम आपे छे. परमार्थ ए के—आंबाओ वर्षमां अमुक समये ज पाके, स्त्रीओ अमुक काले ज पुत्र पेदा करे तेमां हेतु शो ? आनुं समाधान समय—परिपाक सिवाय बीजुं शुं होइ शके ? ते ज प्रमाणे अहीं पण समय-परिपाक सिवाय बीजुं कांइ पण कारण नथी. आथी ज ग्रंथकार

"सुकृतादिभावेऽपि" ए पदथी सुकृत–दुष्कृतकर्म, प्रयत्न, नियति आदि कारणो विद्यमान छतां ज्यां सुधी काल न पाके त्यां सुधी अंतिम पुद्गलपरावर्तपणुं आत्माने अप्राप्य होय छे, एवं मोक्ष अभिलाषा पण दुर्लभतर होय छे. अर्थात् अंतिम पुद्गलपरावर्तपणामां काल ए मुख्य कारण छे अने कर्म, प्रयत्न, नियति आदि गौण कारणो मान्या छे. आ ज हेतुथी उत्तम धर्मरूपी औषध पण अंतिम पुद्गलपरावर्तकालप्राप्त आत्माने आप्युं होय तो ते गुणकारक थाय अने अन्यने आप्युं होय तो नितान्त दोषकारक ज थाय छे, आ प्रमाणे सिद्धान्तवेत्ताओ भार दइने कहे छे अने निपुणतया जाणे छे. अहीं आर्यामां 'सुकृतादिभावेऽपि' ए पदना बदले 'कर्मादिभावेऽपि', एवुं पाठान्तर छे, पण आ पाठान्तर मूकवाथी छंदभंग थाय छे. बाकी अर्थमां कांइ दोष जणातो नथी तेम ज 'निपुणं' ए क्रियाविशेषण पद होवाथी 'जेम निपुण होय तेम जाणे छे.'

हवे 'लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति' समकितना लाभमां अंतिम पुद्गलपरावर्त्तनकाल ज प्रधानतया कारण छे, अने अन्य साधनो प्रधानतया कारणभूत नथी एनुं शुं कारण? ए वात अहीं स्पष्ट करे छे.

नागमवचनं तदधः
सम्यक्परिणमति नियम एषोऽत्र ।

शमनीयमिवाभिनवे
ज्वरोदये काल इति कृत्वा ॥ ५-४ ॥

मूलार्थ—तुरत प्रगट थयेला अभिनव ज्वरमां औषध गुणकारी थतुं नथी कारण के समय पाक्यो नथी. ए प्रमाणे शास्त्रोना पथ्य वचनो पण अंतिम पुद्‌गलपरावर्त्तथी अधिक संसारीने सम्यक्‌पणे कदापि परिणमता नथी–हितकारी बनता नथी ए खास अहीं नियम छे.

" स्पष्टीकरण "

त्रीजा श्लोकना विवरणमां 'समकित' प्राप्ति अंतिम पुद्‌गलपरावर्तमां ज थाय तेनुं कारण स्पष्टपणे विस्तारथी जणाव्युं, ए ज वात अहीं अधिक स्पष्ट करे छे. अभिनव ज्वरोदयमां औषध आप्युं होय छतां ज्वर पाक्या विना ते पोतानुं कार्य करी शकतुं नथी, किन्तु ज्वरनो काल पाके त्यारे ज सफल थाय छे एवं शास्त्रवचन पण अधिक संसारीने कदापि सद्‌भावने–मोक्ष–इच्छाने उपजावी शकतुं नथी. अर्थात् ग्राहक, श्रोता, अभ्यासी आत्मा कांइक सरल परिणामी, पुण्यरुचि, सन्मार्ग इच्छक बने त्यारे ज शास्त्रवचनो हृदयमां उच्चभाव पेदा करी शके, अन्यथा ते ज शास्त्रवचनो विकारभाव उपजावनार बने छे एवो दृढ नियम अहीं बांध्यो छे; माटे ज अंतिम पुद्‌गल-परावर्त्तकालमां समकितनो लाभ थाय अने मोक्ष–अभिलाषा प्रगट थाय छे, परंतु ते पहेला थाय ज नहीं.

" अंतिम पुद्गलपरावर्त " पहेलां शास्त्रवचन न परिणमे एटलुं ज नहीं पण शास्त्रवचन अविक संसारीने विपरीतपणे ज परिणामे छे.

> आगमदीपेऽध्यारोप-
> मंडलं तत्त्वतोऽसदेव तथा।
> पश्यन्त्यपवादात्मकम-
> विषय इह मन्दधीनयनाः ॥ ५-५ ॥.

मूलार्थ—अहींया लोकने विषे मंदबुद्धि चक्षुवाळा लोको परमार्थथी सिद्धांतरूप दीपकमां नितान्त खोटुं भ्रांति-रूप मंडळ धारीने तिमिर–रोगीनी माफक ज्यां अपवाद पदनो मार्ग न होय तेवा स्थळमां अपवाद स्थानने ज देखे छे अर्थात् हलकी दृष्टिथी पदार्थोने निहाळे छे.

" स्पष्टीकरण "

तिमिर नामनो नेत्रमां एक प्रकारनो रोग थाय छे. आ रोग थया पछी रोगी नित्य दीपकने मयूरचंद्रकाकारं, नी-ललोहितभास्वरम् । प्रपश्यन्ति प्रदीपादे-मंडलं मन्दचक्षुषः ॥ १ ॥ " मंद तेजोमय चक्षुवाला आत्माओ दीपकना मंडलने मायूरपिच्छ चंद्राकारे नील, लाल अने भास्वर इत्यादि विविध रंगमय देखे छे. " ए श्लोकना भावा-र्थथी चंद्राकारे जुवे छे अर्थात् दीपकना प्रकाशमां पण रोगना

कारणथी चंद्रभ्रांति उत्पन्न थाय छे. एवं अहीं पण दीर्घ संसारीनी परिणति यथास्थित न होवाथी तेमज मिथ्यात्व-वासित चित्त होवाथी तात्त्विक पदार्थोनो प्रकाश करवामां समर्थ अने अज्ञान अंधकारनो नाश करनार सिद्धांतरूप दीप-कमां भ्रान्तिनो आरोप करी विपरीतरूपे देखे छे. भावार्थ ए के–सिद्धान्तना वचनोना विपरीत अर्थो करी स्वमान्यतामां जोडी दे छे, अने तेथी करी परमार्थथी सत् पदार्थो होय तेने पण असत्पणे ज धारे छे, श्रद्धे छे अने माने छे. आथी छेवटे आ आत्माओ ज्यां अपवाद मार्गनो विषय न होय, केवल उत्सर्ग मार्ग ज मान्य होय तेवा स्थलमां अपवाद मार्गनो अध्या-रोप करी अपकृष्टवादने ज स्वीकारे छे; अर्थात् मंदबुद्धिवाला ते आत्माओ वस्तुतः असद् मान्यताने ज मतिविकारथी अंगीकार करे छे.

मति–मालिन्यताथी 'आगम–दीपक' ने भ्रान्ति-मंडलरूपे मिथ्यात्वी आत्माओ देखे छे एटले विपरीत मान्यता स्वीकारे छे. आथी छेवटे आ आत्माओनो केटलो अधःपात थाय छे ते अधिकृतया स्पष्ट करे छे.

तत एवाविधिसेवा-

दानादौ तत्प्रसिद्धफल एव ।

तत्त्वदृशामेषा

पापा कथमन्यथा भवति ॥ ५–६ ॥

मूलार्थ—आगम-दीपकमां भ्रान्तिनो आरोप करवाथी विधिमार्गमां विपर्यास भाव थाय छे, अने जे आगममां दानादि भावोनुं फल स्पष्ट कहुं छे एवा दानादि भावोने अविधिभावे सेवे छे. आ पापिष्ठ एवी अविधिसेवा आगमतत्त्वने यथार्थपणे देखनाराओने भ्रांतिमंडल विना क्यांथी संभवे ? अर्थात् सम्यग्दृष्टिओने आ अविधिसेवा कदापि होय ज नहीं.

" स्पष्टीकरण "

भ्रान्तहृदयीने आगमवचन अन्यथा परिणमे छे अने त्यारबाद सत्य तत्त्वने असत्य तरीके अने विधिने अविधिरूपे, मार्गने कुमार्ग तरीके आदरे छे, जेथी दरेक क्रियाओ आ आत्मा अविधिभावे सेवे छे; कारण के भ्रान्तदृष्टि तेने सर्वत्र अन्यथा ज भान करावे छे. अतएव अहीं ग्रंथकर्ताए 'तत एव' पदथी भ्रान्तभाव पामवाथी ज आ अन्यथा मति आत्मा दान, शील, तप अने भाव विगेरे धर्मो अविधिभावे सेवे छे एम जणाव्युं. आ धर्मो आदरवानुं फल शास्त्रोमां कर्मनिर्जरा अने ते द्वाराए मोक्षप्राप्ति कही छे. सुपात्रदान, अभयदान अने अनुकंपादान पवित्र आशयपूर्वक होवाथी तेनुं फल कर्मनिर्जरा अने शुभबंध जणाव्युं छे. ' तवो वोदाणफले ' तपनुं फल एकान्त कर्मनिर्जरा, शीलनुं फल आत्मस्वरूपनी निर्मलता अने भावनुं फल हृदयना मलनो नाश अने त्यारपछी आ धर्मोथी सर्वथा आत्मानी कर्मोथी मुक्ति कही छे. भावार्थ ए के–देवर्द्धि, राजर्द्धि के संपत्ति अथवा भोगप्राप्ति ए आ धर्मोनुं

मुख्य फल नथी तेमज तेना माटे ते धर्मो आदरवा ते ज विप-रीत मान्यता जणावी छे. हवे भ्रान्तहृदयी आ धर्मोनुं मुख्य फल देवर्द्धि, राजर्द्धि, संपत्ति आदि ज माने छे अने तेनी प्राप्ति माटे तेमां प्रवर्त्ते छे पण मोक्षफलने मानतो नथी. आथी ज अहीं ग्रंथकर्त्ताए कह्युं के—आगममां आ धर्मनुं फल स्पष्टपणे प्रगटतया कह्युं छे, छतां तेने ते मानतो नथी—स्वीकारतो नथी अने आदरतो पण नथी. निदान ए के—आ ज कारणथी आ अविधिसेवाने पापिष्ठा कही, पण जेओने समकित प्रगट थयुं छे, आदि भाव-आरोग्यता प्राप्त थइ छे अने चरम पुद्गलपरावर्त्त कालमां जेओ दाखल थया छे तेओना तीव्र पापविकारो सर्वथा शान्त थवाथी तेओने आग-मवचनमां अरुचि, अश्रद्धा अथवा खोटी मान्यता कदापि उद्-भवती नथी. अर्थात् भ्रान्तिरूपी मंडल विना आ पापिष्ठा अविधिसेवा उदयमां आवे नहीं अने आ आत्माओने भ्रान्ति-समूहनुं कारण ज पहेलाथी नष्ट थइ जाय छे, किन्तु भ्रान्ति-समूह उपरोक्त आत्माओ सिवाय अन्यने न ज होय.

'दानादि' धर्मो अविधिभावे सेवे तेनुं ज स्वरूप फरी ग्रंथकार स्पष्ट करे छे.

येषामेषा तेषामागम—
वचनं न परिणतं सम्यक् ।

अमृतरसास्वादज्ञः
को नाम विषे प्रवर्त्तेत ॥ ५-७ ॥

मूलार्थ—जे आत्माओए अविधिसेवाने बहुमानतया स्वीकारी छे तेओने आगमनुं वचन सम्यक्तया परिणमतुं नथी, कारण के अमृतरसना स्वादनो जाणकार मृत्यु देनार विषनुं भक्षण करवा कदापि प्रवृत्ति करे खरो ? न ज करे.

" स्पष्टीकरण "

शास्त्रकार दृष्टांत साथे उपरनी वात अहीं खुल्ली करे छे. जेम एक वार अमृत पीधुं होय अने तेनो रस बराबर अनुभव्यो होय त्यारपछी आ अनुभवी विष मृत्युने आपनार छे, एवुं भान थवाथी तेनुं भक्षण करतो नथी. एवं जिनवचन जेओने सम्यक्तया भासमान् थयुं होय तेओने जिनवचनमां कदापि भ्रांतिज्ञान उत्पन्न थतुं नथी, अने अहीं उपरना आत्माओने भ्रांतिज्ञान थयुं होवाथी जिनवचन यथार्थरूपे परिणमतुं नथी. आथी ज समजाय छे के—आ आत्माओने जिनवचनरूपी अमृतरस–स्वादनुं ज्ञान नथी थयुं अने मृत्यु देनार विष–भक्षणमां ज लीन थाय छे. अहीं जिनवचन ते अमृतरस जाणवुं अने भ्रान्तिज्ञान ते विषभक्षण जाणवुं. उपाध्यायजी स्वटीकामां ज्ञानफळथी वंचित एवा अपरिणामी आत्माने आ ' अविधिसेवा ' नामे पापविकार होय छे एम जणावे छे. भावार्थ ए के—अधिक संसारी आत्मा ज ज्ञानफळवंचित अपरिणामी होय.

अत्यार सुधी विधिमुखथी अधिक संसारीने 'आगम-वचन' नी श्रद्धानो निषेध कर्यो. हवे ग्रंथकार निषेधमुखे स्पष्टतया आगमवचननी श्रद्धानो अभाव दर्शावे छे—

तस्माच्चरमे नियमा-
दागमवचनमिह पुद्गलावर्ते ।
परिणमति तत्त्वतः
खलु स चाधिकारी भवत्यस्याः ॥५-८॥

मूलार्थ—अतएव आगमवचननी श्रद्धा अहीं आत्माने चरम पुद्गलपरावर्त्तकालमां ज परिणमे छे, अने तेथी करीने परमार्थथी आ लोकोत्तरतत्त्वप्राप्तिनो अधिकारी चरम पुद्गल-परावर्त्तकालवर्त्ती आत्मा ज होय छे; अर्थात् अन्य आत्मा अधिकारी न थाय.

" स्पष्टीकरण "

उपर जे कही गया तेनो निष्कर्ष ए आव्यो के आगम-वचनमां प्रीति चरम पुद्गलपरावर्त्तकालमां ज बने पण अन्य कालमां न होय, तथा 'लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति' नी योग्यता-अधिकारीपणुं चरम पुद्गलपरावर्तकालवासी आत्मा सिवाय अन्यने न बने. भावार्थ ए के-आगमवचन पर श्रद्धा अने लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति अंत्य कालमां उपलब्ध थाय. आथी ज अधिक संसारीने आ तत्त्वना अधिकारी न गण्या.

आगमवचनमां एवी कइ अलौकिकता रही छे के जेना माटे अधिक संसारीने तेनी श्रद्धानो निषेध जणाव्यो, तथा 'लोकोत्तरतत्त्व' प्राप्तिना पण अनधिकारी गण्या ? आ प्रश्नना समाधान माटे आगमवचननी प्रशस्तता ग्रंथकार जाहेर करे छे.

आगमवचनपरिणति-
भवरोगसदौषधं यदनपायं ।
तदिह परः सद्बोधः
सदनुष्ठानस्य हेतुरिति ॥ ५-९ ॥

मूलार्थ—आगमवचननी परिणति एटले यथार्थपणे आगमोक्त पदार्थनो प्रतिभास. आ प्रतिभास अपाय-दोष रहित संसाररूप रोगनो नाश करनारुं औषध छे, अतएव आ यथार्थ उत्कृष्ट बोध-पदार्थज्ञान सुंदर अनुष्ठानने जन्म आपवामां कारणभूत कह्युं छे अर्थात् तेथी सुंदर अनुष्ठाननी प्राप्ति थाय छे.

" स्पष्टीकरण "

" आ-मर्यादया, गम्यन्ते-पदार्थाः प्राप्यन्ते ज्ञायन्ते येन यस्मात् यस्मिन्निति आगमः तस्य वचनं " " जेथी जेनाथी जेना विषे मर्यादापूर्वक पदार्थो जाणी शकाय तेनुं नाम आगम, अने ते आगमनुं जे वचन तेनुं

नाम आगमवचन." भावार्थ ए के–आत्मानुं एकान्त श्रेय करनार अने हितमार्ग देखाडनार जे शास्त्रो होय तेने ज महर्षिओ आगमशास्त्र कहे छे, पण जे शास्त्रो छतां " षट् शतानि नियुज्यंते " इत्यादि वचनोथी पशुहोम, अग्निहोत्र आदि पापारंभनो उपदेश करे तेने आगमशास्त्रो केम कहेवाय? अरे शास्त्रो पण केम कही शकाय? आथी शास्त्रो अने आगम तो ते ज गणाय के जेमां लेश पण पापोपदेश न होय. आ शास्त्रो सर्वज्ञकथित अने सर्वज्ञवाक्यावलंबी एम बे प्रकारे होय छे. जे वचनो भगवंते कह्या अने गणधरोए सूत्रोपणे रच्या ते सर्वज्ञकथित आगम कहेवाय छे, अने सर्वज्ञना अमुक अमुक वचननो आधार लइ आचार्योए जे शास्त्रो रच्या होय ते सामान्य शास्त्रो कहेवाय छे; परंतु आ बन्ने शास्त्रो नितान्ततया शुद्ध सन्मार्ग सिवाय पापोपदेश कदापि करे नहीं. आवा आगमनुं जे वचन होय ते ज आगमवचन अहीं मान्युं छे. आ आगमवचननी परिणति एटले परिणमवुं अर्थात् आगममां जे प्रकारे पदार्थस्वरूप कह्युं होय ते ज प्रकारे परिणमवुं एटले वर्तनमां–क्रियामां मूकवुं तेनुं ज नाम खरी रीते आगमवचन–परिणति शास्त्रकार कहे छे. ज्यां सुधी विभाव पदार्थोनो कंटाळो आत्माने न आवे, आत्मज्ञान स्फुरायमान न थाय, संसार पर अप्रेम न जागे अने सत्य सुख प्रति जिज्ञासा न वधे त्यां सुधी आगमवचन ते आत्माओने कोइ पण गुण करवा समर्थ बनतुं नथी. अने आ स्थिति चरम पुद्गलपरावर्तकालमां आव्या सिवाय पामवी महर्षिओए अशक्य जणावी छे. परमार्थ ए के–अज्ञानावरण-

कर्मनो ह्रास थया पछी सत्य उपादेय पदार्थने धारी न शके अने बालजीवोना ज्ञान जेवुं विषयप्रतिभास नामे जे ज्ञान तेने पण उल्लंघन करी ज्ञानावरणीय कर्मोना नाशथी ग्राह्य-उपादेय पदार्थोने विषय करनारुं अने नितान्त आत्मस्वरूपनुं खास भान करावनारुं जे ज्ञान आत्मामां प्रकाशमान थाय तेने ज उपाध्यायजी 'आगमवचनपरिणति' 'आगमसद्बोध' 'यथार्थज्ञान' 'सम्यग्ज्ञान' कहे छे. आथी ज उपाध्यायजी अन्यत्र कहे छे—"तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः। तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिन-करकिरणाग्रतः स्थातुं" ॥ १ ॥ "जेना उदय पछी रागादिकनो समूह प्रकाशमान रहे तो ते ज्ञान ज न कहेवाय, कारण के सूर्योदय थया पछी तेना किरणना प्रकाश सामे शुं अंधकार रही शके खरो?" अतएव आ ज्ञान संसारनी अनेक तरहनी विटंबणाओने दूर करवाने समर्थ एवुं निर्दोष बाधा रहित सुंदर पथ्य औषध समान छे. एवं आ ज्ञान जागृत थया पछी उपाध्यायजी महाराज जणावे छे के—ज्ञानजन्य उपादेय पदार्थोनो स्वीकार करवामां अविरिति आदि अंतराय कर्मो—प्रतिबंधको आडे आवे तो पण सत्य पदार्थनी श्रद्धामां लेश पण बाधा आवती नथी, तथा आगमवचननी परिणति थया पछी प्रकृष्ट सद्ज्ञानावरणीय कर्मोनो नाश थाय अने शुद्ध उपादेयोने स्वीकारनार सद्बोध प्राप्त थाय छे अर्थात् 'तत्त्वसंवेदन' नामे उत्तम ज्ञान जागृत थाय छे. आ ज्ञान थवाथी नित्य तत्त्व पदार्थोने ज उपादेयपणे, स्वीकार्यपणे,

हितरूपे अने स्वकल्याणपणे माने छे. आवा ज्ञाननुं मुख्य फल आचारांग टीकाकार "ज्ञानस्य फलं विरतिः" ज्ञाननुं फल हेयपदार्थनो त्याग अने पुद्गल सुखनो अमोह प्राप्त थवो ए ज कहे छे. आथी अहीं पण आ ज्ञान जागृत थवाथी तेना फल-रूपे सदनुष्ठान एटले विरतिरूप शुद्ध परिणती आत्माने प्राप्त थाय छे. अतएव आ आगमपरिणति अति प्रशस्यतर अहीं जणावी. परमार्थ ए के-पुद्गलोनो प्रेम अने विषयसुख प्रति उदासीनता आत्माने शुद्ध ज्ञान विना प्रगटवी दुर्लभतर होय छे, तो सद् औषधथी दीर्घ कालना पण रोगो नाश पामे छे तेम अनादिना तीव्र राग-द्वेषादि भाव रोगो आ तत्त्वसंवेदन नामे ज्ञान-प्रकाशरूप औषधबलथी एकाएक नाश पामे छे, विरति परिणाम जागृत थाय छे माटे आ 'आगमपरिणति' चरम पुद्गलपरावर्तकालमां ज प्राप्त थाय छे अने ते एकान्त प्रशस्यतम महर्षिओए जणावी छे. आथी ज आगमवचनना अधिकारी उपरोक्त आत्मा सिवाय अन्य आत्माओनो ग्रंथ-कर्ताए निषेध कर्यो.

तत्त्वबोध पामवाथी जे विरतिरूप सदनुष्ठाननी पूर्ण-तया प्राप्ति थाय तेनो खास हेतु ग्रंथकार जणावे छे अथवा तत्त्वबोध पामवाथी जे सदनुष्ठान आत्मा आदरे तेमां विशि-ष्टता शुं छे ? तेनो खुलासो अहीं दर्शावे छे

दशसंज्ञाविष्कंभण–
योगे सत्यविकलं ह्यदो भवति ।

परहितानिरतस्य
सदा गंभीरोदारभावस्य ॥ ५–१० ॥

मूलार्थ—परोपकारमां आसक्त अने नित्य गांभीर्यता तथा औदार्य भाववडे करीने युक्त एवा आत्माने दश प्रकारनी संज्ञाओने यथाशक्तिए रोकवानी शक्ति प्राप्त थवाथी निश्चयेन अखंड परिपूर्ण सदनुष्ठान प्राप्त थाय छे.

"स्पष्टीकरण"

विरतिरूप सदनुष्ठाननी प्राप्ति बाह्य विषयसुख, पुद्गल प्रेम परत्वेनो मोह, आसक्ति लोभ अल्प न थाय अथवा नाश न पामे त्यां सुधी थाय नहीं ए वात अमे पहेलां पण जणावी गया छीए. फरी ग्रंथकार ते ज वात शास्त्रीय शब्दोथी अहीं वधारे स्पष्ट करे छे. आ 'सदनुष्ठान' लाभ दश प्रकारनी संज्ञाओनो यथाशक्तिए निरोध करवाथी अगर नाश करवानो जाज्वल्यमान उत्साह हृदयमां आववाथी थाय छे. परमार्थ ए के–प्रत्येक आत्माने अनादिकालथी प्रत्येक गतिमां दश प्रकारनी संज्ञाओ खास हृदयंगत आत्मस्वरूपे विद्यमान होय छे, जेथी आत्मा अनेक तरेहना कर्मो बांधी ते संज्ञाकृत विकारोने पोतानो धर्म समजी अनंत संसारमां पर्यटन करे छे, एवं आत्मस्वरूपने ओळखवा जेटलुं सद्ज्ञान पण पामी शकतो नथी तो पछी विरतिरूप सुंदर क्रिया तो क्यांथी पामी शके ? आ ज हेतुथी ग्रंथकर्ता महर्षिपूज्य प्रथम ते दश संज्ञाओनो निरोध

अने निरोध करवानो प्रखर उत्साह पामवानुं खास जणावे छे, अने पछी कारणसामग्री हस्तगत थवाथी कार्यसिद्धिमां विलंब लागतो नथी ते ज न्यायथी अहीं पण सद्क्रियारूप कार्यसिद्धि दश संज्ञानो व्यवच्छेद अने व्यवच्छेद करवानो उत्साहरूप कारण–संयोग मलवाथी विनाविलंबे थाय एमां लेश पण शंकाने स्थान नथी.

अहीं 'आत्माने तत् तत् वस्तुप्राप्तिनो जे उपयोग ते संज्ञा' एम केटलाक आचार्यो संज्ञानो अर्थ जणावे छे, अथवा अष्टकर्म पैकी वेदनीय अने मोहनीय कर्मोदयना प्रभावथी एवं ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्मक्षयोपशमना प्रभावथी आहार विगेरे पदार्थनी इच्छावाळो आत्मा आहार आदि पदार्थो स्वीकारवाने जे प्रयत्न–गति आदि करे तेनुं नाम पण संज्ञा महर्षियो कहे छे. आ अर्थवाली ' संज्ञा ' आत्मानी जुदी जुदी अभिलाषाना कारणथी तथा भिन्न भिन्न प्रकारना प्रयत्नभेदथी दश प्रकारनी शास्त्रोमां जणावी छे अर्थात् आ दशे प्रकारनी संज्ञाओ अने तेनुं विस्तृत स्वरूप 'स्थानांगसूत्र' 'प्रज्ञापनासूत्र ' आदिमां नीचे प्रमाणे जणाव्युं छे. " दस संण्णाओ पं० तं आहारसंण्णा, जाव परिग्गहसंण्णा ४, कोहसंण्णा जाव लोभसंण्णा ४, लोगसंण्णा ९ ओहसंण्णा १०, नेरयईयाणां दसं संण्णाओ एवं चेव, एवं निरंतरं जाव वेमाणियाणं (स्था० सू०७५२) " दश संज्ञाओ आ प्रकारे कही छे. आहारसंज्ञा १, भयसंज्ञा

२, मैथुनसंज्ञा ३, परिग्रहसंज्ञा ४, क्रोधसंज्ञा ५, मानसंज्ञा ६, माया-
संज्ञा ७, लोभसंज्ञा ८, लोकसंज्ञा ९, अने ओघसंज्ञा १०"
नारकीओने आ दशे संज्ञाओ होय तेमज यावत् वैमानिकोने
पण ए दशे संज्ञाओ होय, तथा अन्य आत्माओने पण ए दशे
संज्ञाओ होय." क्षुधावेदनीय कर्मनो उदय थवाथी कवल,
ओज अने लोम आहारने माटे जे संज्ञाना बळथी आहार
पुद्गलोने ग्रहण करवानी चेष्टा आत्मा आदरे तेनुं नाम
आहारसंज्ञा १. भावार्थ ए के-ज्यारे ज्यारे जठराग्निना जोरथी
आत्माने क्षुधा लागे एटले अग्निनुं जोर वधे त्यारे त्यारे तेनी
शांति माटे आहारादि लेवानी चेष्टा आ ज संज्ञाबळथी
आत्मा करे छे. भयवेदनीय कर्मोदयथी आत्मा भयथी कम-
कमी उठे छे, द्रष्टि अने मुखना विकारो बदलाइ जवाथी तेना
पर दुःखनी ज छांया तरी आवे छे, एवं तेनी रोमराजीओ पण
एकाएक उभी थइ जाय छे. आ बधा विकारो जे संज्ञाना
प्रभावथी जागृत थाय तेनुं नाम महर्षिओ भयसंज्ञा कहे छे.
अहीं एक खुलासो करवानी आवश्यकता छे, ते ए के-
भय प्रकृतिने कर्मग्रंथमां नोकषाय चारित्रमोहनीयकर्म
पैकी नव नोकषायांतर्गत भयमोहनीय तरीके जणावी छे,
अने आ स्थले 'भयवेदनीयोदय' कही 'भय'ने वेदनीय-
कर्मप्रकृति तरीके जणावी. आनुं कारण ए समजाय छे के-
ज्यारे भयना लीधे आत्मा मुग्ध बनी जइ भानभूलो थाय
त्यारे ते भयमोहनीयोदय समजवो, अने ज्यारे आ मोहना
उदयथी अशांति, दुःख के क्लेश अनुभवे छे त्यारे ते भय

वेदनीयपणे समजवो. अर्थात् मोहोदयथी व्याकुलता बने अने वेदनीयोदयथी अशांति, दुःख विगेरे पेदा थाय छे. एटले आ प्रमाणे भेद पाडवामां कांइ विघातक जेवुं जणातुं नथी, तथा पुरुषवेदना उदयथी मैथुनक्रिया (स्त्री-पुरुषनो संयोग) माटे स्त्रीयोना गुह्य भागो निरखवा, तेने देखी मुखनी प्रसन्नता, साथलो स्तंभित थवा अने शरीरमां ध्रुजारी छुटवी-आ सर्व विकारो जे संज्ञाबलथी थाय तेनुं नाम त्रीजी मैथुनसंज्ञा कही छे. परमार्थ ए के-त्रण वेद पैकी कोइ पण वेदना उदयथी पुरुष स्त्रीने, स्त्री पुरुषने अने नपुंसक उभयने चाहे एवं त्यारबाद पोतानी मैथुन जिज्ञासा तृप्त करवाने जे कांइ विरुद्ध क्रीडा करे अथवा इच्छा मात्र करे ते सर्वने ग्रंथकर्ताओ मैथुन-संज्ञानो ज उदय माने छे. मैथुनसंज्ञानो आ अर्थ यदि न स्वीकार्य थाय तो एकेंद्रियो, विकलेंद्रियो तथा नारकी अने संमूर्च्छिम जीवोमां आ संज्ञा केम घटावी शकाय? अतएव उपरोक्त अर्थ स्वीकार्य छे. 'लोभमोहनीय' ना उदयथी संसारवृद्धिना कारणरूप अने आसक्तिपूर्वक सजीव निर्जीव पदार्थो एकत्र करवा आत्म संबंधी जे जे व्यापारो ते परिग्रहसंज्ञा. क्रोधना उदयथी दुष्ट परिणाम सहित आवेशनो जे परिणाम अने मुख, नेत्र, दांत, ओष्ठ ए सर्वेनुं जे चेष्टाथी सूकाइ जवुं ते क्रोधसंज्ञा अथवा आवेशवाळुं जे चित्त ते पण क्रोधसंज्ञा जाणवी. मानना उदयथी अहंकारवाली अभिमान 'हुं' पणानी जे परिणति ते मानसंज्ञा, तथा 'लोभ' ना उदयथी तृष्णा सहित सजीव-निर्जीव पदार्थोनी इच्छा करवी ते लोभसंज्ञा.

अहीं आसक्तिपूर्वक पदार्थो एकत्र करवा उद्यम करवो ते परिग्रहसंज्ञा अने पदार्थो मेळववा आसक्ति धारवी ते लोभसंज्ञा. आ प्रमाणे परिग्रह अने लोभसंज्ञा उभयमां भेद होवाथी ते बन्ने संज्ञाओ अलग अलग जणावी. एवं मति-श्रुतज्ञानना आवरणक्षयोपशमथी शब्द अने अर्थज्ञान-विनानो सामान्य मात्र जे बोध प्रगटे अने ते बोधद्वारा आत्माना जे व्यापारो ते ओघसंज्ञा. जेमके वेलडीयो लोको जे मार्गे पर चाले त्यां न वधता पोताने पीडा न थाय ते माटे वाड तरफ ज वधे. विकलेंद्रियो आतपमांथी नीकली छांयामां आवे ए ओघसंज्ञाजन्य क्रियाओ कही छे, तथा ओघसंज्ञामां जे ज्ञान प्रगटे तेना करतां विशिष्ट जे उपयोग ते लोकसंज्ञा. आ दशे प्रकारनी संज्ञाओ पंचेंद्रियोमां स्पष्टतर जणाय छे, ज्यारे एकेंद्रियोने कर्मोदयजन्य आत्मपरिणामरूपे ज होय पण प्रत्यक्ष न होय.

अहीं जणावेल आ दशे संज्ञाओ पूर्णतया होय त्यां सुधी आत्मा धर्मनी रुचिने पण पामी न शके, तो पछी 'तत्त्वबोध' आगमवचनपरिणति अने सम्यक्त्वभाव क्यांथी पामी शके ? माटे ज अहीं ग्रंथकारे प्रथम 'सदनुष्ठान' पामवा अर्थे आ दशे संज्ञाओनो यथाशक्तिए निरोध करवानुं दर्शाव्युं, अर्थात् आ संज्ञानो यथाशक्तिए निरोध करवाथी तेमज निरोध करवानो उत्साह धारवाथी आ विरति-त्यागरूप सदनुष्ठान क्रिया प्राप्तिनी योग्यता आत्मा पामी शके छे; कारण के आत्माने सुंदर भावथी स्खलित करवामां मुख्य कारणभूत आ अनादिनी

दश संज्ञाओ ज छे. अतएव अहीं ग्रंथकारे मूलमां ' योगे सति ' ए पदथी ' निरोध करवानो योग-संबंध छते ज ' एम कह्युं. आम छतां एटले दश संज्ञाओनुं जोर छतां कोइ आत्मा त्यागभावरूप सदनुष्ठान आदरे तो पण नंदिषेण महात्मानी माफक कालांतरे जरुर मार्गथी नीचो सरी जाय एमां शंका नथी. आथी अहीं अविकल सदनुष्ठान प्राप्ति माटे आ संज्ञाओनो निरोध मुख्य बताव्यो, अर्थात् आर्यामां कहेल ' अविकलं ' ए पदनो उपरोक्त परमार्थ छे.

आटलुं छतां पण फरी क्यो आत्मा अविकल सदनुष्ठान पामे तेनी पुष्टि माटे अहीं आर्या ग्रंथकार जणावे छे. एटले जेणे दशे संज्ञानो यथाशक्तिए रोध कर्यो होय, रोध करवानो उत्साह धार्यो होय तो पण आ त्रण गुणो न होय तो ते आत्मा अविकल सदनुष्ठान पामवानो अधिकारी नथी; किन्तु जेओ परोपकार करवानी अभिलाषावंत होय अने पूर्वे कहेल गांभीर्यता, औदार्यता ए बे गुणो जेओमां होय तेओ ज आ मार्गना अधिकारी बने छे. निष्कर्ष ए छे के-दशे संज्ञानो यथाशक्तिए रोध कर्या पछी परोपकारी उदारदिल अने गंभीराशय प्राणी ज अविकल सदनुष्ठान पामे.

अरे ! दुर्लभ पण दश संज्ञानो रोध थाय शाथी ? जेथी आत्मा अविकल सदनुष्ठाननो अधिकारी बने ए भावने जणावे छे.

सर्वज्ञवचनमागमवचनं,
यत्परिणते ततस्तस्मिन् ॥
नासुलभमिदं सर्वं,
ह्युभयमलपरिक्षयात्पुंसाम् ॥ ५–११ ॥

मूलार्थ—सर्वज्ञ भगवाननुं जे वचन ते ज आगमवचन अहीं मान्युं छे, एटले आ आगमवचन परिणम्या पछी अने क्रियामल तथा भावमलनो क्षय थवाथी आत्माओने आ दश संज्ञाओनो यथाशक्तिए निरोध थावो कांइ दुर्लभतर नथी; किन्तु सुलभ ज छे.

" स्पष्टीकरण "

' सर्वं जानातीति सर्वज्ञः तस्य वचनं ' " निराबाधपणे जगतना चर–अचर सर्व पदार्थोने जे जाणे–देखे ते सर्वज्ञ अने तेनुं वचन ते सर्वज्ञवचन. " सर्वज्ञ पुरुषनुं जे वचन तेने ज अहीं ' आगमवचन ' तरीके स्वीकार्युं छे. जेओने सर्वज्ञवचन पर सद्भाव थयो होय अने सर्वज्ञनुं वचन ज सत्यमार्गदर्शक छे एवी श्रद्धा हृदयमां एकान्ततः परिणमी होय, तेओने आ जगतमां कोइ पण क्रियाओ प्राप्त थवी दुर्लभतर नथी; कारण के–धन्वंतरी वैद्यनुं जेओने ओढुं मल्युं होय तेओनो रोग जवामां शुं विलंब लागे खरो ? तथाप्रकारे अहीं पण जगतना रोगोने निर्मूल करनार अने प्रत्येक रोगना प्रतिकारो

दर्शावनार प्रभु वीतरागदेवना वचनो अखंड निराबाधपणे जेओना हृदयमां निवास करी रह्या होय तेओना रोगो अने तामसो क्यांथी स्थिर रही शके ? अर्थात् न ज रहे. कह्युं पण छे के–"पापामयमौषधं शास्त्रं, शास्त्रं पुण्यनिबंधनम् । चक्षुः सर्वत्रगं शास्त्रं, शास्त्रं सर्वार्थसाधनम् "॥१॥ 'पापरूपी रोगोने निर्मूल–नाश करनार अमूल्य औषध तुल्य शास्त्र छे, अने शास्त्र पुन्यबंध करवामां एक मुख्य साधन छे, एवं शास्त्र सर्व पदार्थोने देखवा माटे अलौकिक अद्वितीय नेत्र समान छे, तथा सर्व अर्थनी सिद्धि करनारुं पण शास्त्र ज छे.' तेमज चरमकालवर्ती भवि आत्माओ प्रत्येक क्रियामां शास्त्रनो ज आधार स्वीकारे छे अर्थात् सर्वज्ञवचनथी उलटी रीते चालवाने तेओ चंचलचित्त थता नथी. ए ज वात अन्यत्र पण कही छे–" परलोकविधौ शास्त्रात्, प्रायो नान्यदपेक्षते । आसन्नभव्यो मतिमान्, श्रद्धाधन-समन्वितः " ॥ १ ॥ " परलोक संबंधी साधनभूत क्रियामां श्रद्धारूपी धनवालो अने बुद्धिशाली एवो निकटभवी आत्मा सर्वज्ञशास्त्र सिवाय अन्य आलंबन वहोलताये कदापि स्वीकारतो नथी, अपेक्षा राखतो नथी. " उपर कह्या प्रमाणे शास्त्रवचनो जेना हृदयमां रमी रह्या होय तेमज ते पर ज जेओनी अखंड श्रद्धा होय तेओ अवश्य शास्त्रमां जे वात स्वीकार्यरूपे अने हेयरूपे कही होय ते ते वातोने मतिमान् आत्माओ यथाशक्तिए स्वीकारवानो अने त्याग करवानो

प्रयत्न जरुर करे. आथी अहीं जणाव्युं के-'परिणते' शास्त्र-वचन यथारूपतया परिणम्या पछी एटले 'नासुलभमिदं सर्वं' आ सर्व अनुष्ठानो प्राप्त करवा तथा दशे संज्ञाओनो रोध करवो कांइ दुर्लभ नथी, किन्तु सुलभतर छे. निदान ए के-शास्त्रवचननो निर्दोष राग प्रगटवाथी भवी आत्माना बे प्रकारना मलो स्वतः नाश पामे छे. एक तो जे 'क्रियामल' ना जोरथी आत्मा सुंदर वर्तन आदरवाने असमर्थ अनादि-कालथी रहेतो हतो ते मलनो नाश थाय अने दुष्ट आशयरूपी मलिनताथी आत्मा शुद्ध वस्तुने बराबर विचारी शकतो न्होतो एवो 'भावमल' अर्थात् आशयनी अपवित्रता तेनो पण नाश थाय छे, आम थवाथी जरूर दश संज्ञानो निरोध अगर निरोध करवानो उत्साह आत्माने जागृत थाय छे, एमां अधिकोक्ति जेवुं कशुंए नथी. एवं जेओने सर्वज्ञवचन पर प्रेम जागृत थयो नथी तेओने ज आ अनुष्ठान प्राप्त थवुं दुर्लभतर होय. कह्युं छे के-"न यस्य भक्तिरेतस्मिंस्तस्य धर्मक्रि-याऽपि हि । अन्धप्रेक्ष्यक्रिया तुल्या कर्मदोषादस-त्फला" ॥ १ ॥ "जेने सर्वज्ञशास्त्र उपर प्रेम के भक्तिभाव नथी तेनी धर्मक्रिया पण निश्चयथी अंधनी दृष्टि संबंधी क्रि-यानी माफक कर्मदोषना लीधे असत् फलवाळी समजवी." अर्थात् अंधने दृष्टि होय तो पण तेनुं फल कांइ पण न होवाथी जेम फलने नहीं देनारी होवाथी नकामी छे तेम श्रद्धा विनानी धर्मक्रिया पण फल वगरनी समजवी

अर्थात् मुख्य फल आत्म-निर्मलताने आपती नथी. " 'आगम-वचन' मां जेओने भ्रांतभाव प्रगट थयो होय तेओ ज दानादि सर्व धर्मो अविधिभावथी सेवे. आ वात प्रथम आपणे तपासी गया, परंतु जेओने आगमवचन पर एकान्त श्रद्धा होय तेओ दानादि धर्मो क्या प्रकारे स्वीकारे ते वातनो खुलासो ग्रंथकार करे छे.

विधिसेवा दानादौ,
सूत्रानुगता तु सा नियोगेन ॥
गुरुपारतंत्र्ययोगा-
दौचित्याच्चैव सर्वत्र ॥ ५-१२ ॥

मूलार्थ—सर्वांगशुद्धिपूर्वक दानादि कार्योमां प्रवृत्ति करवी तेनुं नाम विधिसेवा. सिद्धान्तमां बतावेल विधिसेवानी प्राप्ति तो निश्चयथी गुरुआज्ञाने आधीन रहेनारने ज थाय छे, अने ते विधिसेवावान् दान आदिमां सर्वत्र औचित्यतापूर्वक ज प्रवृत्ति करे छे.

" स्पष्टीकरण "

जिन भगवानना वचन पर श्रद्धा राखनार जे कांइ दान, पूजा आदि कार्यो करे ते जिन भगवंते जे प्रकारे करवानुं कह्युं होय ते प्रमाणे विधिपूर्वक करे, अथवा जेओ विधिथी करता होय तेओने आधारे करे, तेमज विधिथी करवानी दृढ इच्छा राखे; किंतु स्वतंत्र-स्वबुद्धिना आधारे न करे. एटले

आ मनुष्य दानादि कार्यो अविधि भावथी करे नहीं. विधि एटले शास्त्रमां जे न्याय दर्शाव्यो होय ते न्यायथी सेवा-आचरण ते विधिसेवा. परमार्थ ए के—न्यायोपार्जित धनथी आवेल पदार्थनुं सत्पात्रमां दान करवुं तेमज जिनपूजा विगेरे कार्यो करवा एम आगममां कह्युं छे. "नायागयाणं कप्प-णिज्जाणं अन्नपाणाइदव्वाणं पराए भत्तीए आयाणु-गाहबुद्धीए संजयाणं दाणं अतिहिसंविभागो मु-क्खफलो" "न्यायथी आवेल अने साधुने उपयोगमां आवे तेवा अनाज पाणी आदि पदार्थो उत्कृष्ट भक्तिथी अने स्व-आत्मानो उद्धार करवानी बुद्धिवडे साधुओने आपवा अथवा अतिथिसंविभाग करवो ते मोक्षफल आपनार थाय." आथी विरुद्ध प्रवृत्ति करनार दानादि कार्यो करे तो पण तेनाथी मोक्षफल न पामे, किन्तु "दानेन भोगानाप्नोति" ए वाक्यथी भोग्य पदार्थो जन्मांतरमां प्राप्त करे. धनासार्थवाहे अने आमना ठाकुरे मुनियोने शुद्ध दान आप्युं तेथी ते ज जन्ममां तेओ समकित पाम्या तथा तीर्थंकरगोत्र बांध्युं. ए दान परम शुद्ध अने शास्त्रोक्त विधिवाळुं कह्युं छे. ज्यारे शालिभद्र तथा धन्नाकुमारना जीवे पूर्व भवमां मुनियोने जे दान आप्युं ते उपयोगी भक्तिपूर्वक आप्युं खरुं, परंतु स्वा-त्मोद्धार दृष्टि वगरनुं अने न्यायागत न होवाथी आ दान तुर-तमां भोग्य पदार्थ देनारुं थयुं, पण ते जन्ममां समकित आपनारुं न थयुं. आथी ज शास्त्रोमां अल्प पण दानादि कार्यो न्यायो-पार्जित वित्तवडे ज शुद्ध कह्या, पण अन्यायी द्रव्यथी बहु पण

दानादि कार्यो अशुद्ध ज छे एम स्पष्ट कह्युं छे.

न्यायनुं स्वरूप आ प्रमाणे शास्त्रमां दर्शाव्युं छे–"स्वामी-द्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासुने छलवो, चोरी आदि निन्दनीय कार्योथी जे धन पेदा करवुं तेने छोडी अन्य व्यापारद्वारा धन पेदा करवाना पोतपोताना कुलने उचित जे आचारो तेनुं नाम न्याय अने तेवी प्रवृत्तिथी जे धन प्राप्त थाय ते न्यायोपार्जित धन समजवुं." आ रीतथी आवेल धन पवित्र बुद्धिवालुं अने अल्प पापकर्म रहित होवाथी तेनो भोग अने सत्पात्रमां दान सुष्ठु फल आपनार बने छे. शास्त्रो कहे छे के–न्यायोपार्जित धननो सत्पात्रमां उपयोग करवाथी पुण्यानुबंधी पुण्य बंधाय छे. उपर कह्या प्रमाणे न्यायथी द्रव्य उपार्जी तेनाथी प्राप्त थयेल द्रव्यनो सत्पात्रमां एटले मोक्षसाधक सन्मुनियोने दान देवामां उपयोग करवो तेम ज जिनपूजन पण न्यायोपार्जित धनथी प्राप्य पुष्प–फलादिवडे करवी. एटले जिन-वचन पर श्रद्धा राखनार उपरोक्त विधिसेवा दानादि कार्योमां प्राप्त करे छे, परंतु आ विधिसेवा एटले शास्त्रमां जे विधि अनुष्ठान दर्शावेल छे तेनी प्राप्ति तो "गुरुपारतंत्र्ययोगात्" गुर्वादिनी आज्ञामां वर्तवाथी ज थाय किंतु स्वतंत्र वर्तवाथी कदापि थाय नहीं; कारण के जिनवचननुं मुख्य रहस्य केवल महर्षि गुरुओने आधीन होय छे. अने जे गुरुथी निरपेक्ष थाय तथा स्वबुद्धिने ज प्रत्येक कार्यमां आगल करे ते

मनुष्य जिनवचनना अर्थो तथा भावो स्वकल्पनाथी ज ग्रमा करे, एटले जिनवचननो अमूल्य भाव पामी शके नहीं तेमज जिनवचननी पण ते दरकार करे नहीं. अतएव गुरुवचनाराधक जिनवचनना परमार्थने पामे अने तेथी दानादि कार्योनी विधिसेवा पण आ ज मनुष्य पामे एम आचार्ये कह्युं. वळी विधिसेवाप्राप्त मनुष्य दान आदि कार्यो औचित्यतापूर्वक ज करे अर्थात् अनौचित्य व्यवहारने वाजु पर करी दीन, अनाथ, अपंग, मुनियो विगेरेने जे विधिथी, जेवा सत्कारथी अने जेवा आदरभाव तथा भक्तिथी दान आपवुं जोइए ते प्रमाणे वर्तन करे छे. निदान ए के–सर्वत्र विवेकपूर्वक दानादि कार्यो करे छे. ए प्रमाणे आगमवचनमां अभ्रान्तमति गुरुआज्ञानुसारी विधिपूर्वक दानादि कार्यो आराधे एम आचार्ये आ श्लोकमां स्पष्ट प्रतिपादन कर्युं. एटले विधिना अर्थीए अहीं आगमबोधनी अथवा गुरुआज्ञा आराधवानी निश्चित आवश्यकता छे ए भाव जणाव्यो.

दानादि कार्योमां विधिसेवानी आवश्यकता जणावी, हवे तेमां महादान तथा दान ए बेमां क्यो तफावत छे ते वात अहीं दर्शावे छे.

न्यायात्तं स्वल्पमपि हि,

भृत्यानुपरोधतो महादानम् ॥

दीनतपस्व्यादौ गुर्व-
नुज्ञया दानमन्यत्तु ॥ ५-१२ ॥

मूलार्थ—न्यायोपार्जित धननो सेवकवर्गने अनुपरोध-पणे दीन, तपस्वी, अतिथि आदि वर्गमां थोडो पण मातापिता आदिनी आज्ञाथी उपयोग करवो तेनुं नाम ते महादान, अने आ रीतथी उलटी रीते जे उपयोग करवो ते दान कह्युं छे.

" स्पष्टीकरण "

शास्त्रमां मार्गानुसारीना गुण वर्णन करतां आचार्य प्रथम गुण ' न्यायसंपन्नविभवः ' दर्शावे छे, एटले धर्मसन्मुख स्थित आत्मा जरूर न्यायथी ज आजीविका, कुटुंब रक्षण आदि कार्यो करे तो ज ते मार्गानुसारी कहेवाय, अन्यथा ते मार्ग-बाह्य कहेवाय. आथी धर्मप्राप्त अने प्रथम जणावी गयेल धर्मना लक्षणो जेमां होय ते तेमज दश संज्ञानो निरोधक आगमवचन पर श्रद्धालु जन तो अवश्य न्यायथी ज वृत्ति चलावे एमां आश्चर्य जेवुं नथी. महादान अने दाननो भेद आचार्य अहीं दर्शावे छे तेमां ' न्यायवर्तन ' ए मुख्य अने महादान तथा दाननो विभाजक गुण मान्यो छे. अर्थात् न्यायसंपन्नता सिवाय महादानत्व नामक परम गुण कोइ पण आत्मा पामी शके नहीं. अतएव ग्रंथकर्ता आदिमां ज ' न्यायात् ' ए पद मूके छे, एटले वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण अने शूद्र ए चार मुख्य आर्य ज्ञातिओ शास्त्रोमां कही छे, किंतु कालक्रमे

जात्यंतर पेटाजातिओ आदि अनेक भेदो—उपभेदो थइ गया; पण आ सर्व जातिओना पोतपोताना कूलानुरूप जे उचित व्यवहारो शास्त्रोमां दर्शावेल छे ते प्रमाणे व्यवहार करवो, आजीविका चलाववी, व्यापार करवो, कुटुंबरक्षण करवुं ते ते लोको माटे न्याय गणाय अने ए प्रमाणे जे धन प्राप्त थाय ते न्यायसंपन्न धन कही शकाय. जेमके—वैश्योए व्यापार, व्याज, धीरधार आदि, क्षत्रियोए प्रजासंरक्षण, अनि-ति प्रचारनो नाश, शत्रुना भयथी बचाव, दुष्टोनुं दमन आदि, ब्राह्मणोए पठन—पाठन, उपदेश, धर्मवृद्धि, धर्मसंरक्षण, देवपूजा, मंत्रस्मरण, ध्यान आदि, अने शूद्रोए सेवा, कृषि आदि कार्यो-द्वारा धन प्राप्त करी तेनाथी आजीविका अने कुटुंबसंरक्षण करवुं; पण उपरोक्त चारे वर्णो तथा पेटाजातिओ ए प्रमाणे वर्तन करता छलप्रपंच, चोरी, विश्वासघात आदि निंदक कार्यो न सेवे अने पोताना जातीय नियम प्रमाणे वर्तन करे तो ज ते न्यायी वर्तन कही शकाय.

आम छतां पण आचार्य कहे छे के न्यायथी धन उपार्जी ते धननो अमुक भाग व्यवहारसंरक्षणमां, अमुक भाग व्या-पारमां, अमुक भाग कुटुंबपालनमां, अमुक भाग नोकर—चाकर—सेवकोने संतुष्ट राखवामां अने अमुक भाग धर्ममार्गमां खर्च करे तेम ज अमुक भाग निधानस्थ करे, आ प्रमाणे वर्तनार भविष्यमां स्वजींदगीने भयमां नाखतो नथी, किंतु आय करता व्यय अधिक करे, वैश्रमण जेवी स्थिति राखे, कुटुंब

अने सेवकोने संभाळे नहीं, धर्मनी उपेक्षा करे तेओ ज परिणामे जोखममां आवी पडे छे ए ज वात आचार्य धर्मबिंदुमां स्पष्ट करीने समजावे छे. " पादमायान्निधिं कुर्यात् , व्यापारादि द्वाराए प्राप्त थयेल पैसानो चोथो भाग निधिपणे स्थापन करवो. "

एटले अहीं आचार्यश्री ध्वनित करे छे के–न्यायथी धन आवेल होय छतां जो नोकर–चाकरोने नाराज करी तेनो धर्मकार्यमां व्यय थाय तो ते व्यय सुष्ठु धर्मफलने आपी शके नहीं किंतु ए तो उपांगहीन धर्म कहेवाय; माटे धर्ममां व्यय करनारे, दानादि करनारे, 'भृत्यानुपरोधतो' सेवक–नोकरोने संताप, खेद, असंतोष न थाय तेम करी पछी ज, तेमज मातापिताने पण संतोषी, तेओनी आज्ञामां वर्ती धर्म साधन करे. आथी जेओ जींदगीभर दानादि उत्तम कार्यो करे अने मातापितानी उपेक्षा करे, अपमानित करे, संतापे, तेओनी सारसंभाळ ले नहीं, आज्ञा माने नहीं तेओ जैनशास्त्र दृष्टिए सर्वांगपूर्ण धर्माराधक न गणाय; पण उपांगहीन धर्म आराधक ज गणाय छे. एथी तेओने योग्य फल पामवाने अधिकारी नथी मान्या, कारण के धर्मीनो प्राथमिक सदाचार शास्त्रो " मातापितृसंपूजकः " ए वाक्यथी 'मातापितानी पूजा करनार ' एम वर्णवे छे. खरुं छे के–जेओ परमोपकारी मातापितानो अनादर करे तेओ धर्म अने धर्मोपदेशकोनो अनादर केम न करे ? कारण के जेओ लाखोनी चोरी करे तेओने

सैंकडोनी चोरी करता कांइ भय लागे नहीं. आटलुं जणाव्या पछी हवे पूर्णांग सहित थोडो पण ते न्यायप्राप्त धननो उपयोग क्यां करवो ? ते आचार्य कहे छे. "दीनतपस्व्यादौ" उपर कथित रीतथी ते न्यायप्राप्त धन जेओ निराधार होय, अशक्त अने विशिष्ट पापकर्मो सेवनमां असमर्थ होय तेवाओने अने त्यागी, मुमुक्षु, महाव्रतधारी तपस्वीओने आहार, वस्त्र, पात्र, वसति, पुस्तक आदि आपवामां अने अन्य जिनपूजा, सहधर्मीसेवा आदि अनेक पवित्र कार्योमां उपयोग करवो-खर्च करवो. आ रीतथी विवेकदृष्टिए करेलो थोडो पण खर्च महान् फलने-पुण्यानुबंधी पुण्यने-अर्पनार थाय छे. अतएव आचार्य भगवंत आ व्ययने-खर्चने महादान एवी संज्ञा आपे छे अर्थात् आ खर्चनी आगल अन्य लाखो तथा क्रोडो खर्ची दान कर्युं होय, जिनमंदिरो, जिनप्रतिमाओ बनावी होय, म्होटी दानशालाओ उभी करी होय, असंख्य अतिथिने सत्कार्या होय, म्होटा संघो अने लाखो सहधर्मीयोनी सेवा करी होय तथापि ते दान ज कहेवाय एटले महादानमां जे लाभ थाय ते आ कार्यो करवा छतां लाभ थाय नहीं. आ ज हेतुथी ग्रंथकार महर्षिए 'दानमन्यत्तु' उपरोक्त विधान-वियुक्त दानो ते दान कहेवाय एम कह्युं. परमार्थे ए के-धर्ममां खर्च करनारे आशय, पदार्थ, पात्र अने कालनी पवित्रता तरफ एकान्त लक्ष्य राखवुं जोइए तो ज खर्च इष्टसाधक बने.

ए रीते उपर 'महादान तथा दान'नुं स्वरूप कह्युं, हवे जिनपूजानुं स्वरूप दर्शावे छे.

देवगुणपरिज्ञानात्त-
द्भावानुगतमुत्तमं विधिना ॥
स्यादादरादियुक्तं,
यत्तद्देवार्चनं चेष्टम् ॥ ५-१४ ॥

मूलार्थ---विधिथी आदर प्रीति श्रद्धापूर्वक वीतराग देवना जे जे वीतरागत्व गुणो होय तेना ज्ञान साथे अने तेमां ज लीनता तथा उत्तम भाव सहित जे अष्टद्रव्य आदिथी भगवंतनी पूजा तेनुं नाम वास्तविक अने इष्ट पूजा समजवी.

" स्पष्टीकरण "

परमनिवृत्तिरूप जे फलोद्देशथी आपणे जेने पूजीए ते देवनुं देवत्व शुं छे ? पूजाने ते अविरोधपणे योग्य छे के नहीं ? तेनो सुष्ठु विचार करवो जोइये; कारण के तो ज ते समिचीन पूजा कहेवाय अने पूजानुं इष्टफल प्राप्त थाय; अन्यथा ते पूजा मात्र ज कहेवाय. जैन शास्त्रो संबोधे छे के तमे इश्वरनी लीला या चमत्कारो देखी अथवा गाडरीया प्रवाहथी तणाइने तेमज कोइनी प्रेरणा मात्रथी अगर अमारा पर विश्वास राखी देवनी पूजा या मान्यतामां पतंगनी माफक अग्निमां झंपलावशो नहीं, किंतु प्रथम तेनी तमे कांचननी जेम परीक्षा करी इश्वरनुं निर्दोष-निष्कलंक स्वरूप विचारी-तपासी पछी ज तेने मानवाने,

पूजवाने ललचाशो. यदि आटली तमारामां सन्मति न होय तो पछी त्यागी अस्वार्थी शुद्धोपदेशक तत्त्वदर्शी महर्षियो जे कहे ते ध्यानमां राखी ते प्रमाणे वर्तन करशो तो ज तमे तमारुं हित साधी शकशो. हरिभद्रसूरिजी तो कहे छे के-" **पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेष कपिलादिषु । युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः** " ॥ १ ॥ " महावीर परत्वे मने राग नथी ने कपिलादिको प्रति मने द्वेषभाव नथी; परंतु जेओनुं वचन युक्ति अने प्रमाणादिथी बाधित नथी थतुं तेओनुं ज वचन स्वीकारवुं योग्य छे. " शास्त्रोमां देवना ईश्वर, परमात्मा, परमेश्वर, अचिंत्यशक्ति, अखिलगुणाधीश, सर्वदोषातीत, सर्वज्ञ, वीतराग, जिनेश्वर, तीर्थंकर, सच्चिदानंदमय विगेरे सहस्रशः नामो प्रसिद्ध छे, एटले आ सर्व नामोनो समन्वय देवमां अवश्य थवो जोइए, अन्यथा ते खाली नामो गोवालना छोकरानुं इन्द्र नामनी जेम हास्यपात्र गणाय. एक बाजु ईश्वरपणानी प्रख्याती अने बीजी बाजु तेवा गुणो न होय तो ते हास्यजनक केम न गणाय ? अने आवुं ईश्वरपणुं प्राप्त करी कोने पूजवानुं मन न ललचाय ? अतएव प्रथम तो ईश्वर देवाधिदेवमां जगतना सर्व अपलक्षणो रहित राग-द्वेष अने अज्ञान चेष्टा विनाना शुद्ध सत्य निराबाध तत्त्ववक्ता तथा सर्वज्ञपणुं आ लक्षणो अवश्यमेव सुघटित थवा जोइये. ईश्वरना आ लक्षणोनी परीक्षा तेओनी जीवनक्रीडा, व्यवहार अने उपदेशपरथी सुलक्षित थाय छे. जेओए पोताना जीवन व्यवहार दरमियान हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार, तृष्णा आदि दुर्गुणोने

कर्तव्य मानी सेव्या नथी, लीला मानी लोकोने तेम करवानो उपदेश आप्यो नथी, भोग्य पदार्थोनी तृषामां आसक्तिथी लीन बन्या नथी, भौतिक मायामां लिपटाइ स्वर्जीदगीने व्यतीत करवानी तृष्णा राखी लोकोने आ तो ईश्वरनी अलिप्त लीला छे आवा प्रपंचथी ठगवानो प्रयत्न कर्यो नथी; किंतु कर्मजन्य उपाधियो वेठी, सुअवसरे संसारना प्रपंचने छंडी, राज्य, धन, कुटुंब, स्त्री–पुत्रादि परिवारने वस्त्रे लागेल कचरानी जेम अलग करी, घोरतम तप आदरी, अज्ञ लोकोए उपजावेल असंख्य परीसहो, कष्टो, उपद्रवो, ताडन, तर्जना, अपमान, उपसर्गोने एकांत क्षमाभावथी, राग–द्वेष विना प्रसन्न अंतःकरणथी अडगपणे सहन करी, अनादिना आठे कर्मोने आत्माथी अलग करी, शुद्ध निर्दोष कांचनवत् निष्कलंक आत्मस्वरूपने, अनन्तज्ञानने जेओए प्राप्त कर्युं, अखिल गुणो प्राप्त कर्या, केवल आत्मिक शुद्ध सच्चिदानंदनी लीलामां मग्न बनी भव्य आत्माओनो उद्धार करवा माटे शुद्ध सन्मार्गनो, शुद्ध निराबाध निर्दोष तत्त्वनो जेओए उपदेश कर्यो तेओ ज परमार्थथी ईश्वर, देवाधिदेव, परमात्मा अने वीतराग नाम धारण करवाने योग्य कहेवाय. आ ज देव पतितपावन, जगदुद्धारक, अशरणशरण, वत्सल, हितदायी, संसारभयरक्षक, कृतकृत्य, उत्तमोत्तम परमात्मा कहेवाय अने ते ज परमात्मा विना स्वार्थे जगत्ने सन्मार्ग दर्शावी शके. उमास्वाती वाचकजीए कह्युं छे के–"यस्तु कृतार्थोऽप्युत्तममवाप्य धर्मं परेभ्य उपदिशति। नित्यं स उत्तमेभ्योऽप्युत्तम इति पूज्यतम एव" ॥ १ ॥

"जेओ कृतकृत्य बनी उत्तम धर्म प्राप्त करी बीजाओनुं कल्याण करवा माप्त सत्धर्मनो उपदेश करे छे तेओ ज खरेखर सर्वदा उत्तमो करता पण उत्तम अने नितान्त पूज्यतम होय."

अतएव आ देवनी पूजा करवी ते ज पूजा कहेवाय. वास्तविक रीते मानवी या देवोनी पूजाने योग्य आ वीतरागदेव सिवाय अन्य कोइ न होइ शके. जेने आपणे मोक्षदातृत्व बुद्धिथी पूजीए तेमां यदि ते गुण न होय, पोते पण ते स्थानना अनधिकारी होय तो तेओने पूजवानुं फल शुं? आथी ज उमास्वाती महाराजे कह्युं छे के–"तस्मादर्हति पूजामर्हन्नेवो-त्तमोत्तमो लोके। देवर्षिनरेन्द्रेभ्यो पूज्येभ्योऽप्यन्य-सत्त्वानाम्" ॥ १ ॥ जगतमां उत्तमोत्तम अर्हन् देव ज होवाथी ते ज पूजा करवाने योग्य छे, कारण के–देवो, महर्षिओ, नरेन्द्रोने तेओ पूज्य होवाथी अन्य प्राकृतजनोए तो अवश्य तेओनी पूजा करवी जोइए." पूजकोए पूजन करवा पहेला परमेश्वरनुं उपरोक्त स्वरूप खास मनन करी तेने ध्यानमां राखवुं जोइये, जेथी पूजन करतां मननी प्रसन्नता थाय, पूजानो उद्देश बराबर साचवी शकाय अने पूजन शा माटे करुं छुं ए तत्त्वनुं यथार्थ भान थाय. वस्तुतः जेओ उपकारी होय, जेओ पासेथी भविष्यमां कांइ तत्त्व मेळववानी इच्छा होय तेओनो सुयोग्य उचित सत्कार करवो ए व्यवहारिक नियम पण छे. ज्यारे परमात्मा तो अतुलोपकारी, अनन्य असाधारण सुखदाता सांसारिक त्रिविधताप दूर करनार होवाथी

अने तेओ पासेथी ते पदार्थो प्राप्तव्य होवाथी तेओनी पूजा तेओने योग्य अवश्य करवी जोइए ए पूजकोनो धर्म छे. योग्यनुं योग्य सन्मान करवुं ते आपणी योग्यता वधवानुं बीज छे, कारण के योग्यने जेटलुं आपीये तेनाथी सहस्रगणुं पाछुं आपणने मळे छे अर्थात् जे पदार्थनी आपणने भविष्यमां चाहना होय तेना माटे ते पदार्थवाननी उचित सेवा-सन्मान-पूजा विगेरे करवां जोइए. आथी ज आचार्य हरिभद्रसूरीश्वरजी पूजानो उपदेश करता पूजकोने कहे छे के- ' देवगुणपरिज्ञानात् ' एटले देवना जे जे अनुकरणीय अने प्राप्तव्य गुणो छे तेनुं ज्ञान करवुं, तेनो अभ्यास करवो अने पूजा करती वखते तेनी ज भावना करवी, एटलुं ज नहीं पण 'तद्भावानुगतं' देवना गुणस्मरण-ध्यानमां आत्माने लीन करी शास्त्रोक्त विधिथी उत्तम प्रकारे वीतरागदेवनी पूजा करवी, तेमज देव परत्वे अने पूजामां एकान्त आदर आचरण प्रीति सहित पूजा करवी एटले आ पूजा परमार्थ पूजा कहेवाय. निदान ए के-ईश्वरपूजन करती वखते ध्याता, ध्येय अने ध्यान आ त्रिपुटीनी एवी तो ऐक्यता थवी जोइए के जेथी शास्त्रोक्त अमृतक्रियानुं लक्षण आ पूजामां समन्वित थाय अने ' भ्रमरी-कीटक ' न्याय लागु थइ शके. अरे ! उमास्वाती वाचकजी कहे छे ते प्रमाणे पूजा करवाथी उत्तरोत्तर अवश्य लाभ थाय. " अभ्यर्चनादर्हतां मनःप्रसादस्ततः समाधिश्च । तस्मादपि

निःश्रेयसमतो हि तत्पूजनं न्याय्यं " ॥१॥ "वीतराग देवनी पूजा करवाथी प्रथम मननी प्रसन्नता वधे, त्यारपछी तेथी समाधिशान्ति एटले कषायो दूर थाय अने ते पछी एकान्त निःश्रेयस–मोक्ष प्राप्त थाय माटे वीतरागदेवनी पूजा करवी, ए न्याययुक्त गणाय. " परंतु आ पूजानुं प्रकरण प्रथम कहेल महादान अने दानना प्रकरण पछी जणाव्युं होवाथी महादाननी योग्यता प्राप्त करवा आचार्ये जे जणाव्युं ते योग्यता पूजकोमां प्रथम अवश्य आववी जोइए. ए योग्यता आव्या बाद आ वास्तविक पूजानो अधिकार आत्मा पामी शके; अन्यथा ते पूजा ज गणाय. आथी ज ग्रंथकारे मूलमां अहीं ' उत्तमं विधिना ' आ पदो पर वधारे वजन आप्युं छे. परमार्थ ए के–न्यायप्राप्त सेवकोने अविरोधी अने वडीलनी आज्ञा मुद्रित होय तो ज उत्तम अने विधिपूर्वक वीतरागपूजा कहेवाय.

उपर आपणे जे वात विचारी गया तेनी ज प्रकारांतरथी फरी पुष्टि करे छे, अथवा उपाध्यायजी कहे छे के–ए ज वात अन्यत्र कही छे तेनो अतिदेश–भळामण अहीं प्रस्तुत ग्रंथकर्ता कहे छे.

एवं गुरुसेवादि च,

काले सद्योगविघ्नवर्जनया ॥

इत्यादि कृत्यकरणं,

लोकोत्तरतत्त्वसंप्राप्तिः ॥ ५-१५ ॥

मूलार्थ—विधिथी जेम पूजानुं कह्युं तेम विधिथी धर्माचार्य आदिनी सेवा, भक्ति, पूजा विगेरे करवी, अने योग्य अवसरे स्वाध्याय, ध्यान, पठन आदि धर्मव्यापारो विघ्नो-अन्तरायोने दूर करी करवा. इत्यादि उपर कथित कार्योनुं विधान करवाथी लोकोत्तरतत्त्वनी प्राप्ति थाय अर्थात् आनुं ज नाम लोकोत्तरतत्त्वनो लाभ कह्यो छे.

" स्पष्टीकरण "

देवनी पूजानुं स्वरूप उपर विस्तारथी विचारी गया. हवे गुरुसेवा आदि कार्यो केम करवा ते विचार आचार्यश्री अहीं जणावे छे. जे वात अन्यत्र कही जे ते ज अहीं पुष्टि माटे दर्शावे छे अथवा देवनुं यथार्थ स्वरूप, पूजानुं यथार्थ रूप धर्माचार्यो पासेथी ज उपलब्ध थाय छे; माटे गुरुभक्तिनुं स्वरूप अहीं जणावे छे. शास्त्रोक्त विधिथी पूजा करवानुं शास्त्रोमां जेम कह्युं छे तेम गुरुसेवा, भक्ति, पूजा पण विधिपूर्वक ज करवी एटले धर्माचार्यो—त्यागी, शुद्ध सन्मार्गदर्शक गुरुओ—नी आहार, पात्र, औषध, मकान आदिथी शुश्रूषा विधिथी करवी. भावार्थ ए के—गुरु सन्मुख जवुं, पांच अभिगमो साचववा, गुरुने आहारादि माटे निमंत्रणा करवी, आहार लेवा आवे ते समये सामे जवुं, पछी वंदना करी अब्भुट्ठियो खामी विनय, सरलता,

उदारता, भक्तिनो अतिरेक, प्रमोदना अश्रुसह अहोभाग्य मानी न्यायप्राप्त कल्पनीय आहारादि गुरुपात्रमां मूकवा, अल्पमां अल्प सात पगलां गुरुने वळाववा जवुं, वारंवार सुखशाता पूछवी, विनयथी धर्मचर्चा करवी; तथा पठन, पाठन, स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग आदि क्रियाओ करवी तेमज प्रतिक्रमण प्रतिलेखना पण उचितकाले करवी. शास्त्रमां जे जे क्रियाओ जे जे काले करवानो उपदेश कर्यो छे ते ते क्रियाओ करवी.

आ क्रियाओ पण अनेक प्रकारनी वचमां आवती स्खलनाओने दूर करी, विघ्नो—अंतरायोथी अडग रही करवी. निदान ए के—धर्मक्रियानुं आचरण करतां अवश्य परीषहो, कष्टो, अपमानो, प्रमादो, विकथाओ विगेरे अनेक अंतरायो धर्मक्रियाथी चलित करवा अकस्मात् आडे आवे पण ते सर्वने दूर करी निर्भय बनी पुरुषार्थपूर्वक उपरोक्त धर्मक्रियानुं आचरन, पालन, अभ्यास विगेरे करवा. आ कार्योनी ए रीते प्राप्ति थवाथी एटले ए कार्यो आचरवाथी ग्रंथकर्ता कहे छे के आनुं नाम लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति थइ कहेवाय अर्थात् ए प्रमाणे वर्तन करवुं तेनुं ज नाम लोकोत्तरतत्त्व छे. ए सिवाय अन्यने लोकोत्तरतत्त्वनी संज्ञा नथी. यशोविजयजी महाराज कहे छे के—विधिसह दान पूजा अने सेवानुं आचरण करवाथी ते ज महादान, इष्टपूजा अने सत्सेवा ए नामथी आ क्रियाओ अंकित थाय छे.

आ सर्व केम प्राप्त थाय ? तेनो अहीं खुलासो करे छे.

इतरेतरसापेक्षा त्वेषा,
पुनराप्तवचनपरिणत्या ॥
भवति यथोदितनीत्या,
पुंसां पुण्यानुभावेन ॥ ५–१६ ॥

मूलार्थ—उपर कहेल सर्व क्रियाओ परस्पर सापेक्ष होवाथी, उपरोक्त स्वरूपवाली अने परस्पर अपेक्षा राखनारी आ सर्व क्रियाओनी प्राप्ति पुरुषोने पुण्यानुभावथी अने सिद्धान्तवचन परिणामवाथी थाय छे.

" स्पष्टीकरण "

शास्त्रोक्त विधिसह एक सुष्ठु क्रिया प्राप्त थाय तो तमाम क्रियाओ सुष्ठु अने विधि युक्त प्राप्त थाय, तेमज एक क्रिया विधि रहित अने अशोभन होय तो सर्व क्रियाओ अविधिवाली अने अशोभन होय, आ वात अहीं दर्शावे छे; कारण के—दान, पूजा, सेवा आदि कार्योनुं शास्त्रोक्त विधान परस्पर एवुं तो गुंथाएल छे के जे महानुभावने सिद्धान्त वचनो बराबर परिणम्या—सिद्धान्तवचनमां अपूर्व श्रद्धा प्राप्त थइ ते महानुभावने शास्त्र आधारथी, एक ज क्रियामां कुशलता प्राप्त थवाथी सर्व क्रियाओनी कुशलता प्राप्त थवामां कांई प्रत्यवाय नडतो नथी एटले आ सर्व क्रियाओ एक बीजानी अपेक्षा राखे छे. जेमके महादान नामक क्रियामां न्यायवर्तन, पोष्यवर्गनो अविरोध, मातापितानी आज्ञा, आशयनी पवित्रता,

उदारता आदि गुणोनी अपेक्षा होय छे ते ज गुणोनी जिनपूजा, गुरुसेवामां पण आवश्यकता छे अने आ क्रियानी निर्मलता सिद्धान्तवचन परिणामवाथी, तेना पर सद्भाव प्राप्त थवाथी ज थाय छे. तेम ज शास्त्रकार आचार्य कहे छे के- सद्बुद्धिना हेतुभूत पुण्यविपाकनो ज्यारे उदय थाय त्यारे ज जिनेश्वरनां आगममां अपूर्व श्रद्धा प्रगटे, अने पूर्वे जे प्रमाणे महादान, इष्टपूजा अने सत्गुरुसेवानुं स्वरूप कह्युं छे ते प्रमाणे मनुष्योने अविरोधपणे आ शुभ क्रियाओनी बराबर प्राप्ति थाय छे. आ प्रमाणे एक ज क्रिया अन्य क्रियाने बाधा न उपजावे तेवी ज्यारे प्राप्त थाय त्यारे ज ते लोकोत्तरक्रिया कहेवाय, अने अन्य क्रिया साथे एक विरोध करनारी प्राप्त थाय तो ते लौकिकक्रिया कहेवाय. निदान ए के-उपर दर्शित अविरोधीनी विधिसह क्रियानी प्राप्ति आगमवचन परिणामवाथी अने महापुण्योदयथी, प्रत्येक क्रियानो परस्पर सुघटित संबंध साधववाथी तेम ज विधिनो अनुराग धारवाथी थाय छे.



(६) जिनमंदिरषोडशकम्.

आगलना प्रकरणमां 'लोकोत्तरतत्त्व' शुं अने तेनी प्राप्ति कोने तथा शाथी थाय ? ए वात कही, एटले सामान्य धर्मनी सिद्धि थया पछी लोकोत्तरतत्त्व प्राप्त थाय एम जणाव्युं. आथी आत्मा जिनमार्गमां आगल वधवाने अने उत्तरोत्तर परम गुणो इष्टकार्यसिद्धि करवाने योग्यतावालो थाय. निदान ए के–खरी लायकात तेमां आवे एम प्रतिपादन कर्युं. लायकात वगरनी वीतरागदर्शित क्रियाकुशलता उच्च गृहीजीवन अगर त्यागीजीवननो अधिकार उपलब्ध थाय तो पण ते भाडुती जीवन तुल्य होवाथी इष्टफल कदापि अर्पे नहीं, अतएव आ छट्ठा प्रकरणमां श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी भगवान लोकोत्तरतत्त्व आत्माने प्राप्त थया पछी आत्मा क्या क्या कार्यो करवाने अने क्या स्थाने विराजवाने अधिकारी थाय तेनुं व्यक्तस्वरूप विस्तारथी प्रतिपादन करे छे.

> अस्यां सत्यां नियमाद्वि-
>
> धिवज्जिनभवनकारणविधानं ॥
>
> सिद्ध्यति परमफलमलं,
>
> ह्यधिकार्यारंभकत्वेन ॥ ६–१ ॥

मूलार्थ—आ उपर दर्शित 'लोकोत्तरतत्त्वनी' प्राप्ति थया पछी निश्चयथी धर्मी आत्मा स्वयं विधिपूर्वक वीतरागनुं

मंदिर अन्य पासे करावे अने पोते जिनभवनना जे जे कारणो होय तेने प्राप्त करे. आथी अधिकारीए आ कार्य आरंभ्युं होवाथी तेने अतिशय परमफलनी सिद्धि थाय.

" स्पष्टीकरण "

प्रथम सामान्य धर्मना गुणो औदार्य आदि प्राप्त थाय, स्यारवाद सिद्धान्तवचननो प्रेम, परमश्रद्धा अने परिणमन थया पछी विधिनो बोध, आदर, करणप्रीति तथा क्रमशः विधिसह क्रियाकुशलता तेम ज प्रत्येक क्रियानो विधिबोध थाय. एटले महादान, इष्टपूजा, सत्सेवा–आ प्रमाणे आत्म-शुद्धि अने एकान्त कर्मक्षयकारक लोकोत्तरतत्त्वनी परमगु-णनी प्राप्ति थाय. जेने आ प्रमाणे क्रमशः अथवा उत्क्रमथी ए गुणो हृदयंगम थाय ते अवश्यमेव स्वोपार्जित धन चंचल, क्षणिक, विनश्वर धारी तेनो महादानमां, जिनपूजामां अने गुरुभक्तिमां उत्साहथी व्यय करे, धर्मवृद्धि, समकितप्राप्ति-संरक्षण अने तेनी शुद्धि तेम ज शासनप्रभावना विगेरे कार्यो स्वजींदगीमां अनेक वार ते धनथी करे, एटले वस्तुतः धन उपर आ आत्मा गाढ मोह राखे नहीं. छेवटे वीतरागदेवनी महापूजाना लोभथी पोतानी कुटुंबनी अने समान धर्मीओनी सरलता माटे नित्य धर्मवृद्धि थाय ते सारु अने आत्मानी पवित्र भावना बनी रहे तेमज कुटुंबीयो धर्म अने स्वकर्तव्यथी च्यूत न थाय ते माटे तथा समकितनी निर्मलता–उज्वलता माटे शास्त्रकर्ता कहे छे के–' नियमात् ' निश्चयथी अथवा

योग्यता आववाथी आ आत्मा जिनमंदिर अन्य कारीगरो पासे करावे. ते पण जेम तेम नहीं, किन्तु पोते सिद्धान्तप्रेमी होवाथी 'विधिवत्' शास्त्रमां जे विधिथी अने जेवी योग्यता प्राप्त कर्या पछी करवानुं जणाव्युं ते प्रमाणे बनावे, एटलुं ज नहीं परंतु पोते स्वयं जिनभवनमां जे जे साधनो—बाह्य अथवा आभ्यन्तर साधनो—जोइए तेनुं संपादन करे अर्थात् खरी लायकात प्राप्त करे. आ प्रमाणे वर्तन करवाथी शुं फल थाय ? ते ग्रंथकार उत्तरार्धथी जणावे छे. एटले उपर कह्या प्रमाणे 'लोकोत्तरतत्त्व' प्राप्त थवाथी योग्यता आवे अने तेथी—'अधिकार्यारंभकत्वेन' खास अधिकारी शास्त्रोक्त योग्यतावालो आत्मा आ जिनमंदिर विधिपूर्वक बनावे छे, एटले अतिशय महान् उत्कृष्ट फल जे मोक्षफल अथवा तीर्थंकर-गोत्रबंधरूप फल अगर निर्दोष सम्यक्त्वरूप फल निदानतया तेने उपलब्ध थाय छे.

आ श्लोकमां आचार्यदेवे 'लोकोत्तरतत्त्व' मळ्या पछी शास्त्रोक्त अधिकारीपणुं प्राप्त करी अन्य पासे जिनमंदिर करावे अने पोते जिनमंदिर योग्य बाह्य तथा आभ्यंतर पवित्र साधननुं संपादन करे तेम कह्युं. अतएव शास्त्रमां केवा गुणवालो जिनमंदिर कराववाने योग्य गण्यो छे ? ए प्रश्ननो खुलासो ग्रंथकर्ता अहीं करे छे.

न्यायार्जितवित्तेशो,

मतिमान् स्फीताशयः सदाचारः ॥

गुर्वादिमतो जिनभवन-
कारणस्याधिकारीति ॥ ६-२ ॥

मूलार्थ—न्यायोपार्जित धनवान्, बुद्धिमान्, पवित्र आशयवान् अने सदाचारी तेम ज मातापिता तेमज वडिलो, राजा अमात्य आदिने मान्य एवा आत्माने वीतरागदेवनुं मंदिर करावबा शास्त्रकारोए अधिकारी मान्यो छे.

" स्पष्टीकरण "

धनवान् अने गमे तेवी लायकात वगरनो आत्मा ममत्व, ईर्ष्या अथवा मानप्रिय बनी जिनमंदिर करावे छे, तो भविष्यमां तेने अगर तेना कुटुंबने, श्रीसंघने ते मंदिर पर एटली दरकार होती नथी. आयंदे ते मंदिर भारभूत आशातनामय अने एक कर्मबंधनुं ज कारणभूत बने छे, तथा बनावनार पवित्र हेतुथी अथवा पवित्र आशयथी अने न्यायथी करावनार न होवाथी ते मंदिर अन्यने कल्याणभूत कदापि बनतुं नथी. अन्याय तथा दुष्टबुद्धिथी करेलुं एक गृहस्थ जीवननुं सामान्य कार्य पण ज्यारे आत्माने शांतपणे बेसवा देतुं नथी तो आवुं जिनमंदिर पण उन्नतिमां कयांथी हेतुभूत थाय ? अतएव जिनमंदिर करावनारे केवल धनपतिपणानो ज मोह न धरता आ श्लोकमां दर्शित योग्यता मेळववा तरफ लक्ष्य राखवुं, एम ग्रंथकर्ता प्रतिपादक रीतिथी गर्भित उपदेश करे छे. एटले के आ श्लोकमां जिनमंदिर करावबानी योग्यतावाला माटे जे पांच विशेषणो आप्या छे ते पूरेपूरी रीतथी

आत्मा प्राप्त करे त्यारबाद ज जिनमंदिर पोते स्व अने परना कल्याण माटे बंधावी शके; अन्यथा जिनमंदिर बंधाववा पूरतुं ज कार्य कर्युं कहेवाय.

धनवान ज जिनमंदिर बंधावी शके ए वात खरी अने धन विना मंदिर विगेरे एक पण कार्य थइ शके नहीं ए तो जाणीतुं छे, पण जिनमंदिर जेवा पवित्र कार्यो क्या धनथी थाय तो स्वपरने आयंदे कल्याणकारी थाय एनो खुलासो शास्त्रकर्ता प्रथम ज करे छे.–' न्यायार्जितवित्तेशो ' जेणे स्वजींदगीमां पोताना कुलपरंपरागत व्यवहारथी छल-कपट, विश्वासघात, चोरी अने बीजा निंदनीय व्यापारो विना धन पेदा कर्युं होय ते ज न्यायप्राप्त धन कहेवाय. आवुं धन जेना पासे होय ते ज मनुष्य वीतराग देवनुं मंदिर बंधावी शके अने पूजा तथा महादानना फलने पामवाने योग्य गणाय, कारण के न्यायप्राप्त धनथी करेलुं अल्प पण पुण्यकार्य पुण्यानुबंधी पुण्यनुं कारण थाय एम महर्षिओ कहे छे. आम छतां पण जो हित अने अहितनो विभाग करवानी अक्कल न होय अर्थात् कल्याणकारी शुं छे एटलो पण जेने विवेक न होय तो ते न्यायप्राप्त धननो सदुपयोग क्यांथी करी शके ? एटले ज–' मतिमान् ' आ धननो हुं क्यां व्यय करुं तो भविष्यमां मारुं एकान्त कल्याण थाय एवी जेनी सन्मति होय, तेमां पण कार्य करवा पहेला सन्मति उपजे अने कार्य शरु कर्या पछी अगर कार्य बनी गया पछी आ में शुं कर्युं ? मारुं धन बधुं खर्चाइ जशे ? हवे हुं शुं करीश ? एवी एवी अनेक धार-

ग्राम्रो-विचारो न आवे माटे कहे छे के-' स्फीताशयः '
कार्यनी शरुआतथी मांडी कार्य थइ रहे त्यांसुधी अने आगल
उपर पण जेना परिणामो मंदिर आदि धार्मिक कार्योमां अनु-
क्रमे चडता ज रहे; तथा ' सदाचारः ' सदाचारी-उत्तम
आचारवान् होय ते. सदाचारनुं स्वरूप योगबिन्दु प्रकरणमां
आ प्रमाणे कह्युं छे-" लोकापवादभीरुत्वं, दीनाभ्यु-
द्धरणादरः । कृतज्ञता सुदाक्षिण्यं, सदाचारः प्रकी-
र्त्तितः ॥ १ ॥ सर्वत्र निन्दासंत्यागो, वर्णवादश्च
साधुषु । आपद्यदैन्यमत्यन्तं, तद्वत्संपदि नम्रता
॥ २ ॥ प्रस्तावे मितभाषित्व-मविसंवादनं तथा ।
प्रतिपन्नक्रिया चेति, कुलधर्मानुपालनम् ॥ ३ ॥ अ-
सद्व्ययपरित्यागः, स्थाने चैतत्क्रिया सदा । प्रधान-
कार्ये निर्बन्धः, प्रमादस्य विवर्जनम् ॥ ४ ॥ लोका-
चारानुवृत्तिश्च, सर्वत्रौचित्यपालनम् । प्रवृत्तिर्गर्हि-
तेनेति, प्राणैः कंठगतैरपि ॥ ५ ॥ दुनीया तरफना
अपवादथी नित्य भीरु, दीन-अनाथनो उद्धार करवामां प्रेम,
आपणा पर करेल अन्य जनोनो उपकार जाणवो-मानवो,
उत्तम दाक्षिण्यता-आ सर्व सदाचारो कह्या छे; तथा सर्वत्र
अने सर्वनी निंदानो त्याग, उत्तम साधुजनोनी प्रशंसा, कष्ट
वखते अतिशय अदीनता अने संपत्ति अवस्थामां नम्र परिणाम,
सुअवसरे अल्प भाषण, कोइनी पण साथे विवाद-क्लेशमां
नहीं उतरवुं, स्वीकृत कार्यनुं आखिरतक पालन, तेमज कुल-
धर्मनी बराबर सेवा, खोटा खर्चा बंध करवा-नहीं करवा, देवपूजा,

गुरुसेवा, दानादि कार्योमां लक्ष्मीनो नित्य व्यय, विशिष्ट फल-
दायी कार्योमां आग्रह राखवो अने प्रमादनो त्याग करवो,
घणा लोकोमां रुढ तथा अविरुद्ध लोकव्यवहारनुं पालन करवुं,
स्वपक्ष अथवा परपक्षमां एटले स्वजाति के परजाति, स्वकुटुंब
के परकुटुंबमां सर्वत्र उचित आचारनुं पालन करवुं अने आ
लोक परलोकमां निंदनीय कार्यो प्राणो नाश पामे तो पण
करवा नहीं." आ सर्व धर्मीयोना सज्जनोना सदाचारो
शास्त्रमां कह्या छे. आ सदाचार जेमां होय ते आत्मा अने–
'गुर्वादिमतः' माता, पिता, वडिलो, राजा, अमात्य आदि
सर्वने माननीय होय ते ज पुरुष जिनमंदिर बंधावी शके
अर्थात् ते ज अहीं अधिकारी मान्यो छे. आथी ज आचार्यदेवे
'अधिकारीति' ए अंतिम पदथी आवो मनुष्य जिनभवन
बंधाववाने अधिकारी समजवो एम स्पष्ट निर्देश करे छे. अहीं
ग्रंथकार अंतमां 'इति' पदथी ध्वनित करे छे के–शास्त्रा-
ज्ञाथी परमशुद्ध अने अधिकारी आ पांच विशेषणविशिष्ट
आत्मा ज होय. आ परथी लेभागु अने केवल धनवानो जे
कांई पवित्र कार्यना हक्कदार बनी जइ लाखोना खर्चथी
जिनमंदिरादि बनाववानो लाहो लेवा तत्पर थइ जाय छे अने
उपरोक्त गुणो के शास्त्रीय आज्ञा तरफ ख्याल सरखो नथी
करता ए कोइ पण रीते योग्य नथी. उपरोक्त योग्यता प्राप्त
करी, तेने लक्ष्यमां राखी यदि जिनमंदिरो बंधावाय तो शास्त्रा-
ज्ञाना संरक्षण साथे परम कल्याणरूप इष्टफल नितान्ततया
स्वपरने प्राप्त थाय ज.

अन्य पासे जिनभवन बंधाववुं अने पोते तेना कारणो एकत्र करवा एम पहेला श्लोकमां कह्युं हतुं तो जिनभवनमां साधनभूत क्या कारणो एकत्र करवा तेनुं स्वरूप अहीं आचार्य स्पष्ट करे छे.

कारणविधानमेत-
शुद्धा भूमिर्दलं च दार्वादि ॥
भृतकानतिसंधानं,
स्वाशयवृद्धिः समासेन ॥ ६-२ ॥

मूलार्थ—जिनभवन निष्पत्तिना कारणकलापोनुं संक्षेपथी विधान आ प्रमाणे जाणवुं-शुद्ध भूमि, शुद्ध काष्ट आदि दळो, नोकर, चाकरो अने मजूरोने संतोषवा, तथा पोताना पवित्र आशयनी उत्तरोत्तर वृद्धि करवी.

"स्पष्टीकरण"

आ श्लोकथी ग्रंथकार जिनभवन बांधवामां उपयोगी अंगोनुं संक्षेपथी वर्णन करे छे, एटले के जे साधनोवडे जिन-भवनरूप कार्य बनी शके, कारणोनुं विशिष्ट भान थाय त्यार-पछी तेनी विशिष्ट शुद्धि करवाथी कार्य पण विशिष्ट शुद्ध तैयार थाय; माटे अहीं कारण विधाननो उपदेश आप्यो छे. अहींया जे जे कारणो दर्शाव्या छे ते प्रत्येकनुं स्वरूप अने तेनी शुद्धि केम साचववी ? ते तो ग्रंथकार महाराज पोते ज

आगल पर विस्तारथी दर्शावशे. आथी अहीं तो द्वाररूप टूंक ज वर्णन कर्युं अर्थात् केवल कारणोनी संख्या मात्र अहीं दर्शावी छे. जिनभवन बांधवा पहेला भविकोए जिनभवन योग्य भूमिनी शुद्धि करवी, तथा काष्ठ, पत्थर आदि पदार्थो शुद्ध निर्दोष लेवा, जिनप्रासाद बांधनार कारीगरो-मजूरोने खुशी राखवा, तेओने कोई प्रकारे ठगवा नहीं अने बंधावनारे पोतानुं चित्त उदार तथा पवित्र, निर्दोष, उज्वल विचारमय राखवुं, एटलुं ज नहीं पण उत्तरोत्तर अधिक सुंदर चित्त राखवुं.

पृथ्वीनी शुद्धि करवानुं जणाव्युं तो केवी रीते शुद्धि करवी ? अने केवी पृथ्वी जिनप्रासाद बांधवाना कार्यमां लेवी ? ते स्पष्ट करे छे.

> शुद्धा तु वास्तुविद्या-
> विहितासन्न्यायतश्च योपात्ता ॥
> न परोपतापहेतुश्च,
> सा जिनेन्द्रैः समाख्याता ॥ ६-४ ॥

मूलार्थ—वास्तुशास्त्रनी विद्याथी विहित होय अने शोभन न्यायथी जे पृथ्वी प्राप्त थइ होय तेमज जे पृथ्वी अन्यने क्लेश उपजावीने लीधी न होय ते ज पृथ्वी जिनेश्वरोए जिन-भवन माटे योग्य कही छे.

"स्पष्टीकरण"

वास्तुशास्त्रमां जे प्रकारे विधि कही छे ते प्रकारे प्रथम पृथ्वीनी शुद्धि करवी, एटले जे भूभाग पर जिनमंदिर बांधवुं होय ते स्थलमां मुडदा के अस्थिओ न होय तेम चोतरफथी तपास करी निःशल्य भूभागमां जिनमंदिर बांधवुं. आ भूभाग पण सन्न्याय प्राप्त धनथी खरीदीने लेवो अने पृथ्वीना मालीकने यथेष्टपणे संतुष्ट करवो. निदान ए के-जे पृथ्वी माटे किंचित् पण अन्यायने स्थान न मळे अने न्यायथी ज लीधी होय, तथा ते भूभागनी आसपास कोइ गृहस्थ जन रहेता होय तेओनी एक अंगुल मात्र पण जमीन जेमां दबाय नहीं, तेओने यत्किंचित् पण क्लेश, दुःख के उद्वेग थाय नहीं-आ विधिथी प्राप्त जमीन शुद्ध भूमि कहेवाय. जिनेश्वरदेवो जिनमंदिर माटे आवीज भूमि योग्य कहे छे. हेतु ए के-आवी जमीन पर जिनमंदिर बांध्युं होय तो ते कल्याणमय अने शास्त्रोक्त विधानवाळुं कहेवाय. आ परथी मंदिरना ट्रस्टियो मंदिरनी पासेनी जमीन धर्ममां जाय छे, एम मानी दबाववा अधम प्रयत्न करे छे, कोइ पण गृही मरवानी अणी पर होय त्यां कपट करी तेना कुटुंबीयोने रडता राखी तेना मकानो, मिल्कतो मंदिरमां लेवा प्रयत्न करे छे, श्रावकधर्म विरुद्ध कर्मोथी पैसा एकत्र करी जिनधन वधारवानी घेलछा राखे छे ते नितान्त शास्त्रविरुद्ध अने कर्मवर्धक छे एम स्पष्ट थाय छे. एटले आ रीति तो नितान्त अनुचित ज कहेवाय. आथी शास्त्रो उपदेशे छे के-जिन-

आज्ञा विरुद्धपणे जिनद्रव्य वधारे तो आत्मा अनन्तसंसारी थाय छे, ए वाक्य खास मननीय छे.

जिनमंदिर माटे जे जमीन जोइए तेमां आटली विधि साचववानुं शुं कारण ? तेनो हेतु ग्रंथकार खुल्लो करे छे.

शास्त्रबहुमानतः खलु,
सच्चेष्टातश्च धर्मनिष्पत्तिः ॥
परपीडात्यागेन च,
विपर्ययात्पापसिद्धिरिति ॥ ६–५ ॥

मूलार्थ—विधिदर्शक वास्तुशास्त्रनुं बहुमान करवाथी अने अन्यने पराभव न उपजाववाथी तेमज बीजाने क्लेश न उपजाववाथी निश्चयथी धर्मसिद्धि थाय, अने आथी विरुद्ध वर्तन करवाथी पापसिद्धि थाय.

" स्पष्टीकरण "

वास्तुशास्त्रमां जे विधि जिनभवन बनाववानी कही छे ते प्रमाणे अनुसरण करवाथी शास्त्रविधिनुं बहुमान सचवाय. धर्मीए शास्त्रनुं बहुमान अवश्य करवुं ए तो सामान्य नियम छे, तथाप्रकारे वर्तवाथी निर्दोष भाववर्धक जिनभवन पण तैयार थाय छे अने तेथी ज धर्मनिष्पत्ति पण सिद्ध थाय; तेमज जिनभवन आदि कार्यो साधतां प्रथम ते कार्यो करवाथी

यदि अन्यनो अभिभव थतो होय, बीजाओने दुःख थतुं होय, कांइ नुकशान थतुं होय अगर पीडा के क्लेश थता होय तो अवश्य तेनो त्याग करवो जोइए. निदान ए के—कोइने पण अभिभव के क्लेश उपजाव्या वगर अने सर्वेने संतोष पमाडी जिनभवन बंधाववुं तो ज धर्मनिष्पत्ति थाय. अन्यथा शास्त्रकार कहे छे के—जे प्रवृत्तिमां शास्त्रबहुमान न सचवाय, परनो पराभव थाय, अन्यने क्लेशो थाय तो ते पापनिष्पत्तिकारक ज गणाय. यशोविजयजी महाराज कहे छे के—जे हेतुओ धर्मसिद्धिकारक कह्या छे ते ज हेतुओ विरुद्ध वर्तन करवाथी पापकारक बने छे, कारण के जे मात्राओ शरीरनी पुष्टि करे छे ते ज मात्राओ अपथ्य करवाथी शरीरनी क्षीणता करे ए अनुभवसिद्ध छे.

उपर कह्युं एटलुं ज नहीं पण आ प्रमाणे करवाथी धर्मनिष्पत्ति थाय छे. यथा—

तत्रासन्नोऽपि जनो-
ऽसंबन्ध्यपि दानमानसत्कारैः ॥
कुशलाशयवान् कार्यो,
नियमाद् बोध्यंगमयमस्य ॥ ६—६ ॥

मूलार्थः—जिनप्रासाद बांधती वखते स्वजनादि संबंधशून्य लोको त्यां आसपास रहेता होय तेमनो पण अवश्य

अशनादिवडे मान अने सत्कारथी सन्मान करी ते लोको जैनधर्मनी प्रशंसा करनार सुंदर परिणामवाला थाय तेम करवुं, कारण के आवुं वर्तन राखवुं ते खास समकितप्राप्तिनुं अंग बने छे.

" स्पष्टीकरण "

जिनमंदिर स्व अने परने बोधिप्राप्ति अथवा तेनुं रक्षण तेमज उज्वलता करवा माटे बंधावाय छे. आ समकितनो लाभ, रक्षण अथवा उद्दीपन विगेरे पोताना कुशल परिणामो बनवाथी, अन्यने कुशळ परिणामवान् करवाथी, धर्मनी प्रशंसा करवाथी–करावबाथी थाय. जे कार्यमां कर्तानुं हृदय शुभ न होय, नजीकना लोकोनी प्रसन्नता न होय, अन्य लोकोने अनुमोदनीय न थाय ते कार्य आयंदे हितकारी अथवा लाभदायी कदापि थाय नहीं. जिनमतमां जे जे कार्यो कल्याण अने लाभदायी मान्या छे ते सर्व स्वहृदयनी प्रसन्नता अने परने अनुमोदनीयना आधारे अवलंबवाथी ज थाय. निदान ए के–हृदयनी विपुलता अने उच्चता विना जिनमतना कल्याणकारी कार्योनो लाभ थाय नहीं. अतएव भगवान् हरिभद्रसूरिजी कहे छे के–जिनमंदिर बंधावनारे केवल पृथ्वी, काष्ठोनी ज शुद्धि करी बांधनार कारीगरोने खुश करी अमे शुद्धिनुं रक्षण कर्युं एटलाथी संतोष मानवो नहीं, किन्तु जिनमंदिर बांधती वखते अने बांध्या पछी त्यां आसपास निवास करनार जे लोको होय, ते स्वजातीय अगर परजातीय एवं स्वजनादि संबंध

वगरना होय, पोताना कार्यमां मददगार न थाय तेवा होय तो पण ते सर्वेनो अशन, पान, खादिम, स्वादिम आदि पदार्थो आपीने, नमस्कार, अंजली, विनय, नम्रताथी सन्मान करीने, आसनादिथी सत्कार करीने अवश्य सत्कार करवो, तेओने खुश करवा. तेओ पण जिनमंदिर आदि कार्यो अने आपणी धर्मप्रवृत्ति देखी "अहो ! धन्य छे आ जैनधर्मने ! धन्य छे आ जैनोने ! ! के जे धर्ममां, जे लोकोमां, आटलो विवेक रह्यो छे, आटली उचितता रही छे " आ प्रमाणे प्रशंसा करे अने परिणामे सरल परिणामी थइ तेओ जैनधर्मनुं गौरव करी रागी थाय अने छेवटे धर्म पामी मार्ग पर आवे. अर्थात् बांधनारनी आ प्रवृत्तिथी अन्य लोको शुभ अध्यवसाय पामी बोधिनो लाभ करे, पोताना समकितनी शुद्धि थाय, लोको जैनधर्मनी प्रशंसा करे, अनुमोदन–अनुकरण करे, अतएव धर्म साधता थका अन्यने शुभ परिणामो करवाथी बोधिसाधननुं आ एक अगत्यनुं अंग छे.

जिनमंदिरमां पत्थर आदि जे जोइए तेनी शुद्धि केम करवी ? तेनो उपदेश ग्रंथकर्ता आ प्रमाणे करे छे.

> दलमिष्टकादि तदपि च,
>
> शुद्धं तत्कारिवर्गतः क्रीतम् ॥
>
> उचितक्रयेण यत्स्यादा-
>
> नीतं चैव विधिना तु ॥ ६–७ ॥

मूलार्थः—दल एटले इंट, पाषाण, चूनो विगेरे ते पण शुद्ध, अर्थात् तेने उपजावनार पासेथी उचित मूल्य आपी खरीद्या होय अने भार वहन करनारने उचित मूल्य आपी तेओने अधिक खेद–क्लेश न थाय तेवी रीते लावेल होय ते ज जिनमंदिर करवामां उपयोगी थाय.

" स्पष्टीकरण "

मंदिर बंधाववामां जे जे पदार्थो जोइए ते ते केवा लेवा ? तेनो प्रकार ग्रंथकर्ता जणावे छे. मंदिर माटे चूनो, इंट, पत्थर के लाकडा विगेरे जे जोइए ते तेने बनाववावाला लोको पासेथी उचित मूल्य आपी एटले लोक व्यवहारमां जे पैसा ठरेला होय तेटला पैसा आपी लेवा, परंतु धर्मादानुं काम छे माटे भावमां खेंचताण करी, ओछा–वत्ता करी अगर आडुं-अवळुं समजावी लेवा नहीं, तेम ज छळ, प्रपंच, विश्वासघात करी लेवा नहीं. तथा आ पदार्थो पण वेचनारे पोताना व्यापार अर्थे तैयार करेल होय तेवा ज लेवा, परंतु खास मंदिर माटे भट्ठीयो करी, खोदावी, आरंभादि करी लेवा उचित नथी. ए ज वात यशोविजयजी स्वकृत टीकामां कहे छे—" स्वप्रयोजनसिद्ध्यर्थमेवेष्टकादिकरणशीलानां पुरुषाणां " एवी ज रीते आ पदार्थो ज्यांथी लाववा होय त्यांथी जे लोको गाडामां अथवा जानवर उपर लादीने लावे ते लोकोने पण बराबर भाडुं आपी, जानवर अथवा मजूरने अधिक दुःख न थाय, लोको निंदा न करे, व्यवहारमां अनु-

चित न देखाय तेवी रीते मंगाववा. आ रीतना ज पदार्थों मंदिरना कार्यमां उपयोगी थाय, आथी उलटी रीते करवाथी अविधि लागे, कुशलाशयनी हानी थाय तेम ज लोकोमां जैनधर्मनी निंदा थाय.

यदि मंदिर अर्थे काष्ठनी आवश्यकता होय तो ते केवा लेवा ? ए दर्शावे छे.

दार्वपि च शुद्धमिह
यत्नानीतं देवताद्युपवनादेः ॥
प्रगुणं सारवदभिनव-
मुच्चैर्ग्रन्थ्यादिरहितं च ॥ ६–८ ॥

मूलार्थः—काष्ठो पण अहीं शुद्ध प्रयत्नपूर्वक देवता-मनुष्य संबंधी उपवनमांथी सरल, सारभूत, नवीन अने सर्वथा गांठ आदि दोष विनाना आवेला होय ते ज मंदिरना उपयोगमां लेवा.

" स्पष्टीकरण "

मंदिर माटे जो लाकडानी आवश्यकता होय तो ते पण न्यायथी अने सम्यक् प्रयत्नथी लाववा. आ पण जे वनमां देवता अधिष्ठित होय, मनुष्य अगर जानवरनी मालिकीनुं होय, तेओने संतोषी, पूजा आदि अर्पी ते वनमांथी लेवा अथवा वननी नजीकना कोइ सुंदर वृक्षो होय तेमांथी लेवा; परंतु आ

काष्ठो सरल, वक्रता विनाना, गर्भवाला प्रधान अने नवा लेवा. जीर्ण थया न होय, कीडाओ पड्या न होय, तेमज जेमां गांठ के अन्य दूषणो जरा पण लागेल न होय तेवा ज काष्ठो मंदिरना कार्यमां लेवा, जेथी मंदिर दीर्घकाल पर्यंत स्थिर रहे, कोइ पण मिथ्यात्वी देवो विगेरे उपद्रव न करे. अहीं पण प्रथम कहेल वात अवश्य ध्यानमां राखवी, एटले के–व्यापारीओ पोताना व्यापार अर्थे लाकडा लाव्या होय तेनी पासेथी उचित मूल्य आपी, भारवाहकोने उचित भाडुं आपी संतुष्ट करी लाववा; किन्तु मंदिरना माटे वनकर्म करवुं शास्त्रो उचित मानता नथी.

विधिपूर्वक पत्थर, काष्ठो विगेरे लाववा एम कही गया. अहीं ते पदार्थो लाववानी विधि शुं छे ते जणावे छे.

सर्वत्र शकुनपूर्वं,
ग्रहणादावत्र वर्त्तितव्यमिति ॥
पूर्णकलशादिरूप-
श्चित्तोत्साहानुगः शकुनः ॥ ६–९ ॥

मूलार्थः—पत्थर, इंट, काष्ठ आदि मंदिर माटे शकुन देखीने लेवा तथा लाववा. अहीं बाह्य शकुनो जलभृतकुंभ लइने कोइ कन्या विगेरे सामे आवे ते विगेरे अने आभ्यन्तर शकुनो चित्तनी प्रसन्नता, गुरुआज्ञा आदि जाणवा.

" स्पष्टीकरण "

प्रथम मंदिर अर्थे जे पदार्थो जोइए ते विधिपूर्वक लेवा एम जणावी गया, तेथी अहीं विधि दर्शावे छे. कार्यनी प्रशस्तता-अप्रशस्ततानुं अनुमान शकूनो अने मननी स्थिति परथी करी शकाय एवुं सामुद्रिकशास्त्रो कहे छे. आथी ज प्रशस्तकार्यना आरंभमां पहेला शकूनो देखवा, मंगल आचरवुं. शुभ दिन, घडी, ग्रहो, चंद्र आदि तपासवानुं महर्षिओ कहे छे. आना मुख्य बे कारणो छे. एक तो हृदयनी प्रसन्नता वधे अने बीजुं अनिष्ट संबंधी शंका दूर थाय. अतएव अहीं पत्थर, चूनो, इंट, काष्ठ विगेरे खरीदवा जता शुभ शकूनो देखवा तेमज शकूनो देखी लाववा. अहीं शास्त्रकर्ता बाह्य अने आभ्यंतर एम बे प्रकारना शकूनो जणावे छे. जलभृतकुंभ विगेरे बाह्य शकूनो सामुद्रिकशास्त्रमां आ प्रमाणे कह्यां छे-"कन्या गोपूर्णकुंभो दधिमधुकुसुमं पावको दीप्यमानो, यानं वा गोप्रयुक्तं रथवरतुरगो छत्रभद्रातिभद्रं। उत्खाता चैव भूमिर्जलचरमिथुनं सिद्धमन्नं मुनिर्वा वेश्यास्त्री-मद्यमांसं हितमपि वचनं मंगलं प्रस्थितानाम्" ॥ १ ॥ " कन्या, जल अथवा दूध भरेलो कुंभ, दहींनुं पात्र, मधुनुं पात्र, फुल भरेली छाबडी, बळतो जाज्वल्यमान अग्नि, बळद जोडेलुं वाहन, घोडा सहित रथगाडी, अतिभद्र खुल्लुं छत्र, खोदेली माटी, जलचरनुं युग्म, पकावेलुं अनाज, मुनि, वेश्या, मदिरा, मांस अने हितकारी वचन-आटला पदार्थो

चालती वखते समीप मळे तो मंगळ करनारा थाय." आ सर्व बाह्य शकूनो कह्यां छे. मंदिरनो सामान लेवा जतां-लावतां विवेकीए आ शकूनो देखी प्रयाण करवुं; तेमज हृदयनी प्रसन्नता, गुरुआज्ञा ए आभ्यंतर शकूनो जाणवां. उत्तम सामुद्रिको कहे छे के-यदि बाह्य शकूनो न मळे अने हृदयनो एकाएक तीव्र उत्साह जणाय, गुरुओनी एकाएक आज्ञा थाय तो बाह्य शकूननो आधार राख्या विना पण प्रयाण करवुं; कारण के बाह्य शकूनो करतां आभ्यन्तर शकूनो बळवत्तर गण्या छे. एटले आभ्यंतर शकूनो न मळे अने बाह्य शकून घणा सुंदर मळे तो पण ते इष्ट फळ आपी शके नहीं. आ विधि मंदिरनो सामान लाववा माटे शास्त्रोमां कहेल छे.

मंदिर बांधनार कारीगरोने ठगवा नहीं परंतु तेओने संतोषवा, एम जणाव्युं हतुं तो तेओ साथे मंदिर बंधावनारे केम वर्तवुं ? ते दर्शावे छे.

> भृतका अपि कर्त्तव्या य.
>
> इह विशिष्टाः स्वभावतः केचित् ॥
>
> यूयमपि गोष्टिका इह,
>
> वचनेन सुखं तु ते स्थाप्याः ॥९-१०॥

मूलार्थ—कारीगर नोकरोने पण अहीं जिनभवनरूप कार्यमां विशिष्ट स्वभाववाळा बनाववा, अथवा केटलाको स्व-

भावथी ज उत्तम स्वभाववाळा होय तेओने पण तमे लोको आ जिनमंदिररूप कार्यमां मारा सहायको छो, तमारी महेरबानी-वडे आ अमारुं कार्य घणुं ज सुंदर थशे इत्यादि वचनो कही ते लोकोने सुखपूर्वक संतोषी राखवा.

" स्पष्टीकरण "

मंदिर बांधनार कारीगरोनुं मन प्रसन्न होय, तेओ राजी होय तो मंदिरनुं कार्य सुंदर अने शीघ्रताथी निर्दोषपणे पूर्ण थाय; माटे मंदिर बंधावनारे कारीगरोने खुश राखवा, अनेक शिखामणो आपी तेओना अंतरमां जैन धर्मनो प्रेम उपजाववो, प्रामाणिकता अने नीतिनो ख्याल कराववो, धर्मनुं कार्य छे माटे बराबर ख्याल राखी उत्तम दानतथी करवुं तेम मिष्ट वचनथी प्रेरणा करवी. टूंकमां ते लोको विशिष्ट सुंदर स्वभाववान् विचारवान् थाय तेम करवुं, अथवा केटलाक लोको स्वभावथी ज उत्तम प्रकृतिवाळा अने धर्मी होय तेओने पण " तमे लोको मारा सहायको छो, आ जिनमंदिर बांधवामां तमारी मने पूरी सहायता छे, आ कार्य पूर्ण थये तमने संतोषीशुं अने घणुं सारुं पारितोषिक आपीशुं." आ प्रमाणे संतोषवा. मंदिर उत्साहथी बांधे अने शीघ्र पूर्ण करे तेम तेओ साथे वर्तवुं.

' कारीगरो ' धर्ममित्र होवाथी तेओने ठगवा नहीं, एवो उपदेश आपे छे.

अतिसंधानं चैषां,
कर्त्तव्यं न खलु धर्ममित्राणां ॥
न व्याजादिह धर्मो,
भवति तु शुद्धाशयादेव ॥ ६-११ ॥

मूलार्थ—मंदिर बांधनार कारीगरो पण निश्चयथी धर्म-मित्रो होवाथी तेओने कदापि ठगवा नहीं, कारण के प्रपंचथी आ मंदिर बांधवामां धर्म थतो नथी किन्तु आशय पवित्र राखवाथी ज धर्मप्राप्ति थाय छे.

" स्पष्टीकरण "

ग्रंथकर्ता धर्मनुं लक्षण शरुआतमां ज ' अंतःकरणनी पवित्रता ' रूप जणावी गया छे. एटले जैन सिद्धान्तनिर्दिष्ट उत्तम धर्मक्रियानी प्राप्ति आशयनी पवित्रता होय तो ज थाय, अन्यथा आशयनी पवित्रता विना दुष्ट अंतःकरणपूर्वक क्रोडो वर्ष पर्यंत केटलीए धर्मक्रियानुं आचरण करे तो पण तेथी कष्ट-फळ सिवाय अन्य फल मलतुं नथी. अतएव ग्रंथकर्ता आ श्लोकमां दर्शावे छे के ' भवति तु शुद्धाशयादेव ' पवित्र आशय राखवाथी ज धर्म थाय. अहीं ग्रंथकारे अन्तमां ' एव ' कार आपी निश्चय जणाव्यो छे अर्थात् आ विना धर्म न ज थाय, माटे मंदिर बंधावनारे कृपणता करी कारीगरोने ठरावेल पैसा आपवामां प्रपंच के छळ करवो नहीं, अथवा पैसाना बदले पोतानी दुकान परथी कांइ माल आपी तेमांथी नफो खावानी

इच्छा करवी नहीं, माल ओछो-वत्तो आपवो नहीं; किन्तु जे पैसा ठराव्या होय ते ज विना प्रपंचे तेओने संतोष थाय तेवी रीते आपवा; कारण के ग्रंथकर्ता कहे छे के-'न व्याजादिह धर्मो' कारीगरो साथे कपट-छळ-प्रपंच करवाथी धर्म थतो नथी पण उलटो अधर्म वधे छे.

मंदिर बंधावनारे पोताना शुद्ध आशयनी वृद्धि थाय ते प्रमाणे वर्तवुं तो अहीं मंदिर बंधावनारे केवा पवित्र आशयथी मंदिर बंधाववुं तेनो उल्लेख ग्रंथकर्ता दर्शावे छे.

देवोद्देशेनैतद्गृहिणां,
कर्तव्यमित्यलं शुद्धः ॥
अनिदानः खलु भावः,
स्वाशय इति गीयते तज्ज्ञैः ॥६-१२॥

मूलार्थ—गृहस्थे जिनभक्तिवडे जिनमंदिर बंधाववुं, पण अमुक लालसाथी अथवा पुत्र, धन आदिना लोभवडे बंधाववुं नहीं. उपरोक्त धारणा ते ज पवित्र आशय कहेवाय. आ आशयने पवित्र आशयवेत्ताओ स्वाशय कहे छे.

"स्पष्टीकरण"

निदान वगरनी ज धर्मक्रियाओ इष्ट फल आपे एवुं जैन शास्त्रो कहे छे. अतएव धर्मज्ञे धर्मक्रिया वर्तनमां कोइ पण जातनुं नियाणुं करवुं नहीं. नियाणावाळी धर्मक्रिया पापानुबंधी पुण्य-

बंध करावी दुर्गतिमां आत्माने फेंके छे. ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीए पूर्वजन्ममां परम शुद्ध मुनिपणुं पाळ्युं. चक्रवर्तीनी पट्टराज्ञीनी वेणीनो वंदना करता मुनिने स्पर्श थयो. सुकोमल अने परम सुंदर केशकलापना स्पर्शे मुनिनुं चित्त चकडोळे चडाव्युं, (मुनिनो आत्मा कामपरवश बन्यो.) ध्यान अने धर्मभावनाथी मुनिनो आत्मा भ्रष्ट थयो. ते कामिनीना संयोगमां चित्त चोंटी गयुं. ए ज ध्यान, ए ज विचारो रोमेरोम व्याप्त थया. परिणामे (पोताना पवित्र कर्मना फल तरीके) आवी कामिनी जन्मांतरमां पामवा मुनिए स्वहृदयमां गांठ वांधी, तन्मय विचारोमां मुनिनो देहांत थयो, ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ती थया, पूर्व जन्मना बन्धु मुनिए धर्म पमाडवा अनेक प्रयत्नो कर्या छतां ते सर्वे व्यर्थ थया अने ते आत्मा नरकनो अतिथि बन्यो. आ प्रमाणे प्रखर तप के चारित्र पाळवा छतां नियाणु करवाथी ते सर्व धूळमां मळी जाय छे, माटे अहीं शास्त्रकार कहे छे के—जिनमंदिर बंधावनारे जिनमंदिर, जिनदेवो पर एकान्त प्रेम, श्रद्धा अने भक्तिवडे बंधाववुं. अर्थात् आ क्षणिक जींदगीमां परम कल्याणनुं स्थान, अनन्त पापो नाश करवानुं खरुं साधन, संसार तरवानुं मुख्य यंत्र, आत्मशुद्धिनुं कारण तथा पापोपार्जित धन व्यय करवानो मुख्य मार्ग अने अनन्त पुण्य प्रवाहनी नदी आ जिनमंदिर ज छे, ए प्रमाणेनी भावनाथी जिनमंदिर बंधाववुं; परंतु जिनमंदिर संततीनो लाभ, वंशनी वृद्धि, धननी प्राप्ति, आरोग्यता, यश, कीर्त्ति, प्रतिष्ठा या लोभथी आ आशयोथी बंधाववुं नहीं; कारण के आ आशयो धारी

जिनमंदिर बंधाव्युं अने धारेली इच्छाओ अंतरायोदयथी पार न पडे तो मंदिर पर, धर्म पर अने तीर्थंकर देव पर अनादर—अश्रद्धा उपजे. यदि धारणाओ सिद्ध थाय तो आत्मा मोहक पदार्थना अधिक मोहमां घसडाय, तेमज आ विचारो नियाणारूप होवाथी मलिन कह्या छे. एटले आम करवाथी जन्मांतरमां धर्मनी दुर्लभता थाय. अतएव भगवान् हरिभद्रसूरिजी कहे छे के उपरोक्त लोभ विनानो अने प्रथम कहेला भावमय विचार ते 'अनिदानः' अनिदान भाव कहेवाय तथा आ ज भाव 'अलं शुद्धः' अतिशय शुद्ध जाणवो. आथी आवा विचारोने पवित्र आशयवेत्ताओ 'स्वाशय' सुष्ठु आशय कहे छे. मंदिर बंधावनारनुं आ आशयो परम कल्याण करी शके छे, तथा अन्यने अनुमोदनीय बने छे.

उपर दर्शित सुष्ठु आशयनी वृद्धि क्रमे क्रमे मंदिर बंधाव्या पछी बंधावनारे केवी रीते करवी, अने मंदिर बंधाव्या पछी बंधावनारे केवी केवी भावनाओ भाववी ? ते वात ग्रंथकर्ता दर्शावे छे.

प्रतिदिवसमस्य वृद्धिः,
कृताकृतप्रत्युपेक्षणविधानात् ॥
एवमिदं क्रियमाणं,
शस्तमिह निदर्शितं समये ॥६–१३॥

मूलार्थ—प्रथम जणावेला आशयनी 'मैं आ जीर्ण-

गीमां मंदिर बंधाववारूप कार्य कर्युं, अने अमुक तीर्थयात्रादि कार्यों कर्यां नथी'–आ प्रमाणे विचारो करी अने ते विचारोने वर्तनमां मूकी वृद्धि करवा. आ रीते करवाथी जैनशास्त्रमां आ जिनमंदिररूप कार्य परमप्रशस्त–प्रधान कह्युं छे.

"स्पष्टीकरण"

प्रथम तो मंदिर बंधावनारे उपर जे भाव दर्शाव्यो तेने प्राप्त करी तेनुं संरक्षण करवुं. त्यारबाद आ भावनी वृद्धि केम थाय तेनो प्रकार अहीं दर्शावे छे. उपरोक्त भावनी वृद्धि करेला कार्यनुं अवलोकन करी 'अहो में मारा आ क्षणिक जीवनमां एक मंदिर बंधावी लक्ष्मी चरितार्थ करी' आ प्रमाणे अनुमोदना करी–करवी, अने 'अद्यापि मंदिरना अंगभूत अन्य कार्यों अथवा तीर्थयात्रा, संघ, उपाश्रय आदि कार्यों कर्यां नथी पण भविष्यमां मारे अवश्य करवा छे.' आ रीते नहीं करेला कार्योंनो मनोरथ–संकल्प करी भावनी वृद्धि करवी परंतु आ विचारो करी खाली देखाव करवा नहीं, किन्तु सुअवसरे तेने प्रवृत्तिमां मूकी पवित्र आशयवृद्धि करवी ए ज भाव ग्रंथकर्ता 'विधानात्' ए पदथी दर्शावे छे. अहीं टीकाकार यशोभद्रसूरिजी भावनी वृद्धिनो उल्लेख करे छे. "प्रशान्ताः सुगतिं यान्ति, संयताः स्वर्गगामिनः। शांतायतनकर्तॄणां, सदा पुण्यं प्रवर्द्धते ॥ १ ॥" "प्रकृतिशान्त आत्माओ

सद्गति पामे छे अने इंद्रियोनुं दमन करनार स्वर्गे जाय छे; ज्यारे शान्तिमय देवमंदिर, उपाश्रय आदि बंधावनारने नित्य पुण्यनी वृद्धि थाय छे." आवा विचारोपूर्वक अथवा आवा विचारो करवाथी अहीं जैनशास्त्रमां आ जिनमंदिररूप पवित्र कार्य शस्तः–प्रधान कह्युं छे–अर्थात् आ कार्य करवाथी उत्तरोत्तर पुण्य नदीनो प्रवाह वह्या करे छे. अथवा भाववृद्धिनुं स्वरूप आ प्रमाणे कह्युं छे.–" एतद् दृष्ट्वार्हतं चैत्यमनेके सुगतिं गताः । यास्यन्ति बहवश्चान्ये ध्याननिर्धूतकल्मषाः ॥ १ ॥ यात्रास्नात्रादिकर्मेह भूतमन्यच्च भावि यत् । तत्सर्वं श्रेयसां बीजं ममार्हच्चैत्यनिर्मितौ ॥ २ ॥ साधु जातो विधिरयं कार्योऽतः परमेष मे । अर्हच्चैत्येष्विति ध्यानं श्राद्धस्य शुभवृद्धये ॥३॥ अहंपूर्विकया भक्तिं ये च कुर्वन्ति यात्रिकाः । तेऽपि प्रवर्द्धयन्त्येव भावं श्रद्धानशालिनाम् " ॥४॥ " आ जिनमंदिरना दर्शन करी अनेक लोको सद्गति पाम्या, अने बीजाओ पण आ जिनमंदिरना ध्यान प्रभावथी पापकर्मनो क्षय करी सद्गतिगामी थशे. आ जिनमंदिरमां पूर्वकाले जिनयात्रा, जिनाभिषेक, जिनपूजा, जिनदर्शन विगेरे पवित्र कार्यो बन्या, तथा भविष्यमां पण आ पवित्र कार्यो थशे. आ सर्व कल्याणनुं मुख्य बीज में जिनमंदिर बंधाव्युं ते ज छे. खरेखर आ विधान सुंदर छे. फरी पण आवुं काम भविष्यमां मारे करवुं उचित छे. आ प्रमाणे श्रावकने अर्हच्चैत्य

शुभ ध्याननी वृद्धि करनार थाय. यात्रिको पण जिनमंदिरमां आवी 'एक कहे हुं पहेली पूजा करुं, बीजो कहे हुं पहेलो अभिषेक करुं, त्रीजो कहे हुं पहेलो आरती उतारुं, चोथो कहे हुं प्रथम अंगरचना करुं.' आ प्रमाणे उत्साह भक्तिथी अहंपूर्विकावडे जिनमंदिर बंधावनार श्रद्धालु जनना भावमां वधारो करे छे." ए रीते जिनमंदिर बंधावनार विचारो करी पोताना भावोनी वृद्धि करे, तथा आ सर्व विचारो जिनमंदिर बंधावनारना विचारो वधारवामां सहायक छे एम शास्त्रकर्ता स्पष्ट जणावे छे अने मोक्षार्थीए तेम करवुं पोताना आत्मा माटे उचित छे.

उपर जणावेल विचारो ज प्रधान कह्या तेनो शुं हेतु ? ए भाव स्पष्ट करे छे.

एतदिह भावयज्ञः,
सद्गृहिणो जन्मफलमिदं परमं ॥
अभ्युदयाव्युच्छित्त्या,
नियमादपवर्गबीजमिति ॥ ६-१४ ॥

मूलार्थ—आ जिनमंदिर बंधाववुं ते ज गृहस्थोने अंगे भावपूजा अने पोताना जन्मनुं प्रकृष्ट फल कह्युं छे. हेतु ए के-आथी अभ्युदय एटले कल्याणनी परंपरानो कदापि नाश

थतो नथी अने परिणामे निश्चयथी मोक्षरूपी वृक्षनुं बीजभूत जिनमंदिररूप कार्य बने छे.

" स्पष्टीकरण "

शास्त्रमां द्रव्यपूजा अने भावपूजा एम बे प्रकारे पूजा कही छे. तेमां जळ, चंदन, पुष्प, नैवेद्य आदिथी पूजा, अंगरचना, मंदिर बनाववुं, प्रतिमा भरावची, अलंकारो चडाववा, उत्सवो करवा, रथयात्रा विगेरे सर्व द्रव्यपूजा कही छे. आ पूजा करवानो अधिकार गृहस्थने छे, परंतु सर्वत्यागीने अधिकार नथी; कारण के तेमां आरंभ छे. सर्वत्यागी आरंभना त्यागी छे एटले तेओने आ कार्यमां आरंभथी त्रास थाय अने प्रतिज्ञानो भंग थाय. गृहस्थ आरंभना त्यागी नथी. कुटुंबादि अर्थे अने जीवन व्यवहार अर्थे स्नान, पुष्प आदिनो आरंभ करे छे, एटले तेओने द्रव्यपूजा करवानो आदेश आवश्यक छे, ज्यारे भावपूजानो अधिकार साधुओने छे ए ज वातनुं अनुमोदन उपाध्यायजी ज्ञानसारमां करे छे:—" द्रव्यपूजोचिता-भेदोपासना गृहमेधिनाम् । भावपूजा तु साधूनाम-भेदोपासनात्मिका " ॥ १ ॥ अतएव अहीं हरिभद्रसूरिजी जिनमंदिर माटे भार मेलीने कहे छे के-" एतादिह भावयज्ञः " आ जिनमंदिर बंधाववुं ते अहीं भावयज्ञ-भावपूजा कही छे. यद्यपि जिनमंदिर ए द्रव्यपूजांतर्गत छे तो पण अहीं यज् धातु परथी यज्ञ शब्द बन्यो छे एटले यज् धातु देवपूजा अर्थनो वाचक छे; अने द्रव्यस्तव पण शास्त्रदर्शित

विधि, शुद्धि तथा जिनाज्ञापालनपूर्वक करवाथी ते भावपूजा-गर्भित कहेवाय छे. आथी ज अहीं द्रव्यपूजारूप जिनमंदिरने शास्त्रकर्ताए भावयज्ञ—भावपूजामां गण्युं. निदान ए के-जिनमंदिर भावशुद्धिनुं साधन होवाथी अने भावपूजानुं अंग होवाथी कार्यमां कारणनो आरोप करी तेने भावपूजा मानवामां कांइ विरोध देखातो नथी. गृहस्थने आ कार्यनो अधिकार होवाथी गृहस्थ माटे पोतानी जींदगीनुं मुख्य फल—परमफल शास्त्रकारो जिनमंदिर बंधाववुं ते जणावे छे; कारण के आ जन्मोपार्जित धननो आवा मार्गोमां व्यय करवा सिवाय बीजुं कांई पण सार-भूत साधन नथी. एटलुं नहीं परंतु गृहस्थ आ कार्य करवाथी, तुच्छ धननो आ मार्गोमां व्यय करवाथी अभ्युदय एटले कल्याण तेनी परंपरा पामे छे अथवा अभ्युदय एटले स्वर्गनी विपुल संपत्ति जन्मांतरमां प्राप्त करे छे ने छेवटे निश्चयथी मोक्ष पण पामे छे. आथी आ जिनमंदिररूप कार्यने अपवर्गनुं बीजभूत गण्युं. बीज वाव्या पछी तेना हजारो फलो अने धास आपे छे तेम आ मंदिर बंधाववारूप कार्य पण परिणामे ऐहलौकिक राज्यादि पारलौकिक स्वर्गसंपत्ति आपी मोक्ष-दाता बने छे; माटे तेने बीज तुल्य शास्त्रकर्ताए मान्युं.

आ प्रमाणे " जिनभवन " नी शुद्धिरूप विधि अहीं विस्तारथी दर्शावी. हवे आ संबंधमां विशेष वक्तव्य शास्त्र-कर्ता जणावे छे.

देयं तु न साधुभ्यस्तिष्ठंति,
यथा च ते तथा कार्यम् ॥
अक्षयनीव्या ह्येवं,
ज्ञेयमिदं वंशतरकांडम् ॥ ६-१५ ॥

मूलार्थ—आ रीते मंदिर बंधावी साधुओने अर्पण न करवुं किन्तु साधुओ उपदेशादि माटे त्यां रहे तेवी व्यवस्था बहारना भागमां करवी, कारण के ए प्रमाणे करवाथी अनेक लोको त्यां आवे एटले आ जिनमंदिर पुण्यप्रवाह माटे, अक्षयनीवि बने, तथा संसारसमुद्रथी संपूर्ण समाजना वंशनां उद्धार करनार प्रवहण समान थाय.

" स्पष्टीकरण "

आ रीते विधिशुद्ध मंदिर गृहस्थे बंधावी तेनुं रक्षण विगेरे पोते ज करवुं अथवा मंदिरनी योग्य व्यवस्था सारुं अमुक रकम आवकनुं साधन निकाळी अमुक धर्मी गृहस्थोने तेनी सारसंभाल माटे सोंपवुं एटले श्रीसंघने सुप्रत करवुं; परंतु साधुओने-मुनियोने सोंपवुं नहीं एटले मंदिरनो वहीवट मुनिओने तावे करवो नहीं. अहीं ग्रंथकार हरिभद्रसूरिजी 'मुनियोने सोंपवुं नहीं' जे आ प्रमाणे उपदेश करे छे तेमां खास हेतु छे. हेतु ए के-ते काळे चैत्यवासीओए एवो उपदेश शरु कर्यो हतो के गृहस्थे मंदिर बंधावी साधुओने तावे करवुं,

कारण के गृहस्थी जंजाली अने उपाधिवाळा होय एटले तेओथी बरावर संभाळ थाय नहीं, आशातनाओ टळे नहीं, साधुओ तेनुं उचित रक्षण करे, आशातनाओ दूर करे, त्यां निवास करे, मंदिरे आवनारने उपदेश आपे, जेथी धर्मनुं पण योग्य रक्षण थाय. आ उपदेशथी गृहस्थो मंदिर बंधावी चैत्य-वासी मुनियोने सोंपता हता. चैत्यवासीओ त्यां ज रहेता हता. मंदिरना मालिक बनी मंदिरना धननुं भक्षण करता हता. परि-णामे तेओ अने गृहस्थो धर्मभ्रष्ट थइ पतित थतां. आ चैत्य-वासीओ हरिभद्रसूरिजीना समयमां बहु जोरमां वध्या न हता तो पण तेओनो प्रचार थवा लाग्यो हतो. तेओना उपदेशनी असर केटलाक लोको पर थती हती. आ वात संबोधप्रक-रण ग्रंथ परथी जोइ शकाय छे, परंतु आ चैत्यवासीओनुं जोर त्यारपछी घणुं ज वधी गयुं. जे पछी बुद्धिसागरसूरि अने जिनेश्वरसूरिए चैत्यवासीओना वळने अटकाव्युं यावत् जिनवल्लभगणिए पण तोडवानो प्रखर प्रयत्न कर्यो. चैत्य-वासीओनी तत्संबंधी मान्यतानुं स्वरूप संघपट्टकमां जिन-वल्लभगणिजीए घणा विस्तारथी कह्युं छे.

अतएव आचार्य कहे छे के मंदिरना जीर्णोद्धार, व्यवस्था, रक्षण आदि कार्यो गृहस्थे करवा पण मुनिए करवा नहीं. जो के शास्त्रमां मंदिरना सर्व कार्यो यावत् धनरक्षण, संवर्द्धन, ग्रामक्षेत्र आदि वहीवट करवानुं मुनिने आज्ञा आपी छे, परंतु आज्ञा अपवाद मार्गाश्रित होवाथी ज्यारे गृहस्थो धर्मविमुख

बन्या होय, आपसना क्लेशने लीधे मंदिरनी एकांत उपेक्षा करता होय, अनेकधा विविध उपदेश आपवा छतां मानता ज न होय, आसपासनो कोइ धर्मी सारसंभाल के आशातना दूर करतो न होय, सर्वथा मंदिर, प्रतिमा, तेनुं धन विनाश पामतुं होय, आशातना घणी ज थती होय, कोइ सेवक पण न मलतो होय, तो ज आचारनिष्ठ गीतार्थ परम श्रद्धालु मुनि महात्मा आ कार्य करी शके तेओना माटे ज आ अधिकार छे, कारण के आवा मुनियो ज्यां सुधी उचित वहीवट करनार न मळे त्यां सुधी उपरोक्त कार्य अलिप्त मनथी बधुं करी शके अने उचित वहीवटकर्ता प्राप्त थये तुरत ज तेने स्वाधीन करे. आथी ज आचार्ये मुनियोनो निषेध करी गृहस्थने वहीवट करवानो उपदेश आप्यो.

तथापि ते मुनियो आवीने धर्मोपदेश माटे त्यां निवास करे, बाल, वृद्ध, ग्लान मुनियो त्यां स्थिति करे, आथी गृहस्थे मंदिरनी बहार एटले नजीकमां आधाकर्म दोष विनानुं एक स्थान अवश्य तैयार करवुं जेथी मुनियो त्यां स्थिति करी धर्मोपदेशादि करी शके. अहीं उपाध्यायजी टीकामां 'बहिर्मंडपादौ' ए पदथी मंदिरनी बहार मंडपमां व्याख्यानादि माटे स्थान करवानुं जणावे छे. आनुं कारण एक ज के मंदिरे दर्शन-पूजन माटे जे लोको आवे ते लोको दर्शन-पूजन करी तुरतज व्याख्यान अने मुनिदर्शननो लाभ पामी शके. आवा व्याख्यान स्थानो मेवाड, मालवा के मारवाडना जुना

मंदिरोमां घणे स्थळे देखवामां आवे छे. बीजुं कारण ए पण जणाय छे के ते समये बादशाही जुल्मो थता हता, एटले धर्मव्यवहारो बहु ज गुप्तपणे रखाता हता. मुसलमानी अत्याचारोना लीधे स्त्रीओ पडदामां ज रहेती हती अने वधारे वखत इतर इतर स्थानोमां जइ शकती नहीं, एटले मंदिरो अने व्याख्यान स्थळो साथे साथे राखी तेने घणा ज गुप्त स्थळमां राखवानो प्रचार हशे. आ स्थितिनुं भान अत्यारे पण आपणे पूर्वना मंदिरो देखी अनुमान करी शकीए छीए. गमे तेम हो, परन्तु मंदिरनी साथमां ज व्याख्यान के मुनि-निवासना स्थानो करवाथी वर्तमानमां तो आशातना अने अन्य अनर्थनुं कारण थाय छे, तेमज आचार्यनो कांइ एवो मत नथी के मंदिरथी अलग दूर व्याख्यान अगर मुनि-निवासनुं स्थान न करवुं. ए तो गृहस्थनी सरलतानो विषय छे. तेमज ते काळे मुनियो कदाचित् ज शहेरमां आवता हता अने आवी दर्शन व्याख्यानादि करी चाल्या जता हता. कोइ बाल, ग्लान के वृद्ध मुनियो पण कारणवशात् अमुक समय रहेता एटले तेओ माटे ते स्थान व्याघात करनार न गणाय, तथा मूळकर्ता भगवान् हरिभद्रसूरिजी तो एटलुं ज कहे छे के— 'तिष्ठंति यथा च ते तथा कार्यं' मुनियो आवीने स्थिति करे तेम मंदिर बंधाववुं अर्थात् आशातना न लागे, बीजा दोषो उद्भवे नहीं ते अवश्य ध्यानमां राखवुं. साधु योग्य स्थान करवानुं बीजुं कारण ए छे के जो तेवुं स्थान न होय तो मुनियो आवे नहीं अने तेम बनवाथी धर्मोपदेश मळे

नहीं ने अंते स्वकुटुंब, स्वजाति धर्महीन थाय, एटलुं ज नहीं पण श्रावके ज्यां जिनमंदिर होय, ज्यां मुनियोनुं आवागमन होय, ज्यां अन्य समानधर्मीनो संयोग होय त्यां ज निवास करवो, ए ज वात शास्त्रकार दर्शावे छे. " निवेसज्ज तत्थ सड्ढो साहूणं जत्थ होइ संपाओ। चेइयघराइ जंमिय तयन्न साहम्मिया चेव " ॥ १ ॥ फरी आ जिनमंदिर श्रावके ए प्रमाणे करवुं के अक्षयनीवि बने अर्थात् मंदिर सर्वने आधारभूत होवाथी दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि गुणनी वृद्धिकारक होवाथी, जेम नीवि एटले मूलधन तेनुं रक्षण करवाथी, व्याजे फेरववाथी ते कायम अक्षय रहे छे तेम मंदि-रनुं रक्षण करवाथी, उचित देखरेख राखवाथी ते पण अक्षयनीवि जेवुं थाय, एटले उत्तरोत्तर लाभनुं ज कारण थाय. आ प्रमाणे कर-वाथी परंपराए जीर्णोद्धारादि कार्यो कराववाथी बनावनारने अने अन्यने उपकारभूत थइ आखा कुटुंबने तरवानुं साधन बने छे. पर-मार्थ ए के–जिनमंदिर बंधाव्या पछी, तेनुं रक्षण कर्या पछी, भविष्यमां थनारी पोतानी प्रजा अने कुटुंबीओने धर्मप्राप्तिनुं स्थान बने छे, तेमज आ मंदिर अमारा पूर्वजोए बंधाव्युं छे माटे आनो जीर्णोद्धार, रक्षण अने प्रबंध अमारे करवो जोइए ए प्रमाणे पक्षपात बंधाइ धर्ममां जोडाय छे. एटले जेम प्रवहण स्व अने परने तारे छे तेम आ जिनमंदिर पण अनेक भावि पुरुषोने तारनार बने छे. अहीं उपाध्यायजी वधारे खुलासो करे छे. स्ववंशजकृत मंदिरद्वारा धर्मप्राप्ति थवाथी ते मंदिर

पर विशेष भक्ति जो के भावि प्रजाने थाय छे तो पण अन्य मंदिर पर भक्ति होय तो मिथ्यात्वपणानी प्राप्ति थाय नहीं. एटले के अन्य संघकृतादि मंदिर पर पण अनुराग अवश्य उत्पन्न थवो जोइए; अन्यथा मिथ्यात्वनो दोष लागे.

आ सर्व विधिनो उपदेश कर्या पछी वादी शंका करे छे के आ बधुं जे कही आव्या ते ठीक, पण मंदिर बंधाववामां पृथ्वी आदि छकाय जीवनो अवश्य नाश थाय छे, ते विना जिनमंदिर बनवुं अशक्य छे; माटे कार्यमां तो तमारे खास करीने हिंसा मानवी ज पडशे. आप मान्या पछी शुं हिंसा-वाळा कार्यथी धर्म बने खरो? आ प्रश्ननुं समाधान आचार्य अहीं आ प्रमाणे कहे छे:—

> यतनातो न च हिंसा,
> यस्मादेषैव तन्निवृत्तिफला ॥
> तदधिकनिवृत्तिभावाद्-
> विहितमतोऽदुष्टमेतदिति ॥ ६—१६ ॥

सूत्रार्थ—प्रयत्नपूर्वक उपयोगपूर्वक मंदिर बांधवाथी आ भावहिंसा लागती नथी. आ हिंसा पण निवृत्तिफल—हिंसा-रूप निवृत्ति फलवाली कही छे, कारण के अधिक अन्य आरंभान्तमां जे हिंसा थाय ते हिंसा मंदिर बांधवामां थती नथी अने अन्य हिंसानो रोध थाय छे तथा शास्त्रमां मंदिर

बांधवानी आज्ञा आपी छे आथी जिनमंदिर बंधाववुं ते अनुचित नथी.

" स्पष्टीकरण "

जिनमंदिर बांधवामां जो के उपलक दृष्टिए आपणने हिंसा नजरे देखाय छे खरी, पण आ हिंसाने शास्त्रकर्ता हिंसा स्वीकारता नथी, कारण हिंसा द्रव्य अने भाव एम बे प्रकारे कही छे. जेमां क्रियाकारक पुरुषना कारणथी आत्माओना प्राणोनो नाश थाय पण ते पुरुषनो अनुपयोग–बेदरकारी न होय तेथी ते द्रव्यहिंसा, अने जेमां प्राणनो नाश न थाय तो पण अनुपयोग प्रवृत्ति होय तेथी ते भावहिंसा; अथवा स्वरूप, हेतु, अनुबंध एम त्रण प्रकारे हिंसा शास्त्रोमां कही छे. जे प्रवृत्ति मात्रथी जीवोनो नाश थाय पण प्रवृत्ति करनार बेदरकारी–अनुपयोग अने शास्त्राज्ञानिरपेक्ष न होय तो ते स्वरूपहिंसा. जेमके मुनि मार्गे विहार करतां नदी उतरे. अहीं बेदरकारविहीन अने शास्त्राज्ञासापेक्ष जलीय जीवोनो नाश थवा छतां मुनिने आ हिंसा लागती नथी. मन, वचन अने कायाना प्रमत्त व्यापारोथी जीवोनो नाश थाय तो ते हेतुहिंसा, तथा जेमां हिंसाना परिणामो साथे दुष्ट प्रवृत्ति होय ते अनुबंधहिंसा शास्त्रो दर्शावे छे. हवे जिनमंदिर बांधनार शास्त्राज्ञासापेक्ष अने खास यतनापूर्वक मंदिर बंधावे जेथी मंदिर बांधवामां जो के हिंसा थाय छे तदपि ते भावहिंसा नथी. हेतु

ए के-आ हिंसामां भावहिंसानुं लक्षण सुघटित थतुं नथी. आथी ज हिंसाने हिंसा शास्त्रोए नथी मानी, एटले अहीं आचार्य कहे छे के—'यतनातो न च हिंसा' प्रयत्न एकान्त उपयोगपूर्वक वर्तन करवाथी हिंसाजन्य दोष उद्भवतो नथी, ए ज वात शास्त्र दर्शावे छे. "रागदोसविउत्तो जोगो असढस्स होइ जयणाओ" "अशठ-अमलीन परिणामी अने शास्त्राज्ञाथी यतनापूर्वक वर्तनार मनुष्योनो व्यापार-वर्तन रागद्वेषविहीन ज होय." अहीं उपयोगथी अने शास्त्राज्ञाथी अशठ प्रवृत्ति करनारने भावहिंसाजन्य दोष न लागे ए शास्त्रकारनो कथिताशय छे. खरी रीते शास्त्रकारो भावहिंसा वर्जवानो एकान्त उपदेश करे छे, ज्यारे मंदिर बंधावनार आ हिंसा त्यजी कार्य करे छे एटले तेमां हिंसादोषनो सद्भाव केम मनाय ? निदान ए के-सर्वथा यतनापूर्वक कार्य करवुं, ए ज वात पंचाशकमां दर्शावी छे. "जयणा य पयत्तेणं कायव्वा एत्थ सव्वजोगेसु । जयणा उ धम्मसारो जं भणिया वीयरागेहिं" ॥ १ ॥ "जिनमंदिर विधानमां मंदिर उपयोगी दरेक पदार्थो जीवरक्षा करवापूर्वक अने शुद्धिपूर्वक लाववा, कारण के जैनशासनमां सर्व व्यापारो प्रयत्नथी यतनापूर्वक करवानुं कह्युं छे; केम के धर्मनो मुख्य सार वीतरागदेवे खास यतना-सोपयोगव्यापार कह्यो छे." परमार्थ ए के-सोपयोग वर्तनार आत्मा सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र ने श्रद्धा, बोध अने आसेवनथी आराधी

शके छे. अहीं मंदिर बांधवामां यतना पाळवानुं स्वरूप पंचाशक टीकामां आ प्रमाणे कह्युं छे. परिणत-एटले बराबर छाणीने. कोइक आचार्य अहीं परिणतनो अर्थ अचित्त जल लेवुं तेम करे छे तथा जेमां किडी, कुंथु आदि त्रस जीवो न होय तेवा बराबर स्वदृष्टिए तपासेल काष्ठ, इंट, चूनो, पत्थर विगेरे पदार्थो लेवा तेमज अन्य कृषि आदि आरंभो बाजु करी भाविक गृहस्थे स्वयं पोतानी देखरेखथी स्वहस्तथी कार्य करवुं; परंतु कारीगरोने भरोसे कराववुं नहीं. आ प्रमाणे यतनाथी मंदिर बंधाववुं. आथी आ कार्य भावहिंसा वगरनुं कही शकाय. " सा इह परिणयजलदलविशुद्धरूवा उ होइ णायव्वा । अण्णारंभणिवित्तीए अप्पणाहिट्ठणं चेवं " ॥ १ ॥ अतएव शास्त्रकारो आ यतनाने जो के प्रवृत्तिरूप छे तो पण अन्य दुष्ट प्रवृत्ति बंध करनार होवाथी निवृत्तिरूप कहे छे, कारण के आ यतनाद्वाराए जिनभवनरूप अल्प दोषमय कार्यनो आदर अने बहुदोषयुक्त अन्य आरंभोनो त्याग थाय छे. आ रीते विचारवाथी अने पंचाशकमां यतनानुं जे स्वरूप कह्युं छे ते प्रमाणे वर्तवाथी भावहिंसारूप दोष मंदिर बांधवामां न आवे ए वास्तविक सत्य छे.

अहीं सुधी तो भावहिंसा न लागे ए विचार्युं, पण द्रव्यहिंसा अथवा स्वरूपहिंसा तो मंदिर बांधवामां जरुर लागे, ए प्रश्नना उत्तरमां शास्त्रकार जणावे छे के-जो के द्रव्यहिंसा थाय तो पण अहीं जे यतना दर्शावी तथाप्रकारे वर्तवाथी ते

हिंसा निवृत्तिना फलने अर्थे छे. आनो परमार्थ ए छे के–जिनमंदिर बांधतां ते बांधनार भाविक गृहस्थ अन्य बहु आरंभमय कार्योनो त्याग करे छे एटले आ जिनमंदिर बांधवा-रूप द्रव्यहिंसा प्रवृत्तिथी बहु आरंभमय कार्यो छूटी जाय छे; माटे "यस्मादेषैव तन्निवृत्तिफला" जे माटे आ यतना ज हिंसानिवृत्तिफलजनिका बने छे. शास्त्रोमां पण कह्युं छे. "जा जयमाणस्स भवे विराहणा सुत्तविहिसमग्ग-स्स। सा होइ णिज्जरफला अज्झप्पविसोहिजुत्त-स्स" ॥ १ ॥ सूत्रदर्शित विधिए करी पूर्ण अने आत्म-निर्मलतायुक्त पुरुष यतना–उपयोग सहित प्रवृत्ति आदरता जो विराधना–हिंसा करे तो ते हिंसा पण ते आत्माने कर्मनिर्जरा फल आपनार थाय, माटे आ द्रव्यहिंसा निवृत्तिफलजनिका कही. आ परथी जेओ जिनमंदिर बांधवामां पृथ्व्यादि जीवोनो वध थवाथी ते आरंभयुक्त गणाय माटे ते कार्यमां धर्म केम संभवे ? आवो जे प्रश्न करे छे तेनो योग्य खुलासो उपरना लेखथी सुष्ठुरीत्या स्पष्ट थइ जाय छे. आटलो स्पष्ट खुलासो कर्या पछी फरी शास्त्रकर्ता–'विहितमतोऽ-दुष्टमेतदिति' ए पदथी आ वात वधारे स्पष्ट करे छे. एक तो पूर्वे कही आज्ञा तेथी जिनमंदिर बांधवामां कांइ प्रत्यवाय नथी, बीजुं शास्त्रमां जिनमंदिर बंधाववानी खास आज्ञा आपी छे, जिनेश्वरोए जिनमंदिर बंधाववानो निर्मल उपदेश आप्यो छे; माटे पण आ जिनमंदिर बंधाववुं सर्वथा

अदुष्ट छे. निदान ए के-जे विधान सर्वज्ञशास्त्रविहित होय ते जरुर अदुष्ट ज होय, ए ज वातनी पुष्टि उपदेशरूपे पांच सो ग्रंथकर्ता अने पूर्वधर श्रीमान् उमास्वाती महाराज पोताना ग्रंथमां कहे छे: " यस्तृणमयीमपि कुटीं कुर्याद् दद्यात्तथैक पुष्पमपि । भक्त्या परमगुरुभ्यः पुण्योन्मानं कुतस्तस्य ॥ १ ॥ जिनभवनं जिनबिंबं जिनपूजां जिनमतं च यः कुर्यात् । तस्य नरामरशिवसुखानि करपल्लवस्थानि " ॥ २ ॥ " जे कोइ मनुष्य भक्ति अने श्रद्धाथी वीतरागदेवने एक घासनी झुंपडी तथा एक ज पुष्प भेट करे तो पण तेना पुण्यनुं प्रमाण थइ शके नहीं एटलुं पुण्य बंधाय छे, तेम ज जे मनुष्य भक्ति अने श्रद्धावडे एक जिनमंदिर बंधावे, एक जिनप्रतिमा भरावे, जिनपूजा करे अथवा जिनमत आराधे तो ते मनुष्य मनुष्य, देवता अने मोक्षना सुखोने हस्तगत करे छे. " ए रीते शास्त्रविहित होनाथी जिनमंदिर क्रिया निर्दूषण आचार्य भगवान् दर्शावे छे, एटले जिनमंदिर बंधाववामां द्रव्य अथवा भावहिंसा पैकी कोइ पण हिंसा लागती नथी, किन्तु हिंसानिवृत्तिरूपी फल अर्पण करी एकान्त कर्मनिर्जराकारक बनी उत्तरोत्तर पुण्यानुबंधी पुण्यनो बंध करावनार ज थाय छे. आथी जेओ जिनमंदिर बांधवामां जिवहिंसा लागे छे एवो जे उपदेश करे छे तेओ एकान्त व्यामोहित अथवा शास्त्ररहस्यना अज्ञात छे एम समजवुं जोइए.

---

(७) जिनबिम्बषोडशकम्.

गत षोडशक प्रकरणमां विधिशुद्ध शास्त्रविहित यतनापूर्वक जिनमंदिर बांधवानो विधि दर्शाव्यो, परंतु आ जिनमंदिर जिनप्रतिमा वगर इष्टदायी न थाय माटे जिनप्रतिमानी पण तेटली ज आवश्यकता होवाथी अहीं शास्त्रकार आ सातमा प्रकरणमां प्रतिमानो अधिकार अने तेनुं विधिशुद्ध शास्त्रोक्त विधान दर्शावे छे.

जिनभवने तद्बिम्बं,
कारयितव्यं द्रुतं तु बुद्धिमता ॥
साधिष्ठानं ह्येवं
तद्भवनं वृद्धिमत् भवति ॥ ७-१ ॥

मूलार्थ—ए प्रमाणे विद्धिशुद्ध जिनभवन विषे बुद्धिमाने शीघ्र जिनबिंब करावबुं-भरावबुं, कारण के ते प्रमाणे करवाथी जिनभवन साधिष्ठित थाय, एम थवाथी ज आ जिनमंदिर निश्चयथी वृद्धिकारक थाय छे.

" प्रतिमा भरावे कोण ? "

स्पष्टीकरण—जिनभवन माटे शास्त्रकर्ताए जेम विधान दर्शाव्युं तेम त्यां वीराजवा योग्य जिनप्रतिमानुं पण विधान दर्शाव्युं छे, अर्थात् विद्धिशुद्ध निर्दोष जिनाज्ञा प्रमाणे अशठभाववाळी कारीगरो पासे जिनप्रतिमा करावबी. त्यां प्रतिमा करावनार

प्रथम आचार्य समीपे जिनेश्वरोना गुणो श्रवण करी शुद्ध बुद्धि प्राप्त करी मनुष्यनुं मुख्य कर्म अने जन्मनुं प्रधान फल आ सिवाय अन्य नथी एवी भावना धारण करे, तेम ज आ भूमंडलमां अनन्तगुणराशी जिनेश्वरदेव छे तेथी तेमना बिंबनुं दर्शन पण सुखदाता थाय छे अने आ बिंब करावनारनुं परम आत्मकल्याण थाय छे, माटे मोक्षपथना स्वामी अने मोक्षदर्शक जिनेश्वरोना गुणोनुं बहुमान, आदरसत्कार, प्रीतिपूजा विगेरे कार्यो करवा. मोक्षार्थी—मोक्ष माटे प्रयत्न करनार कुशल आत्माए अवश्य प्रयत्न करवो उचित छे. निदान ए के—जिनेश्वरोनुं बहुमान पूजा आदि करवाथी भवि आत्माना हृदयनी निर्मलता थाय, तथा शुद्ध भावनावडे अवश्य शुभ पुण्योनी परंपरा वधे छे ने अन्तमां आत्मा सिद्धिपदने पामे छे. आ विचारो, आ भावना प्रतिमा करावनार अथवा भरावनारना हृदयमां अभूतपूर्वपणे रमी रही होय एटले ते आत्मा अवश्य पोतानी निर्मलता साधी शके. वळी प्रतिमा बनावनारे कारीगरनो सुअवसरे समुचित सत्कार करी पोतानी शक्ति अनुसार संपत्ति आपवी, आम न बनी शके तो प्रथमथी तेनुं मूल्य ठरावी पाछळथी ठराव्या करतां अधिक पैसो आपी कारीगरोने खुश करवा जेथी प्रतिमा आनंद, उत्साह अने आत्मनिर्मलताकारक जरुर बने.

" प्रतिष्ठा क्यारे करावे ? "

ए रीते निपजावेल अगर अन्य स्थानथी आवेल जिन-

बिंबनी योग्य मुहूर्त्तमां शास्त्रदर्शित विधिथी आडंबरपूर्वक उपरोक्त जिनमंदिरमां बुद्धिमान् नरे जरुर प्रतिष्ठा करवी, स्थापन करवुं. अहीं ग्रंथकर्ता मूलमां 'बुद्धिमता' ए पदथी बुद्धिमाने एटले जे शास्त्रदर्शित प्रतिष्ठाविधिकुशल अने आचार तथा धर्ममां पूर्ण श्रद्धालु तथा कुशल होय तेवा ज मनुष्ये आ प्रतिष्ठा करवी अगर तेवा पुरुष पासे प्रतिष्ठा करावची, ए आशय जणाव्यो छे. तेमज मूलमां–' द्रुतं तु ' ए पद छे एटले मन्दिर निष्पन्न थाय के तुरत ज प्रतिष्ठा करवी, किन्तु विलंब न करवो. हेतु ए के–शिल्पशास्त्रमां मंदिर तैयार थया पछी अमुक मुदतमां प्रतिष्ठा करवानुं अने तदुपरांत मुदत थवाथी दोषप्राप्ति कही छे; एटलुं ज नहीं परंतु मंदिर खाली रहेवाथी तेमां कोइ दुष्ट देवनो वास थइ जाय छे अने तेथी मंदिर करावनार अथवा संघने कइंक प्रकारना नुकशानो उभा थाय छे, 'माटे मंदिर पूर्ण थवा साथे अथवा मूल गभारो तैयार थवा साथे तुरत ज मूर्त्तिनी स्थापना–प्रतिष्ठा करी देवी ए शास्त्राज्ञा छे.

ए प्रमाणे सशुद्ध जिनबिंब पधरावबाथी ए जिनमंदिर पण सनायकत्व–साधिष्ठ थयुं कहेवाय, अतएव आ ज मंदिर संघनुं, प्रतिष्ठा करनारनुं, तेना कुटुंबियोनुं कल्याण करनार थाय छे. अरे! खास वृद्धिकारक बने छे.

जिनप्रतिमा बनाववानी विधि शास्त्रकार दर्शावे छे.

जिनबिंबकारणविधिः,
काले पूजापुरस्सरं कर्तुः ॥
विभवोचितमूल्याऽर्पण-
मनघस्य शुभेन भावेन ॥ ७-२ ॥

मूलार्थ—जिनबिंब कराववानी विधि आ प्रमाणे छे. बिंब करनारनी सुअवसरे पूजा करवी, एटले तेनो योग्य सत्कार करी, निर्दोष शुद्ध भावथी पोतानी संपत्ति अनुसार महेनतना बदला तरीके मूल्य अर्पण करवुं.

" कारीगर केवो जोइए ? "

स्पष्टीकरण—जिनबिंब केवी रीते कारीगर पासे कराववुं तेनुं विधान अमे उपर दर्शावी गया ते ज विधान ग्रंथकर्ता अहीं स्पष्ट करी जणावे छे. ग्रंथकार कहे छे के—जिनबिंब कराववानुं विधान आ प्रमाणे जाणवुं. जे कारीगरे जिनबिंब तैयार कर्युं होय तेनो भोजन, वस्त्र, पुष्प, पत्र आदिथी प्रथम सत्कार करवो अने पछी निर्दोष पवित्र आशयथी पोतानी संपत्ति प्रमाणे तेने धन अर्पण करवुं. उत्तमोत्तम अमूल्य जिनबिं-बना लाभ पासे कांइ अधिक धननी किंमत नथी. अहीं 'अनघस्य' ए पद आप्युं छे. आनो परमार्थ ए के-

जिनबिंब बनावनार मनुष्य जरुर मदिरा आदिना व्यसन रहित होवो जोइए; कारण के व्यसनी मनुष्य पासे प्रतिमा कराववी शास्त्रकर्ता सर्वथा अनुचित जणावे छे.

केवा कारीगर पासे जिनबिंब कराववुं ते स्पष्ट करे छे.

नार्पणमितरस्य तथा,
युक्त्या वक्तव्यमेव मूल्यमिति ॥
काले च दानमुचितं,
शुभभावेनैव विधिपूर्वम् ॥ ७-३ ॥

मूलार्थ—मद्य आदि व्यसनवाळाने आ कार्य सोंपवुं नहीं अने व्यसन रहित जनने पण युक्तिथी समजावी कहेवुं के-' अमुक मूल्य आपीशुं. ' आ प्रमाणे कह्या पछी समय परत्वे पवित्र भावथी तथा विधिपूर्वक तेओने उचित दान आपवुं.

" स्पष्टीकरण "

मदिरा, जुगार अने परस्त्री व्यसनी मनुष्य पासे आ प्रतिमा कराववी नहीं अने तेने पैसो पण आपवो नहीं. हेतु ए के-व्यसनी माणस पासे एवुं परम पवित्र अने एकान्त हितदायी कार्य कराववाथी लोकोमां निंदा थाय. करनारने सद्भाव होय नहीं अने बराबर कार्य करे नहीं तेमज उचित

समये कार्य पूर्ण करे नहीं. वळी आपेला पैसानो अधिक दुरुपयोग थवाथी पापनो भाग आवे, तथा व्यसन रहित अने व्यसनी आ बन्नेनो तुल्य सत्कार करवाथी अव्यसनी पण अनादरवान् थाय माटे अहीं व्यसनीने अनधिकारी शास्त्रकर्ताए गण्यो. अव्यसनी पासे कार्य कराववा पहेलां लौकिक न्यायथी खास भाव नकी करवो के ' अमुक भाव आपीशुं ' जेथी भविष्यमां विसंवाद थवी क्लेशनो प्रसंग उपस्थित न थाय. आम कर्या पछी प्रतिमा तैयार थया पछी ते कारीगरने पवित्र वृत्तिथी अने सत्कार, सन्मान, विनय साथे उचित-योग्य वस्त्रालंकार आदिनुं दान करवुं.

सव्यसनी माटे शास्त्रकर्ताए निषेध केम दर्शाव्यो ? तेनुं कारण अहीं ग्रंथकर्ता पोते ज करे छे.

चित्तविनाशो नैवं,
प्रायः संजायते द्वयोरपि हि ॥
अस्मिन् व्यतिकर,
एष प्रतिषिद्धो धर्मतत्त्वज्ञैः ॥ ७-४ ॥

मूलार्थ—आ प्रकारे वर्तवाथी मंदिर बंधावनार अने बांधनार बन्नेना चित्तमां खेद के क्लेश बहुधा निश्चयथी उत्पन्न थतो नथी, कारण के कल्याणकारी आवा धर्मकार्योमां धर्मतत्त्वज्ञोए चित्तविनाशनो सर्वथा निषेध कर्यो छे

अर्थात् क्लेश उद्भववाथी धर्मनो नाश थाय छे.

" प्रतिष्ठाकारकनुं वर्तन "

स्पष्टीकरण–चित्तनी शान्ति अथवा प्रसन्नता माटे मंदिर बंधावीए छतां जो आदिमां ज मनने ग्लानि थाय तो पछी मंदिर बंधाववानुं फल शुं ? माटे मंदिर बांधनार अने बंधावनारे जेम शान्ति सचवाय, क्लेश न उद्भवे तेम वर्तवुं वधारे उचित गणाय. आ माटे ज भगवान् हरिभद्रसूरिजी जणावे छे के ' चित्तविनाशो नैवं ' जे प्रमाणे मंदिर बंधाववानी विधि तथा शुद्धि विगेरेनुं स्वरूप आगळ कही गया ते प्रमाणे, तथा कारीगर साथे बंधावनारे पहेलाथी ज स्पष्ट भाव नक्की करवा विगेरे जे व्यवहार कही गया ते प्रमाणे वर्तवाथी कारीगर अने बंधावनारने परस्पर भविष्यमां लेवडदेवडमां वांधो पडतो नथी एटले बोलवा–चालवानुं तथा क्लेशनुं कारण कदापि उद्भवतुं नथी. उद्भवे नहीं कारण के शास्त्रकर्त्ता आ मंदिर बंधाववारूप कार्यमां अने उपलक्षणथी धर्मना कार्योमां आपसमां क्लेश, खेद, परिताप, विवाद के झघडो न थाय तेम वर्तवुं एवो खास उपदेश अर्पे छे. परमार्थ ए के–धर्मतत्त्वज्ञो आवा कार्योमां प्रथमथी ज ' चित्तविनाश ' क्लेशादिनो निषेध करे छे. निदान ए के–जो धर्मकार्योमां क्लेश आदि उद्भवी चित्तनी अशान्ति थाय तो धर्मनो नाश थाय–धर्मप्राप्ति कदापि थाय नहीं.

उपर " आवा मंदिर आदि कार्योमां क्लेशादि न थाय तेम वर्तन करवुं. " आ प्रसंग दर्शावी गया. ए ज प्रसंग उपर फरी अहीं जणावे छे.

> एष द्वयोरपि महान्,
> विशिष्टकार्यप्रसाधकत्वेन ॥
> संबंधं इह त्तुण्णं,
> न मिथः सन्तः प्रशंसन्ति ॥ ७-५ ॥

मूलार्थ—पूर्वे कहेल चित्तजन्य क्लेशाभावरूप संयोग बांधनार अने बंधावनार बन्नेने विशिष्ट कार्यनो सिद्धिकारक होवाथी महान् उत्तम संयोग कहेवाय; कारण के-मंदिर बांधनार तथा बंधावनार बन्नेने आपसमां यदि क्लेशादि उद्भवे तो सज्जनो कदापि पण प्रशंसा न करे.

" स्पष्टीकरण "

मंदिर अने जिनबिंबरूप कार्य प्रकरणमां कर्ता तथा करावनार बन्नेना चित्तनो भंग न थाय ए ज संयोग मलवो प्रशंसनीय गण्यो छे. हेतु ए के-आवा सुंदर संयोग खरेखर विशिष्ट अने उत्तम मंदिर तथा जिनबिंबरूप कार्यना फलने अर्पी शके छे, तेमज यदि आवा कार्योमां मांहोमांहे कारीगर तथा प्रेरकना चित्तो नाराज थाय, क्लेशमय बने तो सज्जनो आ कार्यनी प्रशंसा न करता केवल निंदा करे

अथवा घृणानी नजरे देखे छे; माटे अहीं ग्रंथकर्ता जणावे छे के चित्तभंग न थाय एवो संजोग मळवो दुर्गम छे तथा ते ज कार्यनो सिद्धिकारक थाय छे.

आटलो विस्तृत निर्देश कर्या पछी ग्रंथकर्ता 'जिन-बिंब' बनाववामां प्रथम भावनी खास आवश्यकता अने ए ज प्रधान छे, एवो खुल्लो उल्लेख दर्शावे छे.

यावन्तः परितोषाः,
कारयितुस्तत्समुद्भवाः केचित् ।
तद्बिम्बकारणानीह,
तस्य तावन्ति तत्त्वेन ॥ ७-६ ॥

मूलार्थ—जे जे प्रकारना अने जेटला संतोष, प्रसन्नता विशेष सद्गुणो करावनारने जिनबिंबथी उत्पन्न थाय तेमांथी केटलाक संतोष परिणामो ते ज करावनारने परमार्थथी जिनबिंब कराववामां कारणभूत बने.

" प्रतिष्ठाकारके भाव केवो राखवो ? "

स्पष्टीकरण—जैन शास्त्रोए सर्व अनुष्ठानोमां मुख्यतया भाव-हृदयोल्लास एकान्त पवित्रतम फलदायी मान्यो छे, कारण के " जे जे क्षणमां आत्मा जेवा जेवा परिणामोने धारण करे ते ते समयमां आत्मा शुभ अगर अशुभ कर्मनो बंध करे छे. " आम उपदेशमालामां कह्युं छे. तेमज " यस्मात्

क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्याः" "कारण के पवित्र-तर क्रियाओ पण भाव विना फल आपती नथी" ए कथन कल्याणमंदिर स्तोत्रमां उपदेश्युं छे. अतएव अहीं मंदिर अने जिनप्रतिमा अधिकारमां विधि तथा शुद्धिनी मुख्यता अने कारीगर साथे उचित प्रशंसनीय, धर्मबुद्धि थाय तेवुं वर्तन राखवानुं कही गया; किन्तु आ सर्व साधनो छतां जो भाव-हृदयनी परमपवित्रता आत्मोल्लास न होय तो ते साधनो कार्यजनक बने नहीं. निदान ए के-सर्व साधनो साथे भाव पण मुख्य मान्यो छे. आथी अहीं पण शास्त्र-कर्ता दर्शावे छे के-जिनबिंब तथा जिनमंदिर बनावनारनो जेटला प्रमाणमां हृदयोल्लास प्रेम अने पवित्रतामय होय, आत्मा उल्लासमय होय अने ते पण बिंब तथा मंदिर पासेथी प्राप्त थयुं होय अर्थात् तेनाथी उद्भव्युं-बन्युं होय, ते ज संतोष, प्रेम, पवित्रता आदि अनेक भावो पैकी अमुक भावो मंदिर तथा बिंब करावनारने कराववामां परमार्थथी साधनभूत बने छे. एटले मंदिरादिना प्रेमथी आविर्भूत पवित्र हृदयभावो भविक आत्माने मंदिर आदि करावबामां प्रेरणा करे छे. अतः प्रथमतया भाविकनुं हृदय उपरोक्त भावोथी बराबर परिणत थवुं जोइए. भावोनी सुवासनाथी सुवासित थवा पछी ज तेना संस्कारबलथी भविक आत्मा विधि-शुद्धिनुं रक्षण करवापूर्वक कारीगरो साथे योग्य वर्तन राखवा काळजी राखे ने मंदिर तथा बिंबजन्य सुष्ठु

कार्य अने तेनुं कारण मृतिका. अहीं ज्यारे मृतिका पर अरुचि करवाथी, योग्य व्यवस्था अने ध्यान न राखवाथी घटरूप कार्यनो स्वतः विनाश थाय छे ए ज रीते मंदिर अने बिंब ए कार्यो तथा कारीगरो, मजूरो, माल बनावनाराओ, माल लावनाराओ ए सर्व तेना कारणो उत्पन्न करनाराओ छे. आथी ज्यारे बंधावनार सामान्य अगर विशेष कारणोथी कारीगरा साथे पैसा आपवा माटे क्लेश करे अथवा कारीगर बंधावनार साथे क्लेश करे तो परस्पर अप्रीति-वैमनस्य प्रकटे अने परिणामे कारीगरो या करावनारनुं मन खिन्न थाय, एटले बन्ने जणाओ आरंभेल मंदिर अने जिनबिंबरूप कार्यमां योग्य ध्यान राखे नहीं, मात्र वेठनी माफक यद्वा-तद्वा पूरुं करे-करावे आथी ते कार्यनो ज नाश थाय; माटे आचार्यदेव कहे छे के—" अप्रीति० " कारीगर साथे अप्रेम करवाथी परमार्थथी भगवान् साथे अप्रेम थाय एम जाणवुं. निदान ए के-भगवदाज्ञा छे के कारीगरोने योग्य रीते संतोषी मंदिर अने जिनबिंब बनाववा उद्युक्त थवुं, पण तेओनुं चित्त दुःखी थाय तेम वर्तवुं नहीं. आथी ज्यारे कारीगरो असंतुष्ट थाय तेम वर्तन चलावीए त्यारे भगवदाज्ञानुं ज प्रथम अपमान कर्युं कहेवाय, अने भगवदाज्ञानो अनादर करवो ए ज भगवान पर अप्रेमनुं चिह्न दर्शाव्युं छे. भगवाननुं बहुमान, सत्कार करीए अने तेओनी आज्ञानो अनादर करीए ए कांइ भगवाननुं बहुमान न

कहेवाय; ए तो प्रपंची भक्ति ज कहेवाय. आम निषेध करवानुं खरुं कारण शास्त्रकर्ता उत्तरार्धथी दर्शावे छे. "सर्वापायनिमित्तं ह्येषा" आ अप्रीति ज सर्व अपायो–अनर्थोनुं मुख्य निमित्त छे अर्थात् जगतना सर्व कार्योनो प्रलय करनार प्रथम अप्रीति मानी छे, केमके ज्यां अप्रीति थइ एटले मन खिन्न थाय अने मन खिन्न थवाथी उत्साह, बल, धैर्य, प्रमाद ए सर्व त्रुटी जाय. आम थवाथी परिणामे कार्यनो नाश थाय, माटे अहीं आ अप्रीतिने शास्त्रकर्त्ताए पापिष्ठा अने सर्व अपायोनुं मूल मानी कह्युं के–हितार्थी भविक आत्माए मंदिर अने जिनबिंब करावता कारीगर साथे कदापि असंतोष वधे तेवी रीते वर्तवुं नहीं.

ज्यारे उपर दर्शाव्या प्रमाणे 'कारीगर'ने अप्रीति थाय तेम न वर्तवुं एम कह्युं, तो कारीगर पासेथी करावनारे क्या प्रकारे काम लेवुं ? आ प्रश्नना उत्तरमां करावनारे प्रथमथी कारीगरने संतोषी तेम ज सुष्ठु परिणामवान् करी तेना पासे जिनबिंब कराववुं ए ज शास्त्रशैलीए उचित मान्युं छे. ए ज वातनी अहीं ग्रंथकर्त्ता भाविकोने शिक्षा अर्पे छे.

अधिकगुणस्थैर्नियमात्,

कारयितव्यं स्वदौर्हृदैर्युक्तम् ॥

न्यायार्जितवित्तेन तु,

जिनबिम्बं भावशुद्धेन ॥ ७-८ ॥

मूलार्थ—न्यायथी उपार्जित धनवडे तेमज अंतःकरणना पवित्र आशयवाळा गुणोए करीने अधिक एवा शिल्पीना मनोगत अनेक मनोरथोथी सहित एवा कारीगर पासे नियमथी भाविके आ जिनेश्वर भगवाननुं बिंब कराववुं.

" कारीगरने संतोषवानुं फल "

स्पष्टीकरण—कार्यना आरंभथी लइ अन्त पर्यन्त कार्यमां गति करनारना शुभ विचारो, शुभ संकल्पो तथा परम उत्साह जेटला प्रमाणमां होय तेटला ज प्रमाणमां कार्यनी सुंदरता तथा सरलता अवलंबी रहे छे. अहीं जिनबिंबनी परम मनोहरता, चमत्कारिता अने परहृदयाकर्षणता आदि सद्गुणो जिनबिंबमां लाववा माटे मुख्य आलंबन कारीगर उपर रहे छे. एटले जो के जिनेश्वर देव पोते ज अनन्तगुणाधीश छे तो पण तेओनी मूर्त्तिमां तो आ गुणोनी आभा त्यारे ज उल्लसी आवे के ज्यारे कारीगरना हृदयमां ते गुणोनी छाया परम अनुराग अने जिनदेवनी मूर्त्ति परत्वेनी परम प्रसन्नता उल्लसायमान होय तो ज. अन्यथा एकनी एक ज मूर्त्ति ते कारीगरो बेडोळ, मनोहरता अने चमत्कारिताशून्य तथा उत्साह–आनंदनो घात करनारी बनावी दे. निदान ए के–चित्र अथवा मूर्त्तिनी मनोहरतानो

मुख्य आधार कारीगरना हृदय पर ज रहे छे, अतएव परमोपकारी. परमकृपालु, अनन्तगुणाधीश जिनेश्वर भगवाननी मूर्त्ति जे कारीगर पासे करावची ते पहेला तेने सन्मान, प्रेम, विनय, नम्रता अने धनथी संतोषवो; तथा धर्मनी रुचि अने वीतराग देवना उत्तमोत्तम गुणोनो समुचित ख्याल करावचो, तेना हृदयमां वीतरागना गुणो प्रतिबिंबित थाय तेम करवुं. आम कर्या पछी आ कारीगर जे जिनबिंब उपजावे ते एवुं तो चमत्कारी, मनोहर अने नितान्त आकर्षक बने के दृष्टाओ अनेकधा सुंदर भावोल्लास पामी तन्मय बनी जाय. आ हेतुथी ग्रंथकर्ता उपदेशे छे के-जे जिनबिंब करवानुं होय तेनुं मूल कारण जिनेश्वर भगवाननुं मुख्य स्वरूप, तेना अनन्त गुणो तेमां ज जेनुं ध्यान, विचार होय अने कारीगरना हृदयगत मनोरथो पण ते कार्यमां परिणत थया होय, एटले आ जिनबिंबमां हास्यनी छटा, सुकोमलता, बालभाव जेवी मनोहरता, यौवनना जेवी परम निर्विकारी लावण्यता अने ध्याननी एकाग्रता आदि सद्गुणोनी छाया अने त्यागनी उत्कर्षता, संसार परनी निर्मोहिता विगेरे आवा आवा मनोरथो जे जिनबिंब करती वखते कारीगरना हृदयमां उद्भवी तेमां परिणत थता होय तेवा ज कारीगर पासे न्यायोपार्जित धनथी अने हृदयनी परम निर्मळताथी उपरोक्त जिनबिंब भाविकोए कराववुं एम शास्त्रकर्ता कहे छे. आ परथी

कारीगर सरल परिणामी, धर्मरुचि अने न्यायमार्गानुगामी अवश्य होवो जोइए एम जिनबिंब करावनारे खास ध्यान राखवुं.

शिल्पी–हृदयगत अनेक प्रकारना सुंदर मनोरथो युक्त एवा शिल्पकार पासे आ जिनबिंब कराववुं ए वात उपर दर्शावी गया. हवे अहीं शिल्पी–हृदयगत अनेक मनोरथो क्या अने केवा होय तेनुं वर्णन करतां ग्रंथकार कहे छे.

अत्रावस्थात्रयगामिनो,
बुधैर्दौहृदाः समाख्याताः ॥
बालाद्याश्चैता यत्त-
त्क्रीडनकादि देयमिति ॥७–९॥

मूलार्थ—अहीं जिनबिंब बनाववामां बुधजनोए जिनबिंबमां अवस्थात्रय आरोपवा माटे शिल्पीगत बाल, युवा अने मध्यम ए नामक अवस्थात्रयगामी चित्त संबंधी मनोरथो कारणभूत मान्या छे, एटले शिल्पकारोने त्रय अवस्थोचित जे जे रमकडा विगेरे उपकरणो जोइए ते तेनी प्रसन्नता माटे अवश्य अर्पण करवा.

"मूर्त्तिमां अमुक भावो केम लाववा ?"

स्पष्टीकरण—जिनप्रतिमा बनावनार बाल, युवा अने मध्यम वयस्क ए त्रण पैकी कोइ पण होय अथवा

ए त्रण अवस्थोचित संस्कारवान् होय, एटले आ मनुष्य पोतानी अवस्थोचित पदार्थ प्राप्तिथी आनंद माने छे अगर अवस्थोचित पदार्थ ग्रहण करवा उत्सुक बने छे, तेमज तेना चित्तमां–हृदयमां वारंवार अवस्थोचित ख्यालो रम्या करे छे. आने ज शास्त्रकर्ता शिल्पी–हृदयगत मनोरथ कहे छे. अतएव प्रतिमा इच्छु जने आ कारीगरोने खुश राखवा प्रतिमा बनावती वखते बालने रमकडा, युवकने खानपान अने मध्यमने वस्त्र, माल्य आदि जरुर 'देयं' अर्पण करवा. आ पदार्थो अर्पवानुं कारण एक तो शिल्पीना चित्तनी प्रसन्नता प्रकटाववा अने बीजुं प्रतिमामां अवस्था-त्रयना भाव आविर्भूत करवा–उपसाववा. परमार्थ ए के– प्रतिमा करती वखते कारीगरनो जेवो ख्याल होय अने पासे जेवा योग्य साधनो पड्या होय तेवो भाव प्रतिमाना आकारमां यथाकथंचित् उद्भवी शके–उतरी शके छे; परंतु आ पदार्थो कारीगरने अर्पी तेना विकारो पुष्ट करवा एवो शास्त्रकर्तानो आशय नथी, किन्तु शिल्पकारनी त्रण अवस्था, अवस्थोचित मनोरथो निहाळी ते परथी उद्भवेल मूर्त्तिमां आकारविशेषद्वारा अवस्थात्रयनी भावना प्रति-मामां आरोपवी अने आ भावना द्रष्टाना हृदयमां आवि-र्भूत बने एतदर्थे शिल्पकोने ते ते पदार्थो अर्पवा, ए ज ग्रंथकर्तानो मुख्य आशय छे. आ परथी सिद्ध-स्वरूप वीतरागदेवनी मूर्त्ति बनाववामां शिल्पी–हृदयगत

मनोरथोनी पुष्टि शुं कामनी ? एवी वास्तविक शंका उपस्थित थाय खरी, कारण के प्रतिमानी अंदर बाल, यूवा, मध्यम ए अवस्थात्रयजन्य भावो कांइ उपजाववा नथी; तेमज ते भावो वीतराग स्वरूप मूर्तिमां आविर्भूत करवा ए तो वीतरागभावनो ध्वंस करवा जेवुं गणाय. आ शंका जो के सत्य छे अने ग्रंथकर्तानो ए आशय पण नथी के शिल्पी–हृदयगत अवस्थोचित भावो प्रतिमामां पोषवा, किन्तु शिल्पकारने प्रसन्न करी ते द्वारा प्रतिमामां हर्षितवदन, लावण्यता, ध्यानावस्था, मनोहरता, आकर्षणता, पूर्ण-यौवनत्व, सौकुमार्य आदि भावो प्रकटे–उपसे अने ते परथी दृष्टाओ छद्मस्थ, केवलित्थ अने सिद्धत्व ए अवस्था-त्रयनी भावना जरुर प्राप्त करी शके. आ हेतुथी कारीगरोने अवस्थोचित पदार्थो अर्पण करी संतोषवानुं शास्त्रकर्ताए कह्युं. अधिक गुण–लाभ माटे आम करवामां कांइ दोष कहेवाय नहीं.

" अंतःकरणनी पवित्रतावडे कारीगर पासे प्रतिमा करावची " ए वात कही गया तेनी पुष्टि माटे ग्रंथकार फरीने अहीं विशेष उपदेश आपे छे.

यद्यस्य सत्कमनुचितमिह,
चित्ते तस्य तज्जामिह पुण्यम् ॥

भवतु शुभाशयकरणा-

दित्येतद् भावशुद्धं स्यात् ॥ ७-१० ॥

मूलार्थ—जिनबिंब करावनार जे धनथी कारीगर पासे बिंब करावे ते धनमां पोते न जाणे तेवी रीते अनुचित धन आवी गयुं होय ते धन संबंधी पुण्य तेना मालिकने प्राप्त थाव, आ प्रमाणे विचार करे. आ प्रमाणे विचारो करवाथी भावशुद्धि कहेवाय.

" केवा धनथी मूर्त्ति भरावची ? "

स्पष्टीकरण—न्यायोपार्जित धन अने पवित्र आशयथी जिनबिंब कराववुं एम कह्युं हतुं त्यां करावनारे जे धन एकत्र कर्युं होय अगर करे अने सर्व प्रकारे अन्यायप्राप्त धन न ज स्वीकारे तो पण अनुपयोग, प्रमाद, विस्मृति के विह्वलता आदि कारणोथी अथवा मुनिम, नोकर आदिना विश्वासे रहेवाथी अनुचित-अन्यायी कांइक द्रव्य आवी जवानो संभव रहे खरो. हवे जे धनथी जिनबिंब करावे तेमां ते धननो अमुक अंश होय, एटले करावनार " अहो ! धन्य भाग्य हुं आजे आ नष्टदृष्टनष्ट धनथी जिनबिंब करावी ते धनने सफल करुं छुं. मारुं आ धन आजे सफल थयुं. मारो जन्म कृतार्थ थयो." आ प्रकारे जरुर विचारो करे. आथी जे धन अनुचित-अन्यायी आव्युं तेनो वास्तविक

रीत्या ते पोते मालीक नथी अने न्यायबाह्य छे, तेनी मालिकीपणुं अने फल-प्रार्थना पोते करवी ए तो सर्वथा अयोग्य ज कहेवाय तेमज शास्त्रनिषिद्ध वर्तन गणाय; माटे बिंब करावनारे ए भावना भाववी के-" आ धनमां जे अन्यायी-अनुचित धननो अंश होय तत् धनजन्य शुभ फल जेनुं धन होय तेने ज हो अने मारा धननुं शुभ फल मने मळो; परंतु परकीय धननुं फल हुं इच्छतो नथी." आवा विचारो करवापूर्वक कारीगरद्वारा मूर्त्ति कराववी. आ प्रमाणे स्वहृदयमां भावना आविर्भूत करवी तेनुं नाम शास्त्र-कर्त्ता अहीं भावशुद्धि उपदेशे छे. आ परथी पोताने त्यां कोइनी थापण होय अने तेनो मालिक देहान्त थयो होय, कोइए शुभकार्यमां व्यय करवा पोताने त्यां राखेल होय, स्वकुटुंबमांथी आवेलुं होय, व्यापा-रमां घराक पासेथी धर्मना नामे अधिक लीधुं होय, एक वखत शुभखाते खरचवा अमुकनी पाछळ कह्युं होय, निधानमांथी मळ्युं होय-आवुं आवुं अनेक धन होय अने ते धननुं पोते स्वामीत्वपणुं स्वीकारी तेनाथी जिनबिंब आदि पवित्र कार्यो करी तेना फलनी पोते इच्छा करे, में कर्युं एवुं माने, पोताने कृतकृत्य माने ए सर्व अनुचित अने न्यायबाह्य शास्त्रकार दर्शावे छे. एटले जे धनमां अन्या-यनो-अनुचितपणानो-परकीयत्वनो अंशमात्र न होय किन्तु केवल न्यायी, स्वस्वामीत्ववाळुं होय तेवा धनथी ज

जिनबिंब आदि धर्मकृत्यो करवा ए ज शास्त्रानुसारी अने विशुद्धतर छे.

जिनबिंबनी प्रतिष्ठाकरण विधि अमे कहीशुं एम सातमा षोडशक प्रकरणांतर्गत द्वितीय श्लोकथी ग्रंथकर्ता कही गया हता ते माटे अहीं ते संबंधमां विशेष हकीकत दर्शावे छे.

मन्त्रन्यासश्च तथा,
प्रणवनमःपूर्वकं च तन्नाम ॥
मन्त्रः परमो ज्ञेयो,
मननत्राणे ह्यतो नियमात् ॥ ७-११ ॥

सूत्रार्थ—कर्तव्यपणे अभिष्ट एवा जिनबिंबमां 'ॐ' अने 'नमः' ए पदपूर्वक चोवीश जिनांतर्गत कोइ पण नाम-रूप मन्त्र स्थापन करवो, कारण के 'मन' धातु मनन-त्राण-रक्षण अर्थमां होवाथी उपरोक्त नामरूप अवश्य ज्ञानादिनुं रक्षण करे छे; माटे अहीं नाम-स्थापनरूप मंत्र ए ज परम मंत्र जाणवो.

" स्थापनाविधि-मंत्रन्यास "

स्पष्टीकरण—कारीगर पासे शास्त्रोक्त नियम प्रमाणे सुंदर अने अभीष्ट जिनबिंब निपजाव्या पछी आचारनिष्ठ

आचार्यमहर्षिद्वारा शास्त्रदर्शित विधिथी अंजनशलाका ज्यां सुधी न करवामां आवे त्यां सुधी आ मनोहर पण जिनबिंब पूजा, दर्शन अने आराधनीयपणे स्वीकार्य नथी एम शास्त्रो कहे छे. निदान ए के—अंजनशलाका विनाना जिनबिंब जो के जिनेश्वर देवनो आकार छे तो पण तेमां देवत्वनो आरोप, मंत्रनी स्थापना अने चोवीश जिनेश्वरोना नाम पैकी अमुक नामनी स्थापनाशून्य होवाथी पूजा, दर्शन तथा आराधना करनार उत्तम भाविकना हृदयमां देवपणानी श्रद्धा, हृदयोल्लास, जिनगुण अवभास, शास्त्र-विशुद्धता, चमत्कारीत्व अने पूजा योग्य भावो आ जिनबिंब उपजावी शकतुं नथी, एटले तत् बिंबजन्य लाभो अप्राप्य होवाथी अर्थशून्य ज गणाय. अतएव आ प्रमाणे जिनबिंब निपजावी तेमां मंत्रस्थापन अने अंजनशलाकानी पवित्र विधि कर्तव्यतया अभीष्ट मानी छे, ए ज वातनी पुष्टि आचार्यश्री आ श्लोकमां करे छे. कर्तव्यपणे अभीष्ट अने शुद्ध निष्पन्न जिनबिंबमां शीघ्र मंत्रनो न्यास—आरोप करवो. अहीं मंत्रो अनेक प्रकारना छे, एटले कया मंत्रनो आरोप इष्ट गणाय ? आनुं समाधान ग्रंथकर्ता स्वयं करे छे. 'मंत्र' शब्द 'मन' धातु परथी बन्यो छे. 'मनि' ज्ञाने. 'मन' धातुनो ज्ञान अर्थ, तथा 'मन' धातु त्राण—रक्षण ए अर्थमां छे. एटले 'मननात् त्राणात् च मंत्रः' जेनाथी ज्ञाननो लाभ तथा रक्षण थाय ते मंत्र. परमार्थ ए के—

अहीं जिनबिंबमां जे मंत्रनो आरोप करीए ते मंत्रथी " आ जिनबिंब अमुक तीर्थंकरनुं अने तीर्थंकरना चमत्कारिक गुणोनुं जरुर भान करावनार, तेमज पापबुद्धिथी, संसारभयोथी अवश्य बचावनार " आदि गुणोनो अवश्य एकान्त लाभ थवो जोइए, अन्यथा ते मंत्र मुख्य फलविधायी न गणाय. आ हेतुथी शास्त्रकर्ता जणावे छे के–अहीं मंत्रन्यास ते ' ॐ ' तथा ' नमः 'पूर्वक अमुक नामस्थापनरूप प्रथम करवो, जेमके " ॐ नमः ऋषभाय " आ प्रमाणे नाम-स्थापन करवुं. आ प्रमाणे स्थापन कर्या पछी पूजक भवि आत्माने अमुक तीर्थंकरनी आ मूर्त्ति छे, आ मूर्त्ति विधि-सह अंजनशलाकाकृत छे, शास्त्रीय विधिमय छे–आवा ख्यालो उपजावी तीर्थंकरपणाना अनेक उदात्त गुणोनो भास करावी दर्शन–पूजन आदि कार्योमां उल्लासकारक अने पवित्र भाववर्द्धक अवश्यमेव थाय छे. अतएव उपरोक्त मंत्र सान्वयी सगुणी होवाथी स्वजन्य फलप्रापक बने छे, माटे ए ज मंत्र अहीं परममंत्र शास्त्रकर्ताए मान्यो अने तेनी ज स्थापना करवानो आदेश आप्यो, अर्थात् आ सिवायना अन्य मंत्रो उक्त मंत्रना पुष्टिकारक मंत्रो अने गौण मंत्रो जाणवा.

अहीं पर्यंत शास्त्रकर्त्ताए ' जिनबिंब ' भराववानी विधि तथा शुद्धि कही, अने 'जिनबिंब' भराववानो उपदेश आप्यो तेमज तेनी अंजनशलाका करवानुं जणाव्युं. हवे कोइ शक्ति-

विशिष्ट भविक आत्मा रत्न, सुवर्ण, हीरा, माणेक अगर पन्नानुं तथा शक्ति वगरनो भावथी पाषाण मृतिकानुं बनावे तेमज कोइ न्हानुं अथवा म्होटुं जिनबिंब करावे, तो रत्न आदिनुं जिनबिंब बनावे तेने अथवा पाषाण विगेरेथी बनावे तेने आ बेमांथी विशिष्ट लाभ कोने थाय? शुं रत्ननुं के म्होटुं जिनबिंब भरावे तेने विशेष लाभ थाय? अगर गमे तेवुं जिनबिंब करावे पण भाव जेना अधिक सुंदर अने पवित्रतर होय तेने विशेष लाभ थाय? आचार्य भगवान् कहे छे के—भावनी विशिष्टता अने पवित्रता जेने होय तेने अधिक लाभ थाय, परंतु जिनबिंब म्होटुं अथवा रत्न आदिथी बनावे तेथी कांइ विशेष लाभ थाय एवो एकान्त नियम नथी, ए ज वात ग्रंथकर्ता स्पष्टतया जणावे छे.

बिंब महत्सुरूपं,
कनकादिमयं च खलु विशेषः ॥
नास्मात्फलं विशिष्टं,
भवति तु तदिहाशयविशेषात् ॥७-१२॥

मूलार्थ—म्होटा प्रमाणवाळुं अथवा सुंदर मनोहारी अगर शक्तिविशेषथी कोइ रत्न, सुवर्ण आदि विशिष्ट प्रकारनुं जिनबिंब करावे एटला मात्रथी कांइ अधिक लाभ थाय नहीं; किन्तु ज्यां भावनी विशिष्टता होय त्यां ज लाभनी अधिकता जाणवी अथवा भावनी मुख्यता छे.

"क्या बिंबथी वधु लाभ ?"

स्पष्टीकरण—शक्तिवान् होय तो कोइ सुवर्ण, रत्न, हीरा, माणेकनुं सुंदर कारीगरद्वारा अवयवपूर्ण मनोहारी जिनबिंब करावे त्यारे कोइ बृहत्प्रमाणवाळुं जिनबिंब करावे. हवे जेनी शक्ति न होय ते न्हानुं अने पाषाण अथवा मृत्तिकानुं बिंब करावे, एटले जो म्होटुं तथा हीरा आदिनुं बिंब करावे तेने अधिक लाभ अने न्हानुं तथा पाषाणनुं बिंब करावे तेने अल्प लाभ थाय एम मान्य होय तो श्रीमानो-शक्तिवानो ज अधिक लाभना भागी तथा गरिबो विचारा अल्प भागना भागी थइ शके. आम मानवाथी तो पैसावालानो ज धर्म अने मोक्ष गणाय. पवित्र धर्म मार्गमां आ न्याय योग्य न कहेवाय. अतएव शास्त्र-कर्ता कहे छे के—" नास्मात् फलं विशिष्टं " म्होटुं अगर रत्न आदिनुं बिंब कराववाथी कांइ अधिक लाभ थाय नहीं, किन्तु " भवति तु तदिहाशयविशेषात् " आशय—भावनी अधिकता जेटला प्रमाणमां होय तेटला प्रमाणमां अधिक लाभ थाय. परमार्थ ए के—पोतानी शक्ति प्रमाणे न्हानुं पाषाण अगर माटीनुं जिनबिंब भविक आत्मा भावनी अधिकताथी करावे, अने धनाढ्य भाव विना रत्न विगेरेथी म्होटुं जिनबिंब करावे तो पहेलाने जरुर शुभ लाभनी वृद्धि थाय पण बीजा नम्बरवालाने अधिक लाभ थाय नहीं. एटले जैनधर्ममां शुभ पुण्यना लाभालाभनो

मुख्य आधार अंतःकरणनी शुभ वृत्तिओ पर ज राख्यो छे. ए ज भावनी पुष्टि व्यवहार भाष्यमां आ प्रमाणे करी छे. " लक्खणजुत्ता पडिमा, पासाईआ समत्तलंकारा ॥ पल्हायइ जह व मणं तह, णिज्जरमो वियाणाहि " ॥ १ ॥ " लक्षणे करी युक्त अने समस्त अलंकार अलंकृत एवी जिनप्रतिमा तथा जिनप्रासाद देखीने जेम जेम मन अधिक प्रसन्न थाय तेम तेम निर्जरा अधिक थाय एम जाणवुं. " अहीं मननी जेम जेम अधिक प्रसन्नता तेम तेम अधिक कर्मनिर्जरा थाय एम कथन करवानो सूत्रकारनो आशय छे, एटले भाव ज प्रधान छे एम जाणवुं.

अत्र आशय विशेषथी लाभ विशेष थाय ए भाव जणाव्यो, परन्तु आ भाव क्या प्रकारे वर्तन करवाथी पवित्र थाय ए वात ग्रंथकार दर्शावे छे.

आगमतन्त्रः सततं,
तद्वद्भक्त्यादिलिंगसंसिद्धः ॥
चेष्टायां तत्स्मृतिमान्,
शस्तः खल्वाशयविशेषः ॥ ७-१३ ॥

मूलार्थ—आगमनिर्दिष्ट मात्र गमन करवुं, आगमवाळोनी पूजा-बहुमान आदि व्यापारो करवामां सतत प्रवृत्ति करवी, आगमने याद करवुं, आ प्रमाणे वर्तवाथी आशयनी निश्चित पवित्रता थाय छे.

" स्पष्टीकरण "

जे कांइ शुभ कार्यो आरंभवा तेमां आगम-सिद्धान्त आज्ञाने मुख्य करी वर्तन करवुं परंतु आगमनिषिद्ध मार्गे जवुं नहीं, तथा आगमना अभ्यासी महर्षि 'मुनियोनी सेवा-भक्ति, पूजा, विनय, बहुमान आदि व्यापारो करवा; तेमज आगमना अभ्यास आदि क्रियामां प्रवृत्ति करवी, आगम-वचनोनुं वारंवार स्मरण करवुं. आ कार्यो करवाथी हृदयनी खरी पवित्रता थाय अने तेथी पवित्र आशयनुं उत्थान थाय छे. परमार्थ ए के-पवित्र हृदयने प्राप्त करवा उपरोक्त विधिए वर्तन करवुं. आ सिवाय अन्य मार्गे हृदयनी पवित्रता थाय नहीं. अतएव ग्रंथकर्ताए श्लोकना उत्तर भागमां 'खलु' ए पद आप्युं छे अर्थात् निश्चिततया आम वर्तवाथी आशय पवित्र थाय, तेमज आ प्रमाणे वर्तनारमां ज पवित्र आशय होय अने तेथी अन्यथा वर्तनार उंची क्रिया-अनुष्ठानो करे तदपि हीन आशयवालो छे एम जाणवुं.

आ प्रमाणे आशय पवित्रता जणावी. एवा आशय विशेषपूर्वक ज जिनबिंब कराववुं शास्त्रोक्त विधि युक्त छे, ए वातनुं समर्थन करवा ग्रंथकार दर्शावे छे.

एवंविधेन यद्बिम्ब-

कारणं तद्वदन्ति समयविदः ॥

लोकोत्तरमन्यदतो,

लौकिकमभ्युदयसारं च ॥ ७-१४ ॥

मूलार्थ—दर्शित आशय पवित्रता सहित जे जिनबिंब करावीए तेने शास्त्रज्ञो लोकोत्तर कार्य कहे छे, अने आथी विपरीत रीते करावीए तेने लौकिक कार्य जणावे छे; परंतु आ लौकिक कार्य केवल मानप्रतिष्ठा आदि फलने ज अर्पण करे.

" स्पष्टीकरण "

आशयनी पवित्रता माटे जे विधान कह्युं ते ज प्रमाणे जे जिनबिंबरूप कार्य थाय अने तेथी अन्यथा रीते जे कार्य थाय, आ बन्ने कार्योना नाम अने फलमां अवश्य भेद होय छे, ए ज वातने स्पष्ट करवा आ श्लोक ग्रंथकारे कह्यो छे. एटले के लौकिक तथा लोकोत्तर ए प्रमाणे कार्यना बे विभागो थइ शके. जे कार्यो शुद्ध छतां मात्र लौकिक फलने ज अर्पे ते लौकिक, अने जे कार्य लोकोत्तर आत्म-कल्याण, कर्मनिर्जरा फलने अर्पे ते लोकोत्तर. अहीं शास्त्र-कार कहे छे के—जेओ प्रथम कही गया ए रीते आशय-पवित्रता साथे जिनबिंब करावे तो आ कार्यने शास्त्रज्ञो—तत्त्व-ज्ञानीयो लोकोत्तर कार्य एटले एकान्तकल्याण मोक्षफल-दायी कार्य कहे छे. ज्यारे ए विधि अने आशयपवित्रता विना जो करावे तो लौकिक कार्य मान, कीर्ति आदि फल

अर्पनार कार्य दर्शावे छे. अगर स्वर्गादि संपत्ति अर्पनार कार्य कहे छे.

" लौकिक कार्य " अभ्युदय फल आपनार थाय एम कह्युं पण लोकोत्तर कार्य कया फलने आपे ए जणाव्युं नहीं माटे तेनो खुलासो हवे करे छे.

लोकोत्तरं तु निर्वाणसाधकं,
परमफलमिहाश्रित्य ॥
अभ्युदयोऽपि हि परमो,
भवति त्वत्रानुषंगेण ॥ ७-१५ ॥

मूलार्थ—अहीं उत्कृष्ट फल तरीके लोकोत्तर फल-मोक्षफलनी प्राप्ति थाय ते, अने अभ्युदय फल एटले स्वर्ग-संपत्नो लाभ थाय ते; परंतु लोकोत्तर फलप्राप्तिना मध्यमां अवश्य स्वर्गादिक ऋद्धिरूप गौण फल तो आनु-षंगिकपणे थाय ज.

" स्पष्टीकरण "

आ श्लोकनो भावार्थ उपरना श्लोकना विवरणमां अमे कही आव्या छीए, मात्र विशेष एटलुं ज के मुख्य अने गौण एम बे प्रकारे फलो थाय. तेमां लोकोत्तर कार्यनुं मुख्य फल मोक्षप्राप्ति थवी ते, तथा लौकिक कार्यनुं मुख्य फल स्वर्गसंपत्तिनो लाभ थाय ते. लोकोत्तर कार्यमां साध्यतया

मुख्य जो के मोक्षफल छे तो पण आनुषंगथी स्वर्गादिनी संपत्ति तो अवश्य प्राप्त थाय ज; परंतु ते कांइ साध्य नथी ज्यारे लौकिक कार्यमां साध्य तरीके स्वर्गादि संपत्ति ज मानी छे एटले तेथी मोक्षप्राप्ति थाय नहीं.

प्रधान तथा आनुषंगिक फलनुं स्पष्टीकरण करवा ग्रंथकर्ता दृष्टांत दर्शावे छे.

> कृषिकरण इव पलालं,
> नियमादत्रानुषंगिकोऽभ्युदयः ॥
> फलमिह धान्यावाप्तिः,
> परमं निर्व्वाणमिव बिम्बात् ॥ ७–१६ ॥

मूलार्थ—जेम खेडुतोने कृषिकर्मनुं मुख्य फल धान्यप्राप्ति अने गौण फल ते घासप्राप्ति थाय छे तेम अहीं जिनबिंबथी मुख्य फल मोक्षफल—मोक्षप्राप्ति अने स्वर्गसंपत्तिनो लाभ घास तुल्य आनुषंगिक फल जाणवुं.

" स्पष्टीकरण "

मुख्य आनुषंगिक फल माटे दृष्टांत–दार्ष्टान्तिकनुं साम्यकरण आचार्यश्री आ प्रमाणे अहीं घटावे छे. कृषिकर्ममां जेम धान्यप्राप्ति ए मुख्य फल अने पलालप्राप्ति ए आनुषंगिक फल मान्युं छे, तेम जिनबिंब आदि

पवित्र अनुष्ठानोमां मुख्य फल अपवर्गलाभ तथा आनुषंगिक फल देवर्द्धि-प्राप्ति मानेल छे. एटले के मुख्य साध्यभूत मोक्षनुं लक्ष्य जे क्रियामां आविष्ट होय ते क्रियाने तत्त्वज्ञो लोकोत्तरक्रिया, अने जे क्रियामां आ फलनी उपेक्षा करी गौण फल देवर्द्धि आदिनुं लक्ष्य होय ते क्रियाने लौकिक क्रिया कहे छे. अहीं पलाल अने अभ्युदयफल तेमज धान्य अने अपवर्ग बन्ने मुख्य आनुषं-गिक फलनी यथार्थ साम्यता होवाथी दृष्टांत-दार्ष्टान्तिकनी घटना बराबर सुघटित थाय छे. सार ए के-लौकिक क्रियाथी केवल अप्रधानफल प्राप्त थाय, ज्यारे लोकोत्तर अनुष्ठानथी प्रधान अप्रधान बन्ने फलोनी प्राप्ति थाय. अप्रधानफल पण एवुं लाभे के जेनाथी परिणामे अवश्यमेव प्रधान मोक्षफल थाय ज.



(८) प्रतिष्ठाविधिषोडशकम्

गत षोडशक प्रकरणमां विस्तारथी 'जिनबिंब' करवा विधि दर्शावी. ए रीते यथोक्त विधिशुद्ध परम सुंदर मंत्रन्यासपूर्वक तैयार थयेल बिंब मंदिरमां सुप्रतिष्ठित कर्युं होय त्यारे ज साध्यसाधक बने; अन्यथा ते बिंब आशातना अने हानीकर्ता ज थाय माटे तेनी तुरतमां ज प्रतिष्ठा करवी ए आवश्यक अने शास्त्रनिर्दिष्ट मार्ग कहेवाय. अतएव संबंधप्राप्त अष्टम षोडशक प्रकरणमां आचार्य भगवान् प्रतिष्ठाविधिनुं कथन करे छे.

निष्पन्नस्यैवं खलु,
जिनबिंबस्योदिता प्रतिष्ठाशु ॥
दशदिवसाभ्यन्तरतः,
सा च त्रिविधा समासेन ॥ ८-१ ॥

मूलार्थ—उपर दर्शावेल विधि प्रमाणे तैयार थयेल 'जिनबिंब' नी अवश्यमेव तुरतजमां एटले दश दिवसनी अंदर प्रतिष्ठा करवी एम शास्त्रो कहे छे. आ प्रतिष्ठा शास्त्रमां संक्षेपथी त्रण प्रकारनी जणावी छे.

" स्पष्टीकरण "

सातमा प्रकरणमां ' जिनबिंब ' करवानी विस्तारथी जे विधि दर्शावी तदनुसार ' जिनबिंब ' तैयार थया पछी तुरतज प्रथम कहेल विधिशुद्ध मंदिरमां सुप्रतिष्ठित करवुं. एटले दश दिवसनी अंदर ज प्रतिष्ठा जो थाय तो ते उत्तम अने शास्त्रोक्त प्रतिष्ठा गणाय, अर्थात् आ प्रतिष्ठा-कर्ता तथा कारयिता अने श्रीसंघ स्वजनो सर्वने एकान्त कल्याण तथा सर्वतो प्रकारे उन्नतिभूत अवश्य बने. दश दिवसनी अंदर कहेवानो तात्पर्य ए के–ते उत्तम अबाध्य प्रतिष्ठा कहेवाय; बाकी मध्यम अने जघन्य प्रतिष्ठा जाणवी. आथी ज श्लोकमां ' आशु ' ए पद आप्युं. श्लोकमां 'खलु' ए पद वाक्यालंकार माटे आपेल छे अथवा ' खलु ' शब्दनो ' ' एव ' अर्थ करवो. एटले दश दिवसमां ज प्रतिष्ठा करवी; परंतु त्यारबाद थाय ते उचित न गणाय. आ प्रतिष्ठा पण शास्त्रमां संक्षेपथी त्रण प्रकारनी दर्शावी छे. अहीं ग्रंथकर्ता " दश दिवसनी अंदर प्रतिष्ठा करवी. " आटलुं विधान करीने प्रतिष्ठाना प्रकारो तथा प्रतिष्ठानुं स्वरूप आदिनुं आगळ विस्तारथी वर्णन करे छे, परंतु प्रथम प्रतिष्ठाविधि आचार्ये न कही तेनुं कारण पंचाशकना आठमा प्रकरणमां ग्रंथकर्ताए विस्तारथी प्रतिष्ठाविधि दर्शावी छे. अतएव अहीं तेनुं कथन करवुं ते ग्रंथ वधारवा जेवुं गणाय.

अहीं प्रतिष्ठाविधिना स्वरूपनुं दर्शन कराववुं आवश्यक होवाथी पंचाशकमांहेलुं वर्णन अमे अत्र अवतारीए छीए.

"प्रतिष्ठाविधि"

स्पष्टीकरण—उपर जणाव्या प्रमाणे विधि तथा आशय शुद्ध 'जिनबिंब' तैयार थया पछी तेनो मन, वचन अने कायाना शुभ व्यापारो साथे चंद्र, ग्रह, नक्षत्र आदि शुभ योगमां उच्च स्थानमां वर्तता होय ते समये निष्पन्न मंदिरमां प्रवेश करवो अर्थात् योग्य स्थलमां प्रवेश कराववो, योग्य स्थानमां विराजमान करवुं; परंतु ज्यां बिंब स्थापन करवुं होय एवा मंदिरनी आसपास अल्पमां अल्प (१००) सो हाथमां अस्थि, मांस, अशुचि आदि पदार्थो पहेलाना अगर पछीना पड्या न होय तेनी योग्य शुद्धि करवी अर्थात् क्षेत्रशुद्धि कर्या पछी ज त्यां बिंब स्थापन करवुं. तेमज ज्यां बिंब पधराववुं होय त्यां जमीननी अंदर पण अस्थि, मांस के अपवित्र पदार्थोनी तपास कर्या पछी ज बंधाववुं, अन्यथा ते मंदिर उपघातक अने अल्प समयमां विनाशी बने. आथी मंदिरनी आसपास प्रतिष्ठा कर्या पछी पण अपवित्र पदार्थो पडे नहीं, गंदकी कोइ करे नहीं तेनो खास विवेक राखवो जोइए. ए प्रमाणे क्षेत्रनी शुद्धि कर्या पछी ते जिनमंदिरने प्रतिष्ठा पहेला अने पछी सुगन्ध, पुष्प, धूप आदि पदार्थोवडे अत्यंत सुवासित करवुं, सुगन्धमय करवुं, आसपासनी जमीन पण सुवासित करवी. शास्त्रकर्ता कहे छे के निश्चयथी सुगन्धमय करवुं, जेथी दुर्गन्धना संस्कारो उडी जाय, उत्तम देवताओ प्रसन्न थाय, हृदय अने आत्मा आनंद पामे, दिलनुं आकर्षण थाय. लोकोमां

प्रशंसा थाय. त्यारबाद दश दिग्पालो, चार लोकपालोनी स्थापना करी तेनी पूजा–सन्मान आदि करवा, तेमज बाकी अन्य देवताओनी पण पूजा–सन्मान आदि करवा एटले बलि–बाकूल आदि अर्पण करवा. अत्र केटलाकोनी एवी दलील छे के–देवताओ असंयमी होवाथी तेओनी पूजा शा माटे करवी ? केमके तेओनी पूजा करवाथी असंयमपणानुं पोषण थाय छे. जो के आ दलील देखावमां घणी सुंदर छे, तो पण भ्रमजनक होवाथी आचार्यश्री आ भ्रमनुं निरसन आ प्रमाणे करे छे. अहीं जे 'बिंब' नी प्रतिष्ठा कही ते 'बिंब' ना मालीक तीर्थंकरदेव छे, अने तीर्थंकरदेव देव, असुर, विद्याधर, मनुष्य, जानवर आदि सर्व जीवोने पूज्य–अभ्यर्चनीय छे. आथी जेम राजा गादीनशीन थाय त्यारे सर्वनो उचित सत्कार करी सर्वने खुश राखवामां आवे छे, सर्व प्रजाने हर्षनुं कारण थाय छे तेम तीर्थंकरदेवनी मूर्त्ति पण ज्यारे गादीनशीन थाय त्यारे सर्वनो उचित सत्कार करवो आवश्यक छे, जेथी निर्विघ्न कार्य समाप्त थाय. अतः अविरति एवा देवी–देवताओनी ते समये पूजा करवी ए कांइ अघटित नथी किन्तु सुघटित ज छे, तथा दश दिग्पालो, चार लोकपालो सम्यग्दृष्टि अने महर्द्धिक देवताओ छे, अतएव तेओ आपणा समानधर्मी–साधर्मी बन्धु होवाथी, वळी मिथ्या-दृष्टि देवताओ पण द्रव्यथी साधर्मिक बन्धु होवाथी प्रतिष्ठा

समये तेओनी पूजा करवी न्यायसंगत ज छे. उचित समये साधर्मीनो सत्कार न करवो, एना समान अन्य अज्ञानता अथवा धर्मतत्त्वनुं अनादरपणुं क्युं कहेवाय? ए रीते देवताओनो सत्कार कर्या पछी चंद्र, नक्षत्र, ग्रहादिकना शुभयोगमां प्रतिमा स्थापन उचित स्थल पर मंगलमय गायनादिपूर्वक चंदनादि पदार्थो सह मूर्त्तिने पधरावबी, अने प्रतिष्ठाकल्पमां वर्णवेल सुगन्धी द्रव्यमिश्रित जलथी मूर्त्तिने पखाली शुद्ध करवी जेथी मूर्त्ति प्रतिष्ठा योग्य थाय, तेमज जिनमूर्त्तिनी समिपे चार दिशाओमां चांदी, सुवर्ण, रत्न, पुष्प आदि पदार्थोवडे भरेला अथवा युक्त चार मंगलकुंभो स्थापन करवा. आ कुंभो पण हाथथी कांतेल अने चार शरवाला सुतरथी मुख बांधीने स्थापवा, एटले कन्यासुतरथी मुख बांधीने स्थापन करवा, त्यारपछी घी अने गुडथी भरेला मंगलदीपको स्थापवा, तथा खाजा विगेरे मनोहर खाद्य पदार्थो धरवा, अखंड शेरडीनां सांठा, केळ, जूवारारोपण, चंदन अने स्वस्तिक विगेरे करवा, ऋद्धि वृद्धि नामनी औषधियोए करीने सहित अनेक मंगलकंकणो मूकवा. पछी प्रथम दिवसे सुगंधी गंधयुक्त एवा चंदनथी मूर्त्तिने विलेपन करवुं अने सौभाग्यवंती तथा उत्तम प्रशस्त वेश अलंकारवती चार अथवा अधिक स्त्रीयोए मूर्त्तिने पोंखवी. अहीं जे दिवसे विलेपन–पूजा आदि करवी ते दिवसे प्रधान प्रधानतर द्रव्यो, औषधियो, फलो, वस्त्रो, सुवर्ण, मणि, मौक्तिक विगेरे अनेक पदार्थोथी बनी शके तो

उत्कृष्ट पूजा करवी तथा शक्ति प्रमाणे अनेकविध वलियो, अनेकविध सुगंधो, अनेकविध कुसुमो, अनेकविध सुवासो—चूर्णो, अनेक प्रकारनी रचनाओ, नाट्यो—गायनोवडे महोत्सव करवो, एटले अष्टाईमहोत्सव, शान्तिस्नात्र, विविध रचनाओ शक्ति अनुसार अवश्य करवी. त्यारपछी मूर्ति अग्रे चैत्यवंदन करी प्रवर्धमान स्तुतिरूप स्तुति करवी, तेमज विघ्नशान्ति अर्थे शासनदेवतानो एक 'लोगस्स'नो कायोत्सर्ग करवो, इष्ट गुरुदेवनुं स्मरण करवुं. आटलुं कर्या पछी प्रतिष्ठाप्य जिनबिंब अने प्रतिष्ठा करनारनी पूजा करी शुभ लग्न मुहूर्त्तमां पंचपरमेष्ठी नमस्कारमंत्रनुं स्मरणपूर्वक अथवा मंगलान्तरपूर्वक ते जिनबिंबनी प्रतिष्ठा करवी. आ रीते प्रतिष्ठा कर्या पछी प्रतिष्ठित बिंबनी पुष्प आदिथी पूजा करी चैत्यवंदन करवुं, अने उपसर्ग नाश माटे फरी शासनदेवतानो कायोत्सर्ग करवो. बस आटली विधि कर्या पछी आ प्रतिष्ठाविधि पूर्ण थाय छे, माटे अहीं समाप्ति करवी अर्थात् देवताओने विसर्जन करवा, तेमज हृदयनी स्थिरता थाय तेम अने प्रतिष्ठा स्थिर बने तेवो आशिर्वादरूप प्रतिमा अग्रे निम्न लिखित मंगलमय गाथानो पाठ करवोः—

जह सिद्धाण पतिट्ठा तिलोगचूडामणिम्मि
सिद्धिपदे । आचंदसूरियं तह होउ इमा
सुप्पतिट्ठ त्ति ॥ १ ॥

जह मेरुस्स पइट्ठा जंबूदीवस्स मज्झयारंमि ।आ०२
जंबूदीवपइट्ठा जह सेसयदीवमज्झयारंमि । आ० ३
जह लवणस्स पइट्ठा सव्वसमुद्दाणमज्झयारंमि।आ०४

प्रतिष्ठाने अंते शक्ति प्रमाणे विशिष्ट प्रकारे अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, अलंकार आदिथी श्रीसंघनी पूजा-भक्ति अवश्य करवी, जेथी उत्साह अने आनंदवृद्धि साथे प्रतिष्ठा समाप्त थवाथी धर्म प्रशंसाकारक बने. आ टूंकुं विधान पंचाशकमांहेलुं अमे अहीं आप्युं छे, ए वात अमे प्रथम ज जणावी गया छीए; बाकी आ सिवायनुं विस्तृत वर्णन अने विशेष विधान प्रतिष्ठाकल्प अने प्रतिष्ठाकारको पासेथी वांचकोए जाणी लेवुं. अमे तो अहीं शास्त्रीय जे टूंक विधान छे ते आपी स्थान पूर्ण कर्युं छे.

ग्रंथकर्ताए प्रथम श्लोकमां त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठा जणावी हती, ते त्रण प्रकारो शास्त्रकर्ता अहीं हवे जणावे छे.

व्यक्त्याख्या खल्वेका,
क्षेत्राख्या चापरा महाख्या च ॥
यस्तीर्थकृद्यदा किल,
तस्य तदाद्येति समयविदः ॥ ८-२ ॥

मूलार्थ—व्यक्त्याख्य, क्षेत्राख्य अने महाख्य नामे त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठा कही छे. तेमां जे काले जे तीर्थंकर

वर्तमानतीर्थना स्वामी तरिके होय ते काले ते तीर्थंकरनी मूर्त्ति वीराजमान करवी तेनुं नाम समयज्ञो व्यक्त्याख्य नामे प्रथम प्रतिष्ठा कहे छे.

" प्रतिष्ठाभेदो "

स्पष्टीकरण—पहेला श्लोकमां " त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठा " एम जणाव्युं हतुं, तेना साथे संबंध राखनार आ बीजो श्लोक छे. अहीं त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठाना नामो जणावी ग्रंथकर्ता उत्तरार्धथी पहेली प्रतिष्ठानुं स्वरूप दर्शावे छे. व्यक्ति, क्षेत्र तथा महा—एम त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठा शास्त्रमां सिद्धान्ततत्त्ववेत्ताओ कहे छे. व्यक्तिनो अर्थ अमुक ज नामविशिष्ट पदार्थ अर्थात् जेम अनेक मनुष्यना टोळामां " देवदत्त " एवी संज्ञाविशिष्ट एक मनुष्य, क्षेत्र एटले अमुक स्थान अथवा भागमां रहेनार अगर थयेल एवा अनेक मनुष्यनुं टोळुं अने महानो अर्थ संपूर्ण भूभागमां निवसनार मनुष्यनो समूह. अहीं ए ज भावने लगतो भावार्थ शास्त्रकर्त्ता त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठामां दर्शावे छे, तेमां पहेली प्रतिष्ठानुं स्वरूप आ प्रमाणेः—

" व्यक्तिप्रतिष्ठा "

जे काले जे तीर्थंकरनुं शासन वर्ततुं होय ते काले ते तीर्थंकरनी हयातीमां अथवा पछी ज्यां सुधी अन्य तीर्थंकरनुं शासन चालु न थाय त्यां सुधी ते शासन—नायकनी मूर्त्ति भरावबी तेनुं नाम व्यक्तिप्रतिष्ठा. जेमके वर्तमानमां महावीर

भगवंतनुं शासन वर्ते छे एटले शासनाधीश्वर महावीर देवनी मूर्त्ति पधरावीए, तेमज पार्श्वनाथ प्रभुना शासन वखते तेमनी पधरावीए ए रीते आ भरतक्षेत्रमां चतुर्विंशति जिनेश्वरो पैकी जे तीर्थंकरनुं शासन होय अने ते तीर्थंकरनी मूर्त्ति पधरावीये ते सर्व व्यक्तिप्रतिष्ठा जाणवी. आ परथी जे काले अन्य जिनेश्वरनुं शासन चालुं होय अने अन्य तीर्थंकरनी मूर्त्ति स्थापन करवी. आ प्रतिष्ठा मध्यम अर्थात् क्षेत्रप्रतिष्ठान्त-र्गत जाणवी. वर्तमानमां जेम महावीरदेवनुं शासन विद्यमान छतां पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ विगेरे कोइ पण प्रभुनी मूर्त्ति स्थापन थाय छे, अतएव आ प्रतिष्ठा क्षेत्रप्रतिष्ठा कहेवाय; किन्तु आद्य प्रतिष्ठा न गणाय एम सिद्ध थइ चूक्युं.

हवे 'क्षेत्राख्य' नामे द्वितीय प्रतिष्ठानुं स्वरूप जणावे छे.

ऋषभाद्यानां तु तथा,
सर्वेषामेव मध्यमा ज्ञेया ॥
सप्तत्यधिकशतस्य तु,
चरमेह महाप्रतिष्ठेति ॥ ८-३ ॥

मूलार्थ—ऋषभदेव आदि तथा चतुर्विंशति जिनेश्वरोनी प्रतिष्ठा ते मध्यम प्रतिष्ठा जाणवी, अने उत्कृष्टथी एक सो ने सित्तेर (१७०) जिनेश्वरोनी प्रतिष्ठा तेनुं नाम अंतिम महाप्रतिष्ठा जाणवी.

" क्षेत्रप्रतिष्ठा "

स्पष्टीकरण–क्षेत्रप्रतिष्ठा–आदिनाथ विगेरे चोवीश जिनेश्वरोनी मूर्त्तिओ पधरावવી ते. आ प्रतिष्ठाने शास्त्रकर्ता मध्यम प्रतिष्ठा कहे छे. अहीं ग्रंथकार "ऋषभाद्यानां तु" ए पदथी रुषभदेव विगेरे कोइ पण जिनेश्वरनी अने " तथा सर्वेषामेव " चोवीशेनी प्रतिष्ठा करवी तेनुं नाम मध्यम प्रतिष्ठा कहे छे. टीकाकार "ऋषभाद्यानां सर्वेषां" ए बन्ने पदोनो विशेष्य विशेषण भाव दर्शावी रुषभदेव आदि चोवीशे तीर्थंकरोनी प्रतिष्ठाने क्षेत्रप्रतिष्ठा जणावे छे. टीकाकारना आशयथी केवल जे समये अन्य प्रभुनुं शासन वर्ततुं होय ते समये अन्य कोइ जिनेश्वरनी मूर्त्ति पधरावीए, आ प्रतिष्ठाने कइ प्रतिष्ठामां गणवी ए शंका उपस्थित थाय छे, कारण के जे समये जेनुं शासन होय ते समये तेनी मूर्त्तिनी स्थापना करवी तेनुं नाम व्यक्तिप्रतिष्ठा कही गया छे. अतएव आ शंकाना निरसन माटे "ऋषभाद्यानां" अने "सर्वेषामेव" ए पदोने स्वतंत्र राखी अर्थ करीए तो बरावर सुघटित थाय. आ ज आशयने हृदयमां धारी मूलकर्ताए "तु अने तथा" पदो आप्या होय एवुं अनुमान आपणे केम न करीए? आम छतां एक शंका तो अवश्य विचारज्ञोने उपस्थित थशे. आ शंका ए ज के–ज्यारे आदिनाथ, पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ विगेरे एक ज मूर्त्तिनी स्थापना करीए अने तेने क्षेत्रप्रतिष्ठा मानीये, तथा जे समये जे भगवाननुं शासन होय ते भगवाननी मूर्त्ति पधरावीए तेनुं नाम व्यक्ति-

प्रतिष्ठा मानीए त्यारे बन्ने प्रतिष्ठामां भेद न होवाथी अलग शा माटे कही ? आनो उत्तर एटलो ज के व्यक्तिप्रतिष्ठामां केवल वर्तमान शासननायक सिवायनी प्रतिष्ठा न थाय ज्यारे क्षेत्रप्रतिष्ठामां शासननायक सिवाय कोइ पण तीर्थंकर अने चोवीश जिनेश्वरोनी मूर्त्ति पधरावी शकाय. परमार्थ ए के-अमुक व्यक्तिनी अपेक्षाए व्यक्तिप्रतिष्ठा अने भरत अथवा ऐरावत क्षेत्रनी अपेक्षाए क्षेत्रप्रतिष्ठा जाणवी. आ बे प्रतिष्ठानुं स्वरूप कह्या पछी ग्रंथकर्त्ता अर्धश्लोकथी "महाप्रतिष्ठा" नुं स्वरूप कहे छे.

"महाप्रतिष्ठा"

महाविदेह, भरत अने ऐरावत आ सर्व क्षेत्रोना मली एक सो सित्तेर १७० तीर्थंकरोनी मूर्त्तिओ पधराववी, आ प्रतिष्ठाने शास्त्रकर्ताओ चरम-महाप्रतिष्ठा एवुं नाम अर्पे छे, अर्थात् आ त्रणे प्रतिष्ठाओनी जे जे संज्ञाओ छे तेवो ज तेनो गर्भिताशय छे. निदान ए के-महाप्रतिष्ठामां सर्व क्षेत्रोना तीथकरोनी मूर्त्तिओ पधरावाय माटे महाप्रतिष्ठा.

ए रीते त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठा जणावी. आ त्रणे प्रकारनी प्रतिष्ठा सातमा षोडशकमां दर्शावेल उत्तम पवित्र आशय तथा वर्तनवान् भाविक ग्रहस्थे उत्तम कारीगर पासे विधिशुद्ध बनावेल जिनबिंबोनी ज थाय. पाठकोने आ वात फरी जणाववानी अमे जरूर देखता नथी, आटलो निर्देश कर्या पछी अहीं कोइ शंका उपस्थित करे के—

"प्रतिष्ठा कोनी ?"

आ प्रतिष्ठा कोनी ? अष्टकर्मनो नाश करी मोक्षे गयेल एवा परमेश्वरनी आ प्रतिष्ठा कराय छे अर्थात् बनावेल जिनबिंबमां ते परमात्माने अमे स्थापीए छीए, एम जो कहो तो आ उत्तर केवल माटीनी पोली भित जेवो छे; कारण के जे परमात्मा मोक्षमां विराजे छे, जेओए आठ कर्मनो नाश करी संसार दूर कर्यो छे तेओ गमे तेवा विशिष्ट मंत्रोना अनेक संस्कार करवा छतां अहीं उतरी शकता नथी. यदि मंत्रोना संस्कारथी तेओ आवता होय तो तेओ मुक्त-सिद्ध थया छे ए कथन भ्रममूलक गणाय. सिद्ध तो ए ज कहेवाय के जेओ फरीने अहीं आवे नहीं. आ हेतुथी "सिद्धनी प्रतिष्ठा" आ उत्तर भ्रमनाशक न गणाय. अतएव यदि एम कहो के-संसारवर्ती कोइ देवजातिमां रहेलनी प्रतिष्ठा करीए छीए, तो आ उत्तर पण केवल युक्ति-खंडित छे. हेतु ए के-संसारवर्ती कोइ देवजाति विशेष सर्वदा एक ज स्थान पर स्थित थइ शकती नथी. ए तो संसारी होवाथी अन्यत्र अन्यत्र गमनागमन अवश्य करे, एटले मंत्रादि संस्कारविशेषद्वारा आ संसारवर्ती देवजाति विशेषनी स्थापना ए तो नितान्त अघटित छे, धारो के-कदाचित् कोइ समये आ देवजाति विशेष अहीं आवे छे अर्थात् मूर्त्तिमां पोतानो सद्भाव दर्शावे एतावन् मात्रथी कांइ प्रतिष्ठानी सिद्धि न गणाय, प्रतिष्ठासिद्धि तो त्यारे ज

कहेवाय के जे देवतत्त्व सर्वदा मूर्त्तिमां विद्यमान थाय. आ शंकाना निरसन माटे आचार्य भगवंत जणावे छे के- विशिष्ट आत्मभावनी ज प्रतिष्ठा थाय छे किन्तु मुक्त अथवा संसारस्थ देवजाति विशेषनी मूर्त्तिमां स्थापना अमे जणावता नथी; परंतु मूर्त्तिमां विशिष्ट आत्मभावनो ज आरोप करवो तेने अमे प्रतिष्ठा कहीए छीए. एटले उपरोक्त शंका अर्थवगरनी ज सिद्ध थाय छे, ए ज भावनुं दर्शन कराववा आचार्यश्री कथन करे छे.

भवति च खलु प्रतिष्ठा,
निजभावस्यैव देवतोद्देशात् ॥
स्वात्मन्येव परं यत्,
स्थापनमिह वचननीत्योच्चैः ॥ ८-४ ॥

मूलार्थ—प्रतिष्ठित मुख्य देवना उद्देशथी देवविषयक आत्मिक भावनी ज स्व-आत्मामां स्थापना करवी एटले के-आत्मामां परमात्मभावनो पूर्ण ख्याल करवो तेनुं ज नाम अहीं आगमवचनथी उच्च-अतिशय मुख्य प्रतिष्ठा कही छे, अने जिनबिंबमां तो देवविषयक आत्मीयभावनो आरोप करवो तेनुं नाम बाह्य औपचारिक प्रतिष्ठा कही छे.

" आत्मप्रतिष्ठा "

स्पष्टीकरण—शास्त्रमां बाह्य अने आभ्यन्तर बे

प्रकारनी प्रतिष्ठा कही छे. तेमां पण बाह्यने गौण-अप्रधान तथा आभ्यन्तरप्रतिष्ठाने मुख्य-प्रधान जणावी छे. अतएव ग्रंथकर्ता आदिमां आभ्यन्तरप्रतिष्ठानुं स्वरूप दर्शावी पछी बाह्यनुं स्वरूप कथन करे छे, कारण के-आभ्यन्तर-प्रतिष्ठा विनानी बाह्यप्रतिष्ठा फलदात्री थाय नहीं. आगल आपणे तपासी गया छीए के-प्रतिष्ठा करनार शास्त्रोक्त विधिशुद्ध अने गुणवान् होवो जोइए, तेमज जे देवनी प्रतिष्ठा कर्तव्य होय ते देवना गुणोमां तेनो आत्मा परिणत थयो होय, ते ज देवना ध्यानमां लीन होय ए ज आत्मा प्रतिष्ठाक्रियानो अधिकारी गण्यो छे. निदान ए के-प्रतिष्ठा करनार प्रथम तो परमात्माना संबंधी जे जे अलौकिक चमत्कारी गुणो होय तेने ध्यानद्वारा पोताना आत्मा साथे ऐक्यता करे, तेमां तन्मय थाय, स्व-आत्मा परमात्म तुल्य छे एम समानता विचारे, हृदय अने आत्म समीपे परमात्मानुं अलौकिक रूप खडुं करे, आ समये संसारनी विविध उपाधियो विसरी जाय, विषयनी ज्वालाओ बुझाइ जाय, कामक्रोधादि भूली जाय, अहंत्व अने ममत्वभावने दूर करे, कुटुंब, स्त्री, पुत्र, धन ए सर्वने तुच्छ, क्षणिक, स्वार्थी, अनन्तदुःखकारी मानी तेना पर विरक्तभाव धारण करे, केवल परमात्मानुं अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंत अखंड निराबाध सुख, अनंतवीर्य, अनंतैश्वर्य, ज्योतिस्वरूप विचारे, स्व-आत्मामां स्थापन करे, आनुं नाम शास्त्रकार आभ्यन्तरमुख्य प्रतिष्ठा कहे छे. आ ज तात्त्विक

प्रतिष्ठा कही छे. परमार्थ ए के-उपरोक्त ध्यान विना आ प्रतिष्ठा अप्राप्य कही छे.

" आत्मामां परमात्मपणुं केम थाय ? "

अहीं पाठकोने शंका अवश्य थशे के मुख्य परमात्मा अनंतगुणविशिष्ट परम ज्योतिरूप छे, अने प्रतिष्ठाकर्ता एक संसारी पुरुष छे, ते यदि परमात्मगुणनुं ध्यान करे तो एकाद गुणनुं ध्यान करी शके. ते पण मात्र विचारपणे, परंतु अनुभवरूपे तो नहीं ज. परमात्मगुणनो अनुभव तो त्यारे ज थाय के जो परमात्मपणुं प्राप्त थाय. हवे परमात्माना एकाद गुणनुं ध्यान करवाथी पूर्ण परमात्मस्वरूप साथे प्रतिष्ठाकर्तानी तन्मयता अने कर्ताना आत्मामां परमात्मपणानी प्रतिष्ठा मानवी ए युक्तिथी अग्राह्य विषय छे, एटले स्वात्मामां परमात्मानी प्रतिष्ठा करवी ए नितान्त अघटित ज सिद्ध थाय छे. आ प्रश्ननुं समाधान उपाध्यायजीए स्वटीकामां आ प्रमाणे कर्युं छे. शास्त्रकर्ता स्व-आत्मामां परमात्मानी प्रतिष्ठा करवानो उपदेश "वचन-नीत्योच्चैः" ए पदथी करे छे, एटले के-वचनानुष्ठानवडे प्रतिष्ठा करवानुं दर्शावे छे. शास्त्रकारनी आज्ञा लक्ष्यमां राखी जे क्रिया थाय तेने शास्त्रकर्ताए वचनानुष्ठान कह्युं छे. अहीं

---

१ जो पुण जिणगुणचेईसुत्तविहाणेण वंदणं कुणइ। वयणाणुट्ठाणमिणं चरित्तिणो होइ नियमेण ॥१॥ चेइयवंदणभासं० गा० ॥११॥ जे कोइ चैत्यवंदनसूत्रना विधानवडे जिनचैत्योनी वंदना करे तेनुं नाम वचनानुष्ठान कह्युं. आ अनुष्ठान संयमीने अवश्य होय.

वचनानुष्ठान ए पदनी पूर्वोक्त व्याख्या प्रमाणे जेओ शास्त्राज्ञा प्रमाणे वर्तन करे, प्रत्येक क्रियामां शास्त्रनुं ज जेओ अवलंबन करे, परमात्मपणुं प्राप्त करवा वारंवार अभ्यास करे, परमात्माना प्रत्येक गुणोनुं स्मरण करी तेनुं ध्यान करे, एवा निर्मल आत्मामां ज आ परमात्मभावनी स्थापना थइ शके. वधुमां ए ज आत्मा परमात्मस्वरूपनी साथे तन्मयता करी शके छे, एटले के-जेम विदग्ध कामी युवक कोइ लावण्यसौभाग्य रूपकलासंपन्न ललनामां आसक्त थया पछी तेनो ज अहर्निश विचार करे छे, तेने स्वहस्तगत करवा संयोगो खोळे छे, तेमां विविध गुणो स्वदृष्टिए निहाळे छे अने तेथी ते विलासी पुरुषना हृदयमां, चक्षुमां, छायामां, शब्दमां ते ज ललनानी मूर्त्ति आळेखाय छे, निद्रा के तंद्रा, स्वप्न के जागृतावस्थामां तेने ज देखे छे. अहीं आ कामी आ स्थितिना लीधे कांइ पुरुष मटी स्त्रीरूप बनतो नथी, तेमज स्त्रीना गुणोनो यथावत् अनुभव के वेदन ते करतो नथी; तथापि तेना रागथी तन्मयतानो तो जरूर ते अनुभव करे छे अने आ अनुभवना परिणामे कामी स्वहृदयमां ते ललनानी मूर्त्तिनुं अपूर्व स्वरूप खडुं करी रातदिन तेनी प्राप्तिनी लालसाथी झूर्या करे छे. आ वातनो अनुभव पाठकोने समजाववा माटे अमारे वधारे प्रयास करवानी आवश्यक्ता नथी. ए ज रीते वचनानुष्ठान प्रमाणे वर्तनार परमात्मभावनुं अपूर्व ध्यान, तेनी तन्मयता अने परमात्माना एकाद

गुणना स्मरण मात्रथी स्व–आत्मामां परमात्मानो आरोप अथवा तो परमात्मानुं चित्र केम न खडुं करी शके ? अवश्य करी शके. आथी ज उपाध्यायजी उपरोक्त शंकाना समाधानमां जणावे छे के–प्रतिष्ठित देवना एकाद मुख्य गुणनुं ध्यान करवाथी विचक्षण आत्मा स्वात्मामां देवना सर्व गुणोनो आरोप करी "हुं पण आ सर्व गुणवान् परमात्म स्वरूप छुं, परमात्मा अने मदीय आत्मामां किंचित् पण विषमता नथी, जे गुणो परमात्मामां छे ते ज गुणो मारा आत्मामां तिरोभावरूपे रह्या छे, यदि ते ज गुणो आविर्भावने पामे तो हुं अने परमात्मामां भेद रहे नहीं." आ स्थितिनो अनुभव करी शके छे. परिणामे परमात्मानी स्थापना यथावत् स्वात्मामां वचनानुष्ठानकारी अवश्य करी शके छे. अत्र महर्षिओ ध्याता अन्तरात्मा, ध्येय परमात्मा अने अन्तरात्मानी परमात्मा साथे ऐक्यता ते ध्यान–आ त्रिपुटीनो संयोग थया पछी अंतरात्मा पोतानामां परमात्मभावनी प्राप्ति अथवा प्रतिष्ठा करवा अवश्य भाग्यवान् थाय छे, एम खुल्लुं जणावे छे. एटले निर्मल स्फाटिकमां जेम दृष्टानुं तद्वत् प्रतिबिम्ब प्रतिभासमान थाय छे तेम निर्मल अन्तरात्मरूप स्फाटिक रत्नमां परमात्मानुं प्रतिबिंब पण आविर्भूत थाय छे. आ विषयनो सुबोध करवा महर्षिओ एक सुंदर दृष्टांत पण आपे छे. "कीटिका भ्रमरीं ध्यायन् भ्रमरित्वमुपजायते" "भ्रमरीनुं एकाग्र ध्यान करवाथी कीडो जेम भ्रमरीभावने प्राप्त थाय छे" उपाध्यायजी ज्ञानसार

प्रकरणमां परमात्मभावनो अनुभव कर्यो आत्मा केवी स्थितिए करी शके तेनो उल्लेख आ प्रमाणे करे छे—जीतेंद्रिय, धीर, प्रशान्त, निश्चलवृत्ति, दृढासनस्थित, नासिकाना अग्रभागे स्वदृष्टिने टेकावनार एवो योगी तथा ध्यानना धारावेगथी पौद्गलिक भावमांथी मननो रोध करनार, प्रसन्न, अप्रमादी पुरुष चिदानंद संबंधी अमृतरसनो अपूर्व स्वाद करे छे. आ सर्व कथननो कथितार्थ एटलो ज के प्रतिष्ठा करनार संसारस्थ पुरुष छतां परमात्म संबंधी एक अथवा अनेक गुणोनुं स्मरण, चिंत्वन अने ध्यानद्वारा तन्मय थवाथी नितान्ततया स्वात्मामां परमात्माना प्रतिबिंबने अवतारी शके ए निःसंशय छे, अरे ! युक्ति अने प्रमाणथी अखंडित छे. आ भावार्थ "वचननीत्योच्चैः" ए पद साथे ग्रंथकारे आपेल "उच्चैः" पद परथी प्राप्त थाय छे, एम उपाध्यायजी कहे छे.

---

१ ध्याता ध्येयं तथा ध्यानं त्रयं यस्यैकतां गतम् । मुनेरनन्यचित्तस्य तस्य दुःखं न विद्यते ॥ १ ॥ ध्यातान्तरात्मा ध्येयस्तु परमात्मा प्रकीर्त्तितः । ध्यानं चैकाग्रसंवित्तिः समापत्तिस्तदेकता ॥ २ ॥ मणौ विम्बप्रतिच्छाया समापत्तिः परात्मनः । क्षीणवृत्तौ भवेद् ध्यानादन्तरात्मनि निर्मले ॥ ३ ॥ जितेन्द्रियस्य धीरस्य प्रशान्तस्य स्थिरात्मनः । सुखासनस्य नासाग्रन्यस्तनेत्रस्य योगिनः ॥ ६ ॥ रुद्धबाह्यमनोवृत्तेर्धारणा धारयारयात् । प्रसन्नस्याप्रमत्तस्य चिदानन्दसुधालिह. ॥७॥ ज्ञानसार, अष्टक ३० ॥

आ प्रमाणे आभ्यन्तरप्रतिष्ठा संबंधीनो विचार आपणे अहीं कर्यो, कारण के प्रतिष्ठाकर्ताने आभ्यन्तरप्रतिष्ठानुं तत्त्व पाम्या वगर बाह्यप्रतिष्ठा करवाने अनधिकारी गण्यो छे, एटले प्रथम प्रतिष्ठाकर्ता स्वात्मामां परमात्मप्रतिष्ठा कर्या पछी ज बाह्यप्रतिष्ठा करी शके, अने ते ज बाह्यप्रतिष्ठा अन्यने पूजाफलदात्री बने, अतएव अहीं हवे बाह्यप्रतिष्ठानो विचार करवो अत्यावश्यक गणाय.

" बाह्यप्रतिष्ठानी उपयोगिता "

बाह्य प्रतिष्ठानो मुख्य अर्थ एटलो ज के—पूर्वोक्त प्रकारे विधिशुद्ध अने उत्तम कारीगरनिर्मित जिनबिंबमां परमात्मभावनो आरोप करवो अर्थात् परमात्मानी तेमां स्थापना करवी. अत्रे पाठके पहेला शंका करेल हती के—मूर्त्ति पाषाणनी अने परमात्मा क्षीणकर्मा ज्योतिस्वरूप सिद्धस्थानस्थित एटले मंत्रादिविशिष्ट संस्कारद्वारा तेनो आरोप मूर्त्तिमां कोइ प्रकारे थइ शके नहीं, तथा थाय तो सिद्धपणुं न घटे. अहीं आ शंकानुं निरसन आ प्रमाणे जाणवुं.

प्रथम तो शास्त्रमां जेवा अवयवो, आकार, प्रमाण तथा जिनमूर्त्तिनुं वर्णन कर्युं छे तेवा ज आकारमय जिनमूर्त्ति निर्माण करवी, एटले जेना दर्शनमात्रथी द्रष्टाना हृदयमां एकाएक आ जिनमूर्त्ति छे अने जिनेश्वरना शरीरतुल्य आकारवान् आ प्रतिमा छे एवो सचोट भास थाय. त्यारबाद आ

जिनमूर्त्तिमां पूर्वे दर्शावेल गुणवान् प्रतिष्ठा करतां स्वात्मामां प्रतिभासमान् परमात्मानो उपचारथी आरोप करे, अर्थात् पोतानो परमात्म संबंधी उंच आशय तेमां स्थापे, हृदयस्थ परमात्म मूर्त्ति अने बाह्य पाषाणस्थ जिनआकारनी तुल्यता करी विचार करे, भावना करे के–आवा आसन पर विराजित परमात्माए सिद्धस्थान प्राप्त कर्युं, मूर्त्तिमां जे शान्तिरस, निर्विकारदृष्टि, अपूर्व सौम्यता, अद्भुत वैराग्य, अपूर्व त्याग, आश्चर्यकारी ध्यान, चमत्कारी तेज, दिव्य प्रसन्नता, अलौकिक योग आदि भावोनी छांया दृष्टिगत थाय छे, तेनाथी अनंतगुणविशिष्ट ज्योतिस्वरूप परमात्मामां ते ते भावोनो योगीओ साक्षात्कार करे छे; आ मूर्त्ति तो मात्र ते ते गुणोनुं ध्यान करवानुं पगथीयुं, केवल एक बाह्य साधन छे. प्रतिष्ठा-कर्ता ज्यारे मंत्रादि संस्कारोथी आ भावनो ते मूर्त्तिमां उपचार करे छे, एटले अन्य धर्मी मनुष्यने आ मूर्त्ति ध्याननुं साधन, गुणभावना करवानुं स्थान, जिनत्वपणानो ख्याल करावनार अने विविध पूजानुं फल आपनार बने छे, कारण के प्रामाणिक गुणवान् अने विशिष्ट धर्मीजन ज्यारे पोतानो अपूर्व सद्भाव तेमां स्थापन करे त्यारे अन्य सामान्य जनो पूजा विगेरे कार्योमां अवश्य प्रवृत्ति करे छे.

छेवटे परिणामे ते ते लोको पूजानुं अद्भुत फल प्राप्त करे छे. आ रीते प्रतिष्ठाकर्त्ता स्वात्मगत परमात्मभावनो बाह्य

जिनमूर्त्तिमां आरोप करी, जिनमूर्त्ति अने वीतरागदेव बन्नेमां अभेदभावना धारण करी जिनमूर्त्ति पासेथी हृदयस्थ परमात्मगुण भावनानी नितान्त दृढता करे छे, एटले बाह्यप्रतिष्ठा पण प्रतिष्ठाकर्ता तेमज अन्यने पूजन आदि कार्योमां प्रेरक होवाथी ते प्रतिष्ठा पण आभ्यन्तरप्रतिष्ठानी माफक अत्यावश्यक योगियोए मानी छे. किन्तु आभ्यन्तरप्रतिष्ठा कर्या पछी ज बाह्य जिनमूर्त्तिमां परमात्मभावनो उपचारथी आरोप थाय छे, अने ते कल्पित आरोप होवाथी तेने शास्त्रकर्ता बाह्यप्रतिष्ठा कहे छे. आ रीते बाह्यप्रतिष्ठामां कर्तानो मुख्य देव विषयक आत्मिक भावनो ज आरोप करवाथी आ विषयमां पाठके प्रथम जे शंका उपस्थित करी हती तेनुं समाधान सयुक्तिक थइ जाय छे एटले तत्संबंधमां विशेष वक्तव्य रहेतुं नथी.

अहीं बाह्यप्रतिष्ठा करवानुं मुख्य कारण ए के-भक्त आत्मा त्यागभावनी पुष्टि माटे, संसार परनो मोह त्यागवा माटे, विषयो अने उपाधियोनी तुच्छता-क्षणिकताने भाववा माटे, अने परमोपकारी, अकारणबन्धु, संसारभयत्राता, जगज्जनवत्सल, त्रिभुवनोपकारी, दीनजनबन्धु, करुणासिन्धु एवा परमात्माना चरणे स्वेष्ट पदार्थो धरी पोतानी कृतज्ञता दर्शाववाने इच्छा करे तो आ इच्छा परमात्मा संबंधी बाह्य रूप विना तृप्त थाय नहीं. वळी कृतज्ञोए पोतानी कृतज्ञता जरुर दर्शाववी जोइए. यदि न दर्शावे तो ते भक्त उपकारभक्षी अने अधर्मी ज गणाय,

कही, पण अन्य प्रतिष्ठानो निपेध कर्यो तेनुं शुं कारण ? आ शंकानुं निरसन ग्रंथकर्ता आ प्रमाणे जणावे छे.

बीजमिदं परमं—
यत्परमाया एव समरसापत्तेः ॥
स्थाप्येन तदपि मुख्या,
हन्लेषैवेति विज्ञेया ॥ ८–५ ॥

मूलार्थ—मुख्य देवना उद्देशथी स्वात्मामां निजभावनी प्रतिष्ठा करवी ते ज प्रतिष्ठा परम—उत्कृष्ट समरस-मुख्य देवतुल्य भावप्राप्तिनुं परम कारण एटले बीजभूत मानेल छे, अतएव बहिर्वर्ती मूर्त्तिद्वाराए पण ते ज आत्मिक भावनुं पोषण थाय छे अने तेमां उपचारथी निजभावनो ज आरोप करीए छीए माटे परमार्थथी ए ज प्रतिष्ठा मुख्य जाणवी.

" स्पष्टीकरण "

स्वात्मा अने परमात्मा आत्मत्वभावरूपेण अने गुण-रूपेण समान ज छे, केवल परमात्मा ए शुद्ध—निर्दोष कांचन तुल्य शुद्ध स्वरूप छे ज्यारे आत्मा मलीन—माटीमिश्रित कांचन तुल्य अशुद्ध स्वरूप छे. हवे स्वात्मा परमात्मपणुं प्राप्त करवाने परमात्मभावनो विचार, तेनुं ध्यान, पूजन, स्मरण करे तो ज परमात्मा थाय. आ ध्यान, विचार तथा पूजन आदि परमात्माकारनुं- अवतरण विना न ज बने,

एटले मुख्यतः स्वहृदयमां परमात्मानो आभास करवो अने पछी ते आभासने मूर्त्तिमां उतारवो–आरोप करवो आ आरोपने महर्षिओए बे विभागमां विभक्त कर्यो छे. प्रथम तो स्वात्मामां परमात्मानुं बराबर ध्यान करवुं ते मुख्य अने बीजो बाह्यमूर्त्तिरूपे खडो करवो ते गौण. आने ज शास्त्रकर्ताए प्रतिष्ठा एवी संज्ञा अर्पी छे. परमात्मानुं ध्यान करी आत्मामां पूर्ण परम शान्तिरस प्राप्त करवो ते ज परमात्मपूजननुं अलौकिक फल मान्यु छे, एटले अंतरमां परमात्मचिंत्वनद्वारा निजभावनी विशुद्धि थाय, निजात्मा परमात्म तुल्य छे एवो अबाधित बोध थाय अने त्यारपछी ज आत्मामां परम शान्तिरस विस्तरे. आ परम शान्तिरसप्राप्तिमां मुख्य कारण–प्रधानबीज अंतरमां स्थापित परमात्म संबंधी विचारो ज थाय छे, ते सिवाय अन्यथा प्रकारे शान्तिरसनो लाभ थतो नथी. तेमज निजभावनी विशुद्धि बाद स्वात्मामां परमात्मानो ख्याल थया पछी स्वात्मा अने परमात्मभावनो अभेद बोध थाय, अतः शास्त्रकर्ताए अहीं स्वात्मामां देवविषयक निजभावनो आरोप करवो तेनुं ज नाम प्रधान प्रतिष्ठा जणावी. आ सिवाय अन्य प्रतिष्ठाने अप्रधान कही, तेमज बाह्य जिनमूर्त्तिमां पण निजभावनो आरोप करी ते ज जिनमूर्त्तिद्वाराए परमात्म स्वरूपनो विचार करवाथी अंतरमां निजभावनी वृद्धि थाय अने शान्तरसनी अलौकिक प्राप्ति थाय छे. आ हेतुथी पण देवविषयक निजभावनी स्थापना करवी तेनुं

नाम प्रधान-मुख्य प्रतिष्ठा शास्त्रकर्ता कहे छे. अहीं मूलमां "हन्तेपैवेत्ति" हन्त एटले निश्चयथी आ ज प्रतिष्ठा मुख्य छे, एम भारपूर्वक जणावी ध्वनित करे छे के-मुक्तगत आत्मानी अथवा अन्य देवजातिप्रविष्ट आत्मानी प्रतिष्ठा अहीं स्वीकृत नथी एटले पूर्वोक्त "प्रतिष्ठा कोनी करो छो ?" ए शंका निरस्त थाय छे. वस्तुतः अमे अन्यनी प्रतिष्ठा स्वीकारता ज नथी.

ए प्रमाणे समाधान कर्या पछी "अपथ्यं आतुरे" ए न्यायथी वादी फरी शंका करे छे के-देव संबंधी निज भावनी प्रतिष्ठा मानवी, ए अपेक्षाए मुक्तिगत आत्मानी प्रतिष्ठा शा माटे न मानवी ? कारण के निजभावनी अपेक्षाए मुक्तगत आत्मा साक्षात् परमात्मा अने साक्षात् आराध्यतत्त्व छे, अतएव तेनी प्रतिष्ठा मानवी ए ज वस्तुगत्या सुघटित कहेवाय. ए प्रकारनी वादी-शंकानुं समाधान आचार्यश्री आ रीते अहीं दर्शावे छे.

मुक्त्यादौ तत्त्वेन,
प्रतिष्ठिताया न देवतायास्तु ॥
स्थाप्ये न च मुख्येयं,
तदधिष्ठानाद्यभावेन ॥ ८-६ ॥

मूलार्थ—वस्तुगत्या मोक्षमां स्थित सिद्ध परमात्मा

दूर होवाथी अहीं रहेल जिनमूर्त्तिमां तेनी स्थापना थइ शके ज नहीं, तेमज आ स्थापना पण मुख्य–प्रधान योगीओए मानी नथी. निदान ए के–मूर्त्तिमां ते परमात्मा परमार्थथी आश्रित अथवा सांनिध्य थता नथी.

" स्पष्टीकरण "

प्रतिष्ठा एटले स्थापना ए अर्थ अनेक वार कही गया छीए, अतः स्थापना वस्तुतः तेनी ज कराय के जे स्थिति करे, स्वस्थान माने. जेओ स्थानने स्वस्थान मानता नथी, जेओ स्थान अंगीकार करी तेमां स्थिति कदापि करता ज नथी तेनी स्थापना ए तो " माता मे वंध्या " जेवुं वाक्य गणाय. अष्टकर्मक्षयना अंते परमात्माओ निर्मलरूपे सिद्धिमां विराजे छे, अहीं आववानुं कारण प्रथमथी ज जेओए भस्मवत् कर्युं छे, एटले तेओ अहीं क्यांथी आवी शके ? कदापि तेओ आवी शके नहीं. आम वस्तुस्थिति होवाथी मोक्षगत सिद्धस्वरूप परमात्मा अत्रस्थ पाषाणरूप जिनमूर्त्ति तेमां मंत्रादि अनेक असंख्य संस्कारो करवा छतां कदापि निवास–स्थिति करे ए नितान्त अघटित कहेवाय, एटले सिद्ध परमात्माने ममत्व, अहंत्व, आ मारुं निवासस्थान विगेरे भावो आविर्भूत थाय नहीं. अतएव मूर्त्तिमां तेओनी स्थापना करी तेने प्रधान प्रतिष्ठा मानवी ए केवल हास्यचेष्टा ज गणाय. वळी मूर्त्तिमां परमात्मानुं सानिध्यपणुं न थवाथी ते प्रतिष्ठाने शास्त्रकर्ताए मुख्य प्रतिष्ठान्त-

र्गत मानी पण नथी. आथी ज शास्त्रकर्ता कहे छे के-निज-भावनी स्थापना करवी ते ज पारमार्थिक प्रतिष्ठा जाणवी अने मोक्षस्थ आत्मानी प्रतिष्ठानो निषेध कर्यो छे तेमज संसारस्थ अवीतराग, असर्वज्ञ देवोमां अहंत्व-ममत्वना कारणथी 'आ मारुं स्थान' ए भावना अवश्य होय छे अने तेओनो वास पण मूर्त्तिमां सर्वदा थइ शके छे, पण ते संसारी देव होवाथी तेनी स्थापना मात्रथी कांइ परमात्मपूजननुं फल अथवा ध्यान प्राप्त थाय नहीं, एवं आ स्थापना परमात्मानी स्थापना एवो पण निर्देश थइ शके नहीं. वळी अहीं परमात्मानी स्थापना अभिप्रेत छे माटे आ संसारी देवनी स्थापना पण अमुख्य स्थापना मानी छे. हवे परमात्मदेव विषयक निजभाव स्थापनाकर्त्तामां अवश्य छे तथा ते स्थापनाकर्ता अहीं ज विद्यमान छे अने मूर्ति पण अहीं ज दृश्यमान छे, एटले परमात्म संबंधी पवित्रभाव प्रतिष्ठाकर्ता स्वहृदयमां आरोपी ते ज भाव बहिर्वर्ती पाषाणमूर्त्तिमां पण उपचारथी मंत्रादि संस्कारो-द्वारा निश्चयेन करी शके, अतएव ए ज प्रतिष्ठा अहीं मुख्य प्रतिष्ठा आचार्यदेवे कही.

ए ज वातनी अधिक पुष्टि माटे आचार्यश्री फरीने जणावे छे.

इज्यादेर्न च तस्या,
उपकारः कश्चिदत्र मुख्य इति ॥

तदतत्त्वकल्पनैषा,
बालक्रीडासमा भवति ॥ ८—७ ॥

मूलार्थ—मोक्षस्थ आत्मानो मूर्त्तिमां आरोप करी पछी तेनी पूजा, स्नात्र आदि द्वारा तेने प्रसन्न करवा माटे प्रयत्न करवो, तो आ प्रयत्नथी ते देवने कांइ मुख्य उपकार थयो एम अहीं मानवुं नहीं, कारण के—आ कल्पना ज अपारमार्थिक होवाथी आ प्रतिष्ठा बालक्रीडा तुल्य जाणवी.

" स्पष्टीकरण "

मूर्त्तिमां मोक्षस्थ आत्मानो आरोप करवो तेनुं नाम यथास्थित प्रतिष्ठा. आ मान्यता केटला अंशे विरोधी छे ते संबंधमां अमे उपर युक्तिथी विचार करी गया. वळी ए ज मान्यता विषयमां ग्रंथकर्ता विशेष विरोध दर्शावे छे. प्रथम तो मोक्षस्थ आत्मानो आरोप करवो ए ज वार्ता प्रमाण अने युक्तिथी खंडित छे, छतां मानो के मोक्षस्थ आत्मानो मूर्त्तिमां आरोप करवानो नितान्त आग्रह ज होय तो ते मोक्षस्थ आत्मा आरोपित मूर्त्तिने कोइ स्नात्र, पूजा, अलंकार आदि चडावी एम माने के मैं परमात्माने प्रसन्न कर्या, मारी आ पूजा परमात्माने पहोंची तो शास्त्रकर्ता कहे छे के आ पूजाथी कांइ पण मुख्यतः परमात्माने सुख के उपकार थतो नथी. परमार्थ ए के—तेथी परमात्मा लेश पण खुशी थता नथी, किन्तु आवी पूजा, स्नात्र, अलंकार आदि चडावी

परमात्माने खुशी करवानी कल्पना करवी ए ज अतात्त्विक-मिथ्या कल्पना छे. शास्त्रकर्ता आ संबंधमां आगल वधीने जणावे छे के-" बालक्रीडासमा भवति " जेम बालको विविध प्रकारनी बालक्रीडाओ करी, रमतो करी, एक क्षणना माटे 'राजा, प्रधान, राणी, सिपाई, चोर आदि बनावो बनावी, माटीमां बंगलाओ बगीचाओ बनावी, ढिंगला ढिंगली बनावी आनंद माने छे, सुखनो अनुभव करे छे तेम मूर्त्तिमां मोक्षस्थ आत्मानो आरोप करी तेनी पूजाथी परमात्माने संतोषवा उद्यम करवो अने पोताने कृतकृत्य थया मानवुं ए नितान्त मिथ्या छे. ते तो बालक्रीडा जेवुं ज गणाय. बालकोनी मान्यता जेम भ्रमिक छे तेम आ मान्यता पण भ्रमिक ज छे. बालकोनी रमतगमतमां वास्तविक सुख नथी किन्तु केवल क्लेश ज छे, तेम मोक्षस्थ आत्मानो आरोप करी ते मूर्त्तिने पूजी परमात्माने संतोष्या एम मानवुं ए पण मिथ्या ज्ञान नहीं तो बीजुं शुं ? अतएव मूर्त्तिमां निजभावनो आरोप करी मूर्त्तिनी पूजा स्वकल्याणार्थे जेओ करे अने तेवी क्रियाथी स्वात्माने कृतकृत्य माने ए ज परमार्थ पूजा, ए ज सत्यज्ञान, ए ज परमात्म संतोषक उपाय कहेवाय. भावार्थ ए के-मूर्त्तिपूजा परमात्माने संतुष्ट करवाने करवी नहीं, किन्तु आत्म-कल्याण मानी, स्वकर्तव्य मानी, स्वधर्म मानी करवी ए ज शास्त्रनिर्दिष्ट वास्तविक पूजा जाणवी.

वीतराग विषयिक आत्मिक प्रशस्त भावनो

आरोप करवो ते परमार्थ प्रतिष्ठा ए वार्ता दर्शावी, ए ज संबंधमां विशेष अनुसंधान ग्रंथकर्ता आगल जणावे छे.

भावरसेन्द्रात्तु ततो,
महोदयाज्जीवता स्वरूपस्य ॥
कालेन भवति परमाऽ-
प्रतिबद्धा सिद्धकाञ्चनता ॥८-८॥

मूलार्थ—मुख्य परमात्मानुं अवलंबनरूप भाव ते ज रसेन्द्र एटले पारो तेनाथी पुण्यानुबंधी पुण्यनो लाभ थाय, अने ते वडे कालक्रमे परम अस्खलित आत्मानुं सिद्ध सुवर्ण जेवुं रूप बने छे, एटले आत्मा सिद्धस्वरूपी थाय छे.

" स्पष्टीकरण "

धातुवादीयो अने सुवर्ण बनावनाराओ ताम्र आदि धातुथी सुवर्ण बनावे छे. आ लोको पोताना प्रयोगमां मुख्यतः पारानो उपयोग करे छे, कारण के आ लोको वनस्पतिना बलथी ताम्रधातुने पाराथी मार्या पछी, पारो अने धातु एक रूप थया पछी ज ताम्रधातुने सुवर्णरूप सिद्ध करे छे. एटले पारो ज परिणामे धातुना रूपने पलटावी नांखे छे, ए ज रीते स्वात्मा परमात्मा बनवा माटे आगल जणावी गया ते रीते परमात्मानुं सुंदर ध्यान करे, स्वहृदयमां परमात्मध्याननी स्थापना करे, आनुं नाम अहीं भाव

मान्यो छे. ए भावने ज ध्यानवेत्ताओ रसेन्द्रं कहे छे. परमार्थ ए के—ए भावरूप रसेंद्र पारो आव्या पछी तेना प्रभावथी आत्मा सर्व सिद्धि पामी शके छे, ए ज वार्ता आ ग्रंथकर्ता अष्टक प्रकरणमां कहे छे "शुभानुबन्ध्यतः पुण्यं, कर्त्तव्यं सर्वथा नरैः। यत्प्रभावादपातिन्यो, जायन्ते सर्व संपदः ॥ १ ॥ सदागमविशुद्धेन, क्रियते तच्च चेतसा। एतच्च ज्ञानवृद्धेभ्यो, जायते नान्यतः क्वचित् ॥ २ ॥" "अतः सर्वथा मनुष्योए शुभ बंध करनार एवुं पुण्योपार्जन करवुं जोइए, कारण के एना प्रभावथी ज अविनश्वर सर्व संपत्तिओ प्राप्त थाय छे. आ पुण्योपार्जन सदागमथी विशुद्ध एवा अंतःकरणथी ज करवुं, अने सदागमज्ञाननो लाभ ज्ञानस्थविरो पासेथी थाय पण अन्य पासेथी थाय नहीं." निदान ए के—उपरोक्त भावद्वाराए पुण्यानुबंधीपुण्यनो बंध थाय तेमज तेनी परंपरा चाले जेथी कालक्रमे आ पुण्यानुबंधीपुण्यनो प्रवाह अनुक्रमे आत्मानी विशुद्धि करी आत्मानुं परम प्रकृष्ट अप्रतिस्खलित निराबाध सिद्ध कांचन तुल्य रूप प्रगट करे छे, एटले एकान्त निरावर्णी निष्कलंकरूपने आविर्भूत करे छे, जेने परमात्मा एवुं अभिधान लागुं थाय एवुं स्वरूप प्रकट थाय छे. अहीं अंतरनी विशुद्धिरूप भाव ते पारो अने जीवात्मा ते ताम्र तथा पुण्यानुबंधीपुण्य ते वनस्पतिनो रस, एटले भावरूप पारो जीवात्मारूप ताम्रने पुण्यप्रवाहथी विंधी परमात्माना रूपमां फेरवी नांखे

छे. अतएव अहीं ग्रंथकर्ताए भावने रसेंद्रनी उपमा आपी, तेमज पुण्यानुबंधीपुण्यनो प्रवाह पण भविष्यमां केवल उच्च-उच्चतर संपत्तिओ अर्पे छे अने आत्माने सद्गति सिवाय अन्य स्थानमां स्थापतो नथी.

केवल पारो पण ताम्र आदि धातुने सुवर्ण बनावी शकतो नथी परंतु अग्निनी त्यां खास जरूर पडे छे, एटले अहीं जीवात्मारूप ताम्र धातु शोधनार अग्नि कोण? ए प्रश्ननुं समाधान आचार्यश्री जणावे छे.

वचनानलक्रियातः,
कर्मेन्धनदाहतो यतश्चैषा ॥
इतिकर्त्तव्यतयाऽतः,
सफलैषाप्यत्र भावविधौ ॥ ८–९ ॥

मूलार्थ—शास्त्रवचन–आज्ञारूप अग्नि तेनी क्रिया एटले प्रज्वलनपणुं अने तेनाथी कर्मरूप इंधन–काष्ठो तेनो जे दाह भस्मीभाव थवो अर्थात् अग्निमां लाकडा नांखवानी क्रिया करवी–आ प्रमाणे करवाथी आ बिम्बप्रतिष्ठा सफल थाय छे, कारण के आ विधान भावपुष्टिमां हेतुभूत थाय छे.

"स्पष्टीकरण"

वचन एटले आगमज्ञान तेने अहीं अग्नि कह्यो छे. जेम अग्नि सर्व पदार्थोनो क्षणवारमां नाश करी नांखे

छे तेम शास्त्रज्ञान पाम्या पछी अने ते प्रमाणे अनुशीलन करवाथी भव्य आत्मा अनादिना दुर्भेद्य कर्मोनो क्षणवारमां अवश्य नाश करी नांखे छे. अतएव शास्त्रमां कह्युं छे के– " अन्नाणि जं कम्मं खवेइ, बहुयाहिं वासकोडीहिं। तं नाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ उस्सासमित्तेणं " ॥ १ ॥ " अज्ञानी जे कर्मोने घणा क्रोडो वर्षे खपावे ते ज कर्मोने गुप्तेंद्रिय अने गुप्तयोगी ज्ञानी एक श्वासोश्वास कालमां खपावे छे. " श्री कृष्ण गीतामां अर्जुन प्रति कहे छे के—" ज्ञानाग्निदग्ध-कर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन " तथा कर्मो अहीं इंधनरूपे मान्या छे एटले वचनरूप अग्निमां कर्मोरूपी इंधननो प्रक्षेप करवाथी तेनो ते नाश करे छे, माटे अहीं " भावविधौ " मुख्य देवता विषयक भावविधानमां आ बाह्य प्रतिष्ठित मूर्त्ति खास पुष्टिकर्ता होवाथी अर्थात् भावशुद्धिकारक होवाथी 'सफलैषापि' आ मूर्त्तिनी प्रतिष्ठा पण नितान्त सफल ज छे. परमार्थ ए के–मुख्य देव संबंधी स्वात्मामां प्रशस्त भावनी प्राप्ति थया पछी तेमां स्वात्मा लीन बने छे, अने पछी शास्त्रा-नुसारे सर्व चेष्टा स्वीकारी जीवात्मा शुद्ध कांचन तुल्य पर-मात्मभाव प्राप्त करे छे. एटले अत्र स्थले भावरूप पारो, जीवात्मा रूप ताम्र धातु, वचनरूप अग्नि आ सर्वनो मेलाप थया पछी भावरूप पारो वचनरूप अग्निमां जीवात्माने तपावी कर्मोनो दाह करे छे, कर्मो भस्मीभूत थाय छे अने आत्मा निर्मल बने छे, परंतु प्रथमना सर्व संयोग प्राप्त थाय तदपि

वचन-आगमरूप अग्नि-संयोग भावरूप पारो जीवात्माने शोधी शके नहीं माटे अहीं वचनरूप अग्निनी नितान्त आवश्यक्ता अपेक्षित छे, तेमज भावनी पुष्टि बाह्य मूर्त्तिद्वाराए ज सावलंबन ध्यानकर्त्ताओने थाय छे परंतु ते विना थाय नहीं. अतः बाह्यप्रतिष्ठा शास्त्रकर्ताए सफल कही.

अरे ! बाह्य मूर्तिगत निज भावरूप प्रतिष्ठा कही छे एवुं कर्ताए शाथी जाणवुं ? ए शिष्य हृदयगत प्रश्ननो उत्तर आचार्यश्री अहीं करे छे.

एषा च लोकसिद्धा,
शिष्टजनापेक्षयाऽखिलैवेति ॥
प्रायो नानात्वं पुनरिह,
मन्त्रगतं बुधाः प्राहुः ॥ ८-१० ॥

मूलार्थ—आ प्रतिष्ठा पुरुषपरंपरागत अने लोक तथा लोकोत्तर सर्वत्र शिष्टजनोनी अपेक्षाए स्वीकृत छे, मात्र आ प्रतिष्ठामां बहुधा विशेष तत्त्व तो मंत्रोपचार संबंधी आचार्यो जणावे छे.

" स्पष्टीकरण "

शास्त्रमां आ प्रतिष्ठा आचार्यपरंपराथी चाली आवे छे अने विशिष्ट भव्य आत्माओनी अपेक्षाए लोक लोकोत्तर पदार्थोमां ए ज निजभाव स्थापनरूप प्रतिष्ठा

स्वीकार्यरूपे महर्षियोए दर्शावी छे, अर्थात् आगल जेतुं विस्तृत स्वरूप जणावी गया ए ज प्रतिष्ठा आचार्योए स्वीकारी छे, कही छे अने हितार्थी भव्योने आदेयरूप छे. तेमज लौकिक लोकोत्तर भावोमां आ प्रतिष्ठा मुख्य मानी छे, मात्र आचार्यो भिन्नता एटली ज कहे छे के–निजभावनो जे मूर्त्तिमां आरोप थाय ते समये आ प्रतिष्ठा करी एवो भाव जन-समूहना हृदयमां विकसाववा मंत्रोच्चार करवो तेमां विविध भेदो छे, एटले भिन्न भिन्न मंत्रद्वारा विविध क्रियाओ करी ते भावनो आरोप थाय छे. आ कारणथी प्रतिष्ठा शास्त्रसिद्ध छे एम कर्ताना हृदयमां अवश्य श्रद्धा प्रकटे अने तेमां प्रवृत्ति करे. ते प्रतिष्ठाद्वारा स्वकार्यसिद्धि जरूर करे छे. बस आ समाधानथी उपरोक्त शंका निरस्त थाय छे.

मंत्रादि क्रियामां भिन्नता छे एम उपर कही गया हवे अहीं मंत्रादि क्रियामां क्या प्रकारनी भिन्नता छे ते स्पष्ट करे छे.

आवाहनादि सर्वं,
वायुकुमारादिगोचरं चात्र ॥
सम्मार्जनादिसिद्ध्यै,
कर्त्तव्यं मंत्रपूर्वं तु ॥ ८–११ ॥

मूलार्थ—प्रतिष्ठा कार्य पूर्वे अन्य देवोने आमंत्रण,

तेओनी पूजा आदि सर्व कार्य, अने वायुकुमार, मेघकुमार आदि देवसंबंधी संमार्जन जलवृष्टि आदि दरेक कार्यो मंत्रोच्चार—मंत्रस्मरणपूर्वक ज अवश्य करवा.

" स्पष्टीकरण "

जिनप्रतिमा शुभ मुहूर्त्तमां स्थापवा पहेला विघ्नविनाशार्थे, धर्मकार्य समाप्त्यर्थे अने औचित्यता पालनार्थे अवश्य मंत्रादि संस्कारद्वारा दश दिग्पालो, लोकपालो, नवग्रहो आदि देवताओनुं आह्वान करवुं, तेओने मंत्रोच्चार साथे बलिबाकूल अर्पवा, तेओनी पूजा करवी अने ते ते देवसंबंधी जे जे कार्यो होय ते ते कार्य परत्वे संकल्पथी तेओनो विनियोग करवो. तेमज कल्याणक समये जेम वायुकुमार अने मेघकुमार नामक देवताओ आवी भूमिशोधन तथा सुगंधी जलवृष्टि करे छे तेम अहीं भाविकोए मंदिरनी आसपास भूमिशोधनरूप कार्य तेमज सुगंधमिश्रित जलवृष्टि अवश्य मंत्रोच्चार सह करवी. वळी अन्य देवताओनी स्थापना पण मंत्रादि क्रियाद्वाराए करवी. अहीं सर्वत्र मंत्रोनुं स्मरण तथा विविध क्रियाओ पूर्वाचार्यनी परंपराथी उतरी आवेल रीतिए करवुं, एटले आ सर्व विधान प्रतिष्ठाकल्प ग्रंथमां तेमज प्रतिष्ठाविधिमां विस्तृतरूपे दर्शावेल छे ते प्रमाणे अने ते विधिना ज्ञाता समीपे तेनुं समुचित ज्ञान कर्या पछी

-ज करवुं, जेथी अविधि के अवज्ञानो संभव न रहे अने शास्त्राज्ञानो लोप न थाय ए खास लक्ष्यमां राखवुं.

आटलो निर्देश कर्या पछी हवे जिनप्रतिमा केवी रीते स्थापवी ए वात दर्शावे छे.

न्याससमये तु सम्यक्–
सिद्धानुस्मरणपूर्वकमसंगम् ॥
सिद्धौ तत्स्थापनमिव,
कर्त्तव्यं स्थापनं मनसा ॥ ८–१२ ॥

मूलार्थ––जिनप्रतिष्ठा काळे मंत्रस्थापन समयमां मनःसंकल्पथी सम्यक्तया सिद्धभगवानना स्मरणपूर्वक अने असंगपणे तेमां ज लीन बनी मुक्तिमां जेम सिद्धोनी स्थिति छे तेम सत्–चित्–आनंद रूपनी स्थापना मूर्त्तिमां नमस्कार-मंत्र साथे करवी.

" पष्टीकरण "

मूर्त्तिमां ज्यारे मंत्रस्थापन करवो होय ते समये एटले मूर्त्तिमां आ वीतराग देव छे एवी कल्पना स्थापवी होय त्यारे, ज्यां सुधी विधिविधान सह अनेक जनसमूह समक्ष मूर्त्तिमां मंत्रस्थापन सह आ मूर्त्तिमां स्वेष्ट देव छे एवी कल्पना न थाय त्यां सुधी अन्य सामान्य जन तेनी पूजा आदि कार्योमां प्रवृत्त थाय नहीं, माटे प्रतिष्ठाकर्ताए ज्यारे

मंत्रारोप करवो होय ते समये प्रथम कही गया ते प्रमाणे शरुआतमां शास्त्रमां जे स्वरूप कह्युं छे ते रीते सम्यक्पणे मोक्षस्थ सिद्ध परमात्मानुं स्मरण करवुं, तेओना प्रत्येक गुणोनुं अने ज्योतिरूपनुं समुचित ध्यान करवुं, सिद्धना ध्यान साथे स्वात्मा अभेदभावे परिणमे तेम वर्तन करवुं. एटले आगल जणावी गया ते रीते प्रतिष्ठाकर्त्ताना हृदयप्रदेशमां सिद्धमूर्त्तिनुं प्रतिबिम्ब प्रतिबिम्बित थाय तेम करवुं अने पछी मोक्षमां अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतअव्याबाधसुख ज्योतिरूपे विराजे छे ते ज स्थितीए अहीं मूर्त्तिमां प्रतिष्ठाकर्ता "णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं०" ए मंत्रोच्चारपूर्वक स्वहृदयस्थ परमात्मदेव विषयक स्वात्मभावनो आरोप अनेक सशुद्ध विधि सह मनःकल्पनाथी करे. आ आरोप करती वखते प्रतिष्ठाकर्ता मन-वचन अने काया ए त्रणे योगथी केवल सिद्ध परमात्मामां ज सोपयोगरूपे बनी अन्य कांइ पण ख्याल न राखी एकात्मभावे मूर्त्तिमां हुं केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि शक्तिविशिष्ट चिद्स्वरूपनी स्थापना करुं छुं एवुं ध्यान करे. आनुं नाम योगिओ अने प्रतिष्ठातत्त्वज्ञो बाह्य मूर्त्तिप्रतिष्ठा निर्देशे छे.

आ प्रतिष्ठा शामाटे कही ? अर्थात् आ प्रतिष्ठानुं शुं फल थाय ? ए वातनो उल्लेख शास्त्रकर्ता जणावे छे.

बीजन्यासः सोऽयं,

मुक्तौ भावविनिवेशतः परमः ॥

सकलावञ्चकयोग-

प्राप्तिफलोऽभ्युदयसचिवश्च ॥८-१३॥

मूलार्थ—आ प्रतिष्ठा विधानथी मुक्तगत परमात्मामां स्वहृदयनी स्थापना थवाथी परम-उत्कृष्ट आ बीज-सम्यक्त्वनो न्यास थाय छे के जेनाथी भविष्यमां समग्र अवंचककयोगोनी प्राप्ति अने उत्तरोत्तर आत्मिक ऋद्धिओनो संयोग थाय छे.

" स्पष्टीकरण "

प्रतिष्ठाकर्ता अने कारयिता बाह्य जिनमूर्त्तिमां मुख्य देव विषयक निजभावनी स्थापना करी शुं लाभ प्राप्त करे छे ? ते अहीं ग्रंथकर्ता दर्शावे छे. एटले आ लोको 'बीजन्यासः' बीजनो न्यास अर्थात् बीजनी वावणी करे छे, तो जेम कृषिकार चोमासानी आदिमां भूमिमां बीजनुं वावेतर करे छे तेथी परिणामे ए वावेतर अनेकधा फलदायी बने छे तेम अहीं पण बाह्यप्रतिष्ठा करवाथी कर्त्ता अने कारयिता उभय स्वहृदयरूपी भूमिमां तेमज अन्य भव्यात्माना हृदयरूप भूमिमां पुण्यानुबंधीपुण्यरूप अथवा सम्यक्त्वरूप बीजनी स्थापना करे छे. परमार्थ ए केप्रतिष्ठा करती वखते कर्ता तथा कारयिताना हृदयो परमात्माना ध्यानमां निमग्न बने छे. खास परमात्मानुं ध्यान करवुं ए शुभ पुण्यबंधनुं परम कारण छे. एथी उत्तरोत्तर पुण्य-

प्रवाह चाल्या करे छे, अगर परमात्मानुं ध्यान ए सम्यक्त्वनुं अंग छे, तथा अन्य जनो आ प्रतिष्ठा निहाळी तेनी प्रशंसा करे छे, अनेक लोको तेनुं ध्यान, अनुमोदन अने पूजन करे छे, अतएव आ लोको पण शुभपुण्यनो बंध पामी पुण्य-कार्यनो प्रवाह वहेवडावे छे, स्वहृदयने निर्मल करी समकितनो लाभ करे छे, एटले अनेक आत्माओने आ प्रतिष्ठा शोभन फलदात्री थवाथी खास 'बीजन्यास' रूप बने छे. आटलाथी ज आ प्रतिष्ठानुं कार्य पूर्ण थतुं नथी, परंतु बीज जेम उत्तरकालमां अनेक फलो अर्पे छे तेम अहीं आ 'बीज-न्यास' पण आत्मिक अभ्युदय-उन्नतिक्रममां सहायक थवा साथे सद्योगावंचक, फलावंचक अने क्रियावंचक ए त्रण योगरूप फलप्राप्ति करावे छे. निदान ए के-पुण्यानुबंधीपुण्यनो बंध थया पछी अथवा समकित प्राप्त थया पछी विशुद्ध आत्मा उत्तरोत्तर चडती ऋद्धिओनो अनुभव करे छे, उत्तम उत्तम स्थानमां अने विशिष्ट गतियोमां के ज्यां संपत्ति, आनंद, निर्भयता अने गुणप्राप्ति तथा धर्मप्राप्ति थाय त्यां जन्म धारण करे छे ने परिणामे आत्मिक उन्नतिक्रममां आगल वधे छे; कारण के-समकित लाभ थया पछी शास्त्रकर्ता कहे छे के—"समदिट्ठि जीवो विमाणवज्जं न बंधए आउं" सम्यग्दृष्टि आत्मा वैमानिक देव सिवाय अन्य आयुष्यनो बंध न करे. आथी आ 'बीजन्यास' अभ्यु-दय-उन्नतिसहायक कह्युं तेमज समग्र योगोनी अवंचकता-

रूप फलदायी मान्युं छे. अहीं शास्त्रोमां सद्योगावंचक, फलावंचक, क्रियावंचक एम त्रण योगो कह्या छे. आ त्रणे योगोनुं स्वरूप योगदृष्टिसमुच्चयमां आ प्रमाणे दर्शाव्युं छे. "सद्भिः कल्याणसंपन्नै-र्दर्शनादपि पावनैः। तथा-दर्शनतो योग, आद्यावञ्चक उच्यते ॥ १ ॥ तेषामेव प्रणामादि-क्रियानियम इत्यलं। क्रियाऽवञ्चकयोगः स्या-न्महापापक्षयोदयः ॥ २ ॥ फलावञ्चकयोगस्तु, सद्भ्य एव नियोगतः। सानुबन्धफलावाप्ति-र्धर्म्म-सिद्धौ सतां मता ॥ ३ ॥" आ त्रणे योगोनुं विस्तृत स्वरूप योगदृष्टिसमुच्चय ग्रंथमां ग्रंथकर्ताए बहु सारी रीते दर्शाव्युं छे, माटे पाठकोए त्यांथी जोइ लेवुं.

बीज वाव्या पछी कर्षको यदि तेनुं रक्षण-संवर्द्धन न करे, आसपास उगेलुं घास दूर करी ते बीजनी संभाळ न करे तो वावेलुं बीज जल, वायु आदि अनुकूल साधनो छतां पण विणसी जाय छे तेम अत्रे पण सम्यक्त्व तथा पुण्यानुबंधी-पुण्यरूप बीज वाव्या पछी तेना रक्षण अने संवर्द्धनना अभावे विणशी जाय माटे आचार्यश्री आ वावेल बीजनुं संवर्द्धन केम करवुं तेनो उपाय दर्शावे छे.

लवमात्रमयंनियमाद्-
उचितोचितभाववृद्धिकरणेन ॥

क्षान्त्यादियुतैर्मैत्र्यादि-
संगतैर्बृंहणीय इति ॥ ८-१४ ॥

मूलार्थ—प्रतिष्ठासमयगत आ आत्मिकभाव एक सामान्य मात्र होय छे, तो पण ते भावने उचित-समुचित भाववृद्धिना उपायोथी तथा क्षमा आदि गुण संपादन करीने तेमज मैत्री, करुणा आदि भावनाओथी उत्तरोत्तर जरुर वधारवो.

" स्पष्टीकरण "

अनादिथी अप्राप्त अने दुर्लभतर परमात्म विषयक भावना अगर ध्यान, प्रतिष्ठाना प्रभावथी कर्ता-कारयिता तथा अन्य जनोने प्राप्त थाय छे. आ भाव परमात्मा साथे एकत्वपणुं. आत्माना सद्‌विचारो विगेरे प्रतिष्ठा समये तो अत्यंत अल्प होय छे, एटले अन्य अन्य पौद्‌गलिक संबंधी विचारो-भावोनी अपेक्षाए बहु थोडो होय छे, परंतु स्वात्माने परमात्मपणुं प्राप्त करवा पूर्वोक्त भावनुं यथोचित रूपे प्रथम तो रक्षण करवुं आवश्यक छे, अने पछी ते भावने वधारवा सारुं आसपासना ते भावनुं खंडन करनारा साधनो-कारणो दूर करी दिवसानुदिवस ते भाव प्रफुल्लित थाय तेवा उचित-प्रशस्त संयोगो-कारणो एकत्र करी ते भावने वधारवा दत्तचित्त थवुं. अर्थात्-नित्य परमात्म स्वरूपनुं ध्यान, पूजा, स्मरण अने परमात्म संबंधी आज्ञानुं पालन

अवश्य करवुं. क्षणिक विषयसुखना साधनो दूर करी आत्मा संबंधी मुख्य धर्मनो खास विचार करवो, साथे साथे संसारनी असारता, विषयोनी कटुता, धननी चंचलता अने कुटुंबनी स्वार्थलोलुपता पण भाववी. आथी प्रतिष्ठा समयमां प्राप्त एक सामान्य भाव पण पाछलथी विस्तृतरूपे थइ अति म्होटा प्रमाणमां थइ जाय छे. अहीं शास्त्रकर्ता आ भावने वधारवाना साधनो स्वयं उत्तरार्धथी दर्शावे छे. " क्षान्त्यादियुतैः " प्रतिदिन क्षमा, मृदुता, आर्जव, संतोष आदि आत्माना परमधर्मोनी भावना करी तेनुं स्वरूप विचारी उपरोक्त भावने वधारवो, एटले आ रीते जलसिंचन करवाथी ते भावनी वृद्धि थाय छे. परमार्थ ए के–जेम जलसिंचन विना अथवा दाह पडवाथी बीज वधे नहीं पण विणशी जाय तेम अहीं पण उत्तम परमात्म संबंधी अल्प प्रशस्तभाव अगर ध्यानरूप बीज जलसिंचन विना अथवा तो अनादिथी आत्माना खूणामां घर करीने बेठेला क्रोध, मान, माया, लोभ आदि शत्रुओ–अग्निज्वालाओ प्रदीप्त थवाथी ते भावरूप बीजांकुर भस्मीभूत थइ जाय; माटे विवेकीए ते भावनी वृद्धि करवा अर्थे, आ अग्निज्वालाओने बूझाववा आविर्भाव न पामे ते निमित्ते श्रीमान् विनयविजयजी महाराज कहे छे तेम–"क्रोधं क्षान्त्या मार्दवेनाभिमानम्, हन्या माया मार्जवेनोज्वलेन। लोभं वारां राशिरौद्रं निरुंध्याः, संतोषेण प्रांशुना सेतुनेव " ॥ " क्षमाथी क्रोध, नम्रताथी अभिमान, उज्वल

एवी सरलताथी माया अने जेम सेतुबंधथी जल रुंधाय तेम संतोषरूपी माटीथी लोभरूप रौद्र जलसमूहनो रोध करवो." अहीं क्रोधादि ज्वालाओने बूझावनार, उदयने रोकनार क्षमा आदि भावनो अहर्निश विचार करवो अत्यावश्यक योगियोए कह्यो छे, कारण के एम करवाथी ज परमात्म संबंधी भावनी नितान्त वृद्धि अने आत्मिक गुणनो विकास थाय छे. आपणा घरनी मिल्कत अन्य कोइ दबावी दे तो तेना सामे सख्त उपायो लेवाथी–झझूमवाथी ज ते मिल्कत आपणा हाथमां आवे, परंतु तेवा समये सहनशीलता राखवाथी अगर कायरता करवाथी मिल्कत पाछी आवे नहीं किन्तु थोडी–घणी होय ते पण आपणी निर्बलता देखी अन्य शत्रुओ पडावी जाय. क्षमा आदि विचारनुं स्वरूप तत्त्वार्थ–भाष्यमां उमास्वातिवाचकजी आ प्रमाणे दर्शावे छे.

"क्रोधादि शांतिनो उपाय"

"क्रोधनिमित्तस्यात्मनि भावाभावचिन्तनात्"

कोइ पण मनुष्य आपणा पर ज्यारे क्रोधाविष्ट थाय त्यारे विचारवुं के–आ मनुष्य मारा सामे क्रोध शा माटे करे छे? में तेनुं कांइ पण नुकशान करी तेना साथे कदापि विरोध कर्यो छे? अथवा प्रतिकूल वर्त्तन में आचर्युं छे? आ रीते विचार करी यदि जो में अपराध कर्यो छे, विरुद्ध वर्तन कर्युं छे, नुकशान कर्युं छे तो तेनो जे क्रोध छे ते व्याजबी ने योग्य छे; अने मारे ते अवश्य सहन करवुं जोइए कारण के–आ गुन्हानी शिक्षा

छे. गुन्हानी शिक्षा सामे रोष करवो ए तो बालचेष्टा गणाय. यदि विचार करता एवुं जणाय के-स्वप्ने पण अपराध, नुकशान के अन्यथा वर्त्तन कर्युं नथी छतां आ माणस क्रोध करे छे तो ते अज्ञानी छे, अज्ञानथी प्रलाप करे छे, अज्ञानी सामे प्रलाप करवाथी हुं पण अज्ञानी ज ठरुं, आथी पण मारे क्रोध करवो अघटित ज कहेवाय. ए ज परमार्थनो अनुवाद पूर्वाचार्यो एक सुभाषितथी उपदेशे छे.

" आक्रुष्टेन मतिमता, तत्त्वार्थगवेषणे मतिः कार्या ।
यदि सत्यं कः कोपः, स्यादनृतं किं नु कोपेन " ॥१॥

आटलो विचार करवाथी पण जो क्रोध निष्फल थाय नहीं तो " क्रोधदोषचिन्तनाच्च " क्रोधनुं फल विचारवुं. क्रोध करवाथी प्रथम तो पोतानुं शरीर तपी जाय, कंठ सुकाय, बेचेनी थाय, भान भूली जवाय, अनाज पर अरुचि थाय, बुद्धि भ्रष्ट थाय, स्वकर्तव्य अने विवेक विसरी जवाय, प्रेमनो नाश थाय, इज्जत चाली जाय, लोकोमां क्रोधीपणानी ख्याति थाय अने छेवटे पुण्यफलनो पण नाश थाय. आ हेतुथी पण क्रोध करवो अघटित ज छे. आम विचार करवा छतां क्रोध न रोकाय तो " बालस्वभावचिन्तनाच्च " बालस्वभावनो विचार करवो. अज्ञानीनी ज ए टेव होय छे के-परोक्षमां तथा प्रत्यक्षमां निष्कारण कोप करवो, तेमज ताडन, मरण अने धर्मभ्रष्ट लोकोने करवा; परंतु विवेकीए विचारवुं जोइए के ते अज्ञानी

बिचारा परोक्षमां ज कोप करे छे पण प्रत्यक्षमां आवता नथी ए ज महान् लाभ थयो. यदि प्रत्यक्षमां कोप करे तो ते कोप करी संतोष माने छे परंतु मने मारता नथी ए ज तेओनो उपकार थयो. कदाचित् मारे तो तेओ कांइ मारा प्राणनो नाश करता नथी किन्तु मारीने तृप्त थाय छे. कथंचित् प्राणनो पण तेओ वियोग करे तो पण मने धर्मभ्रष्ट करता नथी, मारो धर्म कायम रहेवा दे छे ए ज तेओनो म्होटो उपकार मारा पर थयो. आम विचारी उदयगत कोप निष्फल करवो, ए ज भाव महर्षिओ जणावे छे. " अक्कोशहणणमारणधम्मभंसाणबालसुलहाणं । लाभं मन्नइ धीरो जहुत्तराणं अलाभंमि " ॥ १ ॥ अन्तमां कोप निष्फल करवा माटे आ विचार करवो " स्वकृतकर्मफलाभ्यागमाच्च " ज्यारे क्रोधथी धसी आवी कोइ आपणा प्राणनो पण नाश करे त्यारे विचारवुं के आ सर्व मारा कृतकर्मनुं ज फल छे. पूर्व जन्ममां आ लोको साथे तेवा प्रकारनो लेणदेणनो संबंध कर्यो हशे, में तेओने हेरान कर्या हशे, मार्या हशे, प्राणवियुक्त कर्या हशे एटले तेओ अत्यारे मारा पासेथी तेनो बदलो वाळे छे. कोइनुं पण देवुं कर्या पछी ए ज्यारे मागे त्यारे विनासंकोचे प्रसन्नहृदये पाछुं अर्पवुं जोइए तेमां कोप करवो ए तो व्यवहारथी पण विरुद्ध ज गणाय. अहीं पण देवुं चूकावाय छे तो पछी सामो कोप शा माटे करवो ? आम विचारी छेवटे कोपने दबावी देवो, उदय न थाय तेम करवुं.

क्रोध अने मानने आपसमां अति निकट संबंध छे अर्थात् ज्यां मान होय त्यां कोप जरुर पोतानो प्रभाव दर्शावे छे, एटले कोप अने मान सहचारी छे, माटे ज ते बन्नेने सर्वज्ञे द्वेषना घर कह्या छे. द्वेषमांथी ते उद्भवे छे. आ मानने दूर करवा नम्रता, मृदुतानो अभ्यास विवेकीए अवश्य करवो. परमार्थ ए के—सर्वदा विनीतभावे—नम्रभावथी वर्त्तवुं अने गर्व न करवो ए मृदुतानुं चिह्न कह्युं छे. आम वर्तवाथी माननो आविर्भाव न थाय. जनताने जाति, कुल, रूप, ऐश्वर्य, बुद्धि, श्रुत, लाभ, पराक्रम आ आठ कारणोथी गर्वभाव, अक्कडपणुं, उद्धताइ, उच्छृंखलपणुं, कडकाइ आवे छे. अन्य जनोनी अपेक्षाए पोतानी श्रेष्ठ जाति होय, श्रेष्ठ कुल होय, उत्तम सुंदर रूप होय, विशेष ऐश्वर्य—प्रभुताइ—अधिकार होय, विशिष्ट बुद्धि होय, विशेष श्रुतबोध होय, विशेष प्राप्ति थाय, अतिबल होय, आ सर्व मदना कारणो जाणवा. आ कारण संयोगथी परनी निंदा करे, स्वात्मानी प्रशंसा करे अने आम करवाथी अतिहलका कर्मनो बंध करी आत्मा विवेक विसरी जाय, स्वकर्तव्यथी भ्रष्ट थाय, म्होटा—न्हानापणानुं भान न राखे तेम ज जे जे पदार्थ संबंधी मद कराय ते ते पदार्थो जन्मांतरमां अधमरूपे प्राप्त थाय आम विचारी माननो त्याग करवो, उदयप्राप्त होय तो दबावी देवो अने भविष्यमां उदय थवा देवो नहीं.

हृदयनी मायाग्रंथीने दूर करी सरलता—निष्कपटपणुं धारण

करवुं तेनुं नाम मृदुता. लेश पण माया उत्तम पदार्थ माटे करीए तो पण मल्लिनाथजीनी माफक अकल्याणकर्ता थाय छे, तो पछी विशिष्ट अने विशिष्टतर सांसारिक अनुत्तम पदार्थो माटे जे माया सेवीए तेनुं तो केवुंए अनिष्ट फल प्राप्त थाय ! मायीजननो कोइ विश्वास करे नहीं, कारण के मायीजन सर्वदा सर्व कार्योमां प्रपंचने ज आगल करे छे. आथी मायीने बुधजनो सर्प तुल्य माने छे, तेमज ज्यां सुधी हृदयमां लेश पण पण सारी के खोटी माया होय त्यां सुधी हितकारी प्रवृत्तिनुं सुंदर फल पामे नहीं माटे माया त्याग करी सर्व कार्योमां सरलता धारण करवी जोइए.

जगत्मां ' लोभमूलानि पापानि ' सर्व पापनुं मूल अने अनर्थपरंपरानुं खास कारण लोभ ज छे. हृदयना मेलोनी जड घालनार पण लोभ कह्यो छे, लोभावश आत्मा कदापि शान्ति अनुभवतो नथी, लोभी प्रतिष्ठा सन्मान अने आबरुने गणतो नथी, लोभी प्रेमसुखनो अनुभव अने कुटुंबनो प्रेमपात्री बनी शकतो नथी, तेमज आ लोक अने परलोकना सुख अर्थे लोभी धर्म पण सेवी शकतो नथी, वळी लोभी उपार्जित लक्ष्मीनुं सुख भोग्यपदार्थ तथा शान्तनिद्रानो पण अनुभव करी शकतो नथी. आथी लोभनो त्याग करी संतोष धारण करवो जोइए. हेतु ए के--' संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसां । कुतस्तद्धनलुब्धाना-मितश्चेतश्च धावतां " ॥ १ ॥ " संतोषरूप अमृतथी तृप्त एवा शान्तहृदयी

जनोने जे सुख होय ते सुख धनमां लुब्ध अने ज्यांत्यां भटकनार आत्माओने क्यांथी होय ? " एकान्त आत्मिक सुख अने स्वकल्याणनी सिद्धि लोभनो परित्याग करी संतोष धारवाथी ज थाय छे. लोभ एटलो बूरामां बूरो छे के चतुर्दश पूर्वधरो पण उपशमश्रेणि पर आरूढ थया पछी त्यांथी लोभना उदयथी गोथुं खाइ निगोदमां प्रवेश करे छे. आम विचारी अन्तमां समजुए लोभनो अवश्य त्याग करवो उचित छे, अर्थात् लोभनो नाश करवा संतोषरूप खड्ग धारण करवुं.

आ रीते क्रोध, मान, माया, लोभना प्रतिविरोधी क्षमा, मृदुता, आर्जवता अने संतोष संबंधी उपरोक्त भावना हृदयमां धारण करी, प्रथम कही गयेल प्रतिष्ठासमयमां प्राप्त थयेल अल्प शुभ भावनी वृद्धि करवी अर्थात् आ प्रमाणे जलनुं सिंचन करी आ भावरूप बीजने वृद्धिंगत करवुं. वळी शास्त्रकर्ता फरी आ बीजवृद्धिनो उपाय " मैत्र्यादिसंगतैः " ए पदथी विशेष जणावे छे. मैत्री, करुणा, प्रमोद, माध्यस्थ्य ए चारे भावनाओ प्रतिक्षणे विचारवी. आ चार भावनाओ सम्यक्त्वने पुष्ट करे छे. आनुं विस्तृत स्वरूप अमे आगल जणावी गया छीए, ते स्वरूपने ध्यानमां उतारी तेनुं स्वरूप विचारवुं, आ प्रमाणे आ चार भावना अने क्षमा आदि चार भावोनुं स्वरूप नित्य विचारवाथी, तेनुं ध्यान करवाथी अवश्य अंतरात्मा विशुद्धतर थाय छे, उपरोक्त अलभ्य भावनी वृद्धि पण थाय; माटे अहीं ग्रंथकर्ताए

जणाव्युं के–क्षमा आदिथी अने मैत्र्यादि भावनाथी आ भाव-
रूप बीज " संवर्द्धनीयः " वृद्धिंगत करवुं.

आ रीते भावरूप बीजवृद्धिनो उपाय दर्शावी फरी
ते ज बीजवृद्धिनो अन्य उपाय ग्रंथकर्ता जणावे छे

निरपायः सिद्धार्थः,
स्वात्मस्थो मन्त्रराडसंगश्च ॥
आनन्दो ब्रह्मरसश्चिन्त्य–
स्तत्त्वज्ञमुष्टिरियम् ॥ ८–१५ ॥

मूलार्थ—अपाय वगरनो, जेनाथी सर्व अर्थनी सिद्धि थाय
एवो, स्वात्मामां रहेनार, सर्व मंत्रोमां मुख्य मंत्रभूत, उपाधि
रहित, आनन्दस्वरूप अने ब्रह्म, सत्य, तप अने ज्ञान एनो
रसरूप तेमज सर्वज्ञ शासनमां तत्त्वज्ञाननी खास मुष्टिरूप आ
प्रतिष्ठासमयगत भावनो वारंवार विचार करवो.

" स्पष्टीकरण "

जेवी रीते प्रतिष्ठासमयमां लभ्य उत्तम भावनुं संर-
क्षण–संवर्धन माटे आपणे आगल विचार करी गया तेम
अहीं शास्त्रकर्ता फरी ते ज भावनी वृद्धि माटे आ भावनी
महत्ता अने तेनुं फल विचारवानुं जणावे छे, अर्थात्
पदार्थ परनो मोह, तेनुं स्वरूप, तेनी महत्त्वता अने तेना फलो

विचारवाथी वधे छे. अहीं आ श्लोकमां प्रत्येक पदो प्रतिष्ठा-समयलभ्य भावना विशेषतया ग्रंथकर्ताए धर्या छे एटले ए भाव केवा प्रकारनो छे एम दर्शाव्युं छे. श्लोकान्तर्गत प्रत्येक विशेषणो सार्थ अने समन्वित होवाथी अतिगंभीर बुद्धिए विचारवा योग्य छे. प्रथम तो शास्त्रकर्ता कहे छे के— 'निरपायः' अपाय एटले विघ्नो–पापो–दोषो तेनाथी अतीत निरनिराळो आ भाव छे. हेतु ए के–आ भावनी प्राप्ति थया पछी आत्माने अनर्थकारी प्रत्यवायो नडता नथी; किन्तु अनर्थपरंपरानो नाश ज थाय छे. आम छतां 'सिद्धार्थः' आ भावनी प्राप्ति बाद सर्व अर्थोनी आबाद सिद्धि–निष्पत्ति थाय छे. एवं आ भाव 'स्वात्मस्थः' स्वात्मवृत्ति ज छे अर्थात् ते बाह्य पदार्थवृत्ति नथी; कारण के–बाह्यपदार्थवृत्ति भाव पौद्गलिक कहेवाय अने ते पापकारी होवाथी एकान्त हेयरूप छे ज्यारे स्वात्म संबंधी भाव विशुद्धतर अने शुभ फलदायी होवाथी अंगीकार्यरूप कह्यो छे. तथा मंत्रो जेम विशिष्ट फलकारी अने आराध्य होय छे तेम आ भाव पण खास आत्मिक शक्तिओनो विकासकारी अने अनंतशक्ति प्रकटावनार होवाथी 'मंत्रराट्' मंत्रराज जाणवो. फरीने ए ज भाव मायालेपथी निर्लेप होवाथी असंगरूप पण छे, अने आत्मानो परमशुद्ध अप्रतिपाति अने शाश्वत आनंददाता होवाथी आनंदरूप पण जाणवो. अन्तमां शास्त्रकर्ता टूंकमां जणावे छे के–'ब्रह्मरसः' सत्–चित्–आनंद ए त्रिगुणरूप

जे ब्रह्म तेनो ज उपरोक्त भाव ते रसभूत पदार्थ छे अर्थात् सारतत्त्व छे, एटले आ भावनो संपूर्ण विकास थया पछी अवश्य ब्रह्मस्वरूपनो आविर्भाव थाय, अने सर्वज्ञमतमां आ भाव प्राप्त करवो ए ज तत्त्वज्ञदृष्टि छे. परमार्थ ए के—सर्वज्ञना शासननो फलितार्थ छे.

ए रीते प्रतिष्ठानी विधि अने तत्संबंधमां खास वक्तव्य कह्या पछी अन्तमां आ संबंधमां अवशेष वक्तव्य कही ग्रंथकर्ता आ प्रकरणनी समाप्ति सूचवे छे.

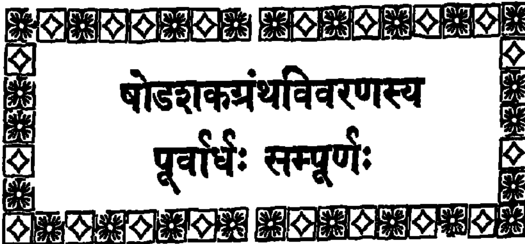
अष्टौ दिवसान् यावत्,
पूजाऽविच्छेदतोऽस्य कर्त्तव्या ॥
दानं च यथाविभवं,
दातव्यं सर्वसत्त्वेभ्यः ॥ ८—१६ ॥

मूलार्थ—आ प्रतिष्ठित बिम्बनी आठ दिवस सुधी निरंतर अनेक प्रकारनी पूजा अवश्य करवी अने विभवानुसारे सर्व प्राणीयोने दान पण जरुर आपवुं.

" स्पष्टीकरण "

आगल कह्या प्रमाणे विधिसह जिनबिम्बनी प्रतिष्ठा कर्या पछी अवश्यमेव आठ दिवस पर्यंत अष्टप्रकारी,

सत्तरप्रकारी अथवा एकवीशप्रकारी पुष्प, धूप, दीपक, नैवेद्य आदि पदार्थोवडे पूजा करवी. अहीं मूलमां 'अष्टौ दिवसान्' ए वाक्य थयुं होवाथी तेनो परमार्थ ए के- अष्टान्हिका महोत्सवरूप पूजा करवी अने याचकोने पोतानी शक्त्यनुसार दान पण आपवुं, अथवा सर्व जीवनुं संरक्षण थाय तेम अभयदान आपवुं, एटले जीवोनी हिंसा बंध करावची.


षोडशकग्रंथविवरणस्य
पूर्वार्धः सम्पूर्णः

आ पुस्तकना पहेलाथी ग्राहक बनी मदद् आपनार महाशयोनी नामावली.

ग्रंथनी सख्या	ग्राहक नाम	ग्राम
१०१	शा. ग्रेनमलजी वेद	मद्रास
१०१	शा. कानमलजी भेरूवगसजी	"
५१	शा. हजारीमलजी रूपचंदजी	"
५१	ढा. ढा. कंपनी	"
२५	शा. साकरचंद तिलोकचंद	"
२१	शा. केसरीमलजी मगनमलजी	"
३१	शा. सागरमलजी सुजानमलजी गोलेच्छा	"
२५	शा. रूपचंदजी छोगमलजी गोलेच्छा	"
२५	शा. गुलराजजी फोजराजजी कालुंगे	"
२५	शा. केशरीचदंजी कंवरलालजी	"
२१	शा. वालचंदजी मुरलीधरजी मालू	"
२१	शा. शेरमलजी माणेकलालजी श्रीश्रीमाल	"
२१	शा. सुखचंदजी हंसराजजी	"
१७	जे. एम्. शेठ	"

१५ धी. काठियावाड सायकल कंपनी ,,
१५ धी. पोप्युलर सायकल कंपनी ,,
११ शा. सुरजमलजी श्यामलालजी ,,
११ शा. हिंदुजी रामाजी ,,
११ शा. हीराजी वनेचंदजी ,,
११ शा. चावला तेजराज दलाल ,,
१० शा. नागजी पुरषोत्तम ,,
१० शा. माणेकलाल त्रीकमलाल ,,
७ शा. धूलचंदजी गेवरचंद श्रीश्रीमाल ,,
७ शा. सी. जे. शेठ ,,
७ शा. हरखचंद रूपचंद ,,
५ शा. सूरजमलजी कोठेसा रायपेंठ ,,
५ शा. वृद्धिचंदजी कोठेसा विलिवाकम् ,,
५ शा. नथमलसोलंकी पुनमली कंटोनमेंट ,,
५ शा. ताराचंद खेमराज चिंतादरिपेंठ ,,
५ शा. माणेकलाल वेताळा ,,
५ शा. कनीरामजी जुगराजजी ,,
५ शा. छगनलाल लखमीचंदजी ,,
५ शा. तिकमजी मोतीजी ,,
५ शा. रूपचंद छबीलदास ,,
५ शा. देवराजभाइ कच्छी ,,
५ शा. साकलचंद गुलाबजी ,,

५ शा. अंबालाल भूरमलजी ,,
५ शा. रतनचंदजी चूनीलालजी ,,
५ शा. जेठमलजी गेंनमलजी ,,
५ शा. मुलतानमलजी मिसरिमलजी ,,
५ शा. वनाजी शंकरलालजी ,,
५ शा. भभूतमलजी रिखभदासजी ,,
५ शा. फुसाजी कस्तूरचंदजी ,,
५ शा. भूताजी पुनमचंदजी ,,
५ शा. मूलचंदजी शंकरलालजी ,,
५ शा. सवदानमल खीमचंदजी ,,
५ शा. भूरमलजी भभूतमलजी ,,
५ शा. सोगालाल कसनाजी ,,
५ शा. लुंबाजी भगवानजी ,,
१० शा. भगाजी सोनमलजी ,,
४ शा. नेमिचंदजी श्रावक ,,
४ शा. मंगलचंदजी अमरचंदजी ,,
४ शा. सूरजमलजी भलेचंदजी ,,
३ शा. चूनीलाल जेसंगभाइ ,,
३ शा. खीमचंद जेसंगलाल ,,
३ शा. जोधाजी मनीराम ,,
३ शा. फोजमलजी मूलचंदजी ,,
३ शा. गुलाबचंद बादरमल ,,

३	शा. हींदुजी देवीचंदजी	"
३	शा. हजारीमल जीवराज	"
३	शा. सूरजमलजी अमरचंदजी	"
२	शा. परतापमलजी सागरमलजी	"
२	शा. सुजाणमलजी सोभागमलजी	"
२	शा. सतीदानजी आशकरणजी	"
२	शा. लालचंद चांदमलजी कोठारी	"
२	शा. लक्ष्मीलालजी माणेकलाल	"
२	शा. डायाजी नथमलजी	"
२	शा. कानाजी जुहारमलजी	"
२	शा. मूलचंद देवीचंदजी	"
२	शा. लखमीलालजी मिसरिलालजी वेद	"
२	शा. रामसुख लागुचंदजी लुणीया	"
२	शा. भानाजी ताराचंद	"
२	शा. मलोकचंद कस्तूरचंद	"
१	शा. सलराजजी	"
१	शा. गणेशमलजी	"
१	शा. चूनीलालजी छाजेड	"
१	शा. केसरिमलजी शेशमलजी	"
१	शा. गंभीरमलजी फूलचंदजी	"
१	शा. नथमलजी अनराजजी	"
१	शा. भोमराजजी पनरोटीवाला	"

१	शा. मोहनलाल माणेकलाल श्रावक	”
१	शा. पृथ्वीराजजी घोवीपेंठ	”
१	शा. जेठमलजी कोटडीया	”
१	शा. सुखलाल कंवरलाल	”
१	शा. मेगराजजी केसरीचंद् कोटडीया	”
१	शा. मोतीचंद्जी शेठीया	”
१	शा. वस्तमलजी कानमलजी	”
१	शा. अनराजजी वोरा	”
१	शा. समरथमल मिश्रीमल संकलेचा	”
१	शा. रावतमल अमूलकचंद्	”
५	शा. जवारमल रावतमलजी	”
५	शा. मोतीलाल वीरचंद्जी लुणीया	”
२	शा. जवानमलजी जीवराजजी	”
२	शा. किसनचंद् चांद्मलजी	”
२	शा. रेकचंद्जी लक्ष्मीलालजी	”
२	शा. सुगनमलजी नेमिचंद्जी छल्लाणी	”
१	शा. जेठमलजी आशकरणजी	”
५१	शा. लुंबाजी साकलचंद्	बीजापूर
११	शा. शिनाजी अमीचंद्	”
११	शा. नवलमल लालचंद्	”
७	शा. वीरचंद् कपूरचंद्	”
५	शा. वनाजी साकलचंद्	”

५	शा. गुलाबचंद रायचंद	"
५	शा. गणपतचंद नानचंद	"
५	शा. वनाजी जेसाजी	बागलकोट
५	शा. हीराचंद केरिंगजी	अगरखेड
५	शा. फतेमलजी तेजमलजी कोठारी	बेलगामकँप
३	शा. मूलाजी मंछाजी	बीजापूर
२	शा. गुलबाजी लालचंद	"
२	शा. चीमनाजी मकनाजी	"
२	शा. सोमचंद दलीचंद	"
२	शा. नरसीदास कानजी	"
२	शा. अमीचंद दलीचंद	"
२	शा. मानमल जीवणजी नाहार	"
१	शा. रायचंद छगनलाल	"
१	शा. प्रेमचंद खुशालजी	"
१	शा. उकाजी चुनीलाल	"
१	शा. रायचंद खुशालजी	"
१	शा. त्रिभोवनदास केसवजी	"
१	शा. वस्तिमल हस्तिमल	"
१	शा. मणीलाल मीयाचंद	"
१	शा. भूताजी देवाजी	"
१	शा. वनेचंद रतनाजी	"
१	शा. जवेरचंद दलीचंद	"

१	शा. गोविंदजी कस्तूरचंद नाहार	"
१	शा. गुलाबचंद नानचंद	"
१	शा. पुनमचंद हीराचंद पटणी	आरग
२५	शा. हीराजी श्रेयमलजी	तेनाली
२०	शा. रतनाजी चंदनमलजी	"
२०	शा. जहराजजी जशराज	"
१५	शा. ताराजी मिश्रीमलजी	"
१५	शा. छोगमलजी लछीराम	"
१०	शा. लालचंद खुशालचंद	"
१०	शा. पेमाजी साकलचंदजी	"
१०	शा. शिवराजजी धरमचंदजी	"
१०	शा. पेराजमल मूलचंद	"
१०	शा. जेरूपजी छोगमल	"
८	शा. राजाजी रुगनाथजी	"
७	शा. खुबाजी केसरिमलजी	"
५	शा. पेमाजी जीवराज	"
५	शा. गुलबाजी चुनीलाल	"
५	शा. भगवानजी गुलाबचंद	"
५	शा. सागरजी केसरिमलजी	"
५	शा. चेनाजी खुबचंद	"
५	शा. भोमाजी भभूतमलजी	"
३	शा. मूलचंद वनाजी	"

३	शा. गणेशमल रतनचंद	"
२	शा. लछीराम जोधराज	"
३	शा. रामाजी गोमाजी	"
२	शा. सूरतमल नवाजी	"
४	शा. गोराजी हस्तिमल	"
१७	शा. ताराचंदजी छोटमलजी	विजवाडा
१७	शा. प्रतापमलजी अमूलखचंदजी	"
१७	शा. छोगमल चिनाजी	"
१७	शा. सांकलचंद चुनीलाल	"
३	शा. वालचंद उमाजी	"
१०	शा. मेघाजी हस्तिमलजी	मंगलगिरि
१०१	शा. चंदाजी खुवाजी	गंटूर
७	शा. छोगमलजी जेठमल	"
५	शा. जेताजी हीराजी	"
५	शा. नरसिंहजी गोमराज	"
७	शा. चेनाजी भभूतमलजी	"
५	शा. रामाजी कस्तूरचंदजी	"
३	शा. वनाजी देवीचंदजी	"
५	शा. वछराज हजारीमलजी	"
५	शा. नथाजी जेठमलजी	"
५	शा. चमनाजी शेषमलजी	"
५	शा. डायाजी जेरूपजी	"

१ शा. अचलाजी चेनाजी ,,
१ शा. लालाजी अकेचंदजी ,,
१ शा. जेताजी पेमाजी ,,
१ शा. वनाजी नथमलजी ,,
१ शा. चेनाजी गजमलजी ,,
१ शा. वालचंद हीराचंदजी ,,
१ शा. जेरूपजी छोगमलजी ,,
१ शा. चेनाजी मूलचंदजी ,,
१ शा. छोगमल वृद्धिचंदजी गुडीवाडा
१ शा. मंगलाल तागचंदजी ,,
१ शा. चन्दनमल गांडीदासजी ,,
१ शा. प्रागचंद कपूरजी ,,
१ शा. प्रेमचंदजी मालाजी ,,
१ शा. रूपचंद केसिंगजी ,,
१ शा. गुलाबचंदजी फोजमलजी ,,
१ शा. चुनीलाल केसरिमलजी ,,
१ शा. भूरमल केसाजी ,,
१ शा. वीरचंद समरथमल ,,
१ शा. दलीचंद कपूरचंद ,,
१ शा. गडुमल छोगालाल ,,
१ शा. अकेचंद खुमाजी ,,
१ शा. देवीचंद वशाजी ,,

१ शा. रायचंद रतनचंद

१ शा. मिश्रीमलजी जसाजी

१ शा. ओटमल गुलवाजी

१ शा. फूलचंद भानीराम

१ शा. गुलवाजी छोगमल

१ शा. गुलवाजी देवीचंद

१ शा. नथमल मोतीजी



